मिरातुल-अरूस

(गृहिणी-दर्पण)

[उर्दू भाषा की घरेलू जीवन की शिक्षा देने वाली अमर रचना]

मूल लेखक :

श्री नज़ीर अहमद

टिप्पणियाँ तथा हिन्दी लिप्यन्तर :

श्री मदनलाल जैन
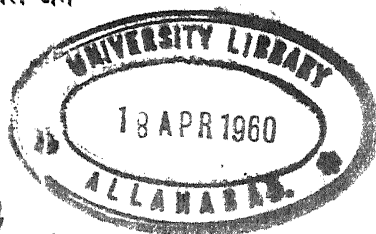
साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली

तश्रारुफ़

जदीद उर्दू नस्र के चार सुतून माने जाते हैं—सर सैयद, शिबली, आज़ाद, नज़ीर अहमद। हाली भी इस ज़माने के बड़े नस्रनिगार थे, मगर उनकी शायरी ने दिलों को ऐसा भाया कि उनकी नस्र को लोग कुछ भूल-से गए। इन पाँचों में नज़ीर अहमद की यह खुसूसियत है कि उन्होंने अदब की और असनाफ़ के साथ-साथ नाविल को भी अपने ख़यालात के इज़हार का ज़रिया बनाया।

पिछली सदी के निस्फ़े-आख़िर में हिन्दुस्तान की और सब ज़बानों की तरह उर्दू में भी नाविल एक नई चीज़ थी। यह गोया दास्तान (Romance) का एक नया चोला था। दास्तान से नाविल की तरफ़ क़दम बढ़ाना हिन्दुस्तानी ज़हन में बहुत बड़ी तबदीली की ख़बर देता था, जो जदीद अंग्रेज़ी अदब और अंग्रेज़ी तहज़ीब के असर से पैदा हो रही थी। नाविल ज़िन्दगी के मुशाहिदे और उसकी तर्जुमानी का एक ख़ास तरीक़ा था जो हमने यूरोप वालों, ख़ासकर अंग्रेज़ों से सीखा था। ज़िन्दगी को उसके असली रंग में देखना, उसके माद्दी और रूहानी पहलू दोनों से मुहब्बत करना, उसकी धूप-छाँव दोनों से लुत्फ़ उठाना, उसकी तसवीर खींचने में अहसासे-तनास्सुब (Sense of proportion) से काम लेकर जज़्बात-परस्ती और मुबालग़े से बचना और तनक़ीद

तश्रारुफ़—परिचय; **जदीद**—आधुनिक; **नस्र**—गद्य; **सुतून**—स्तम्भ; **नस्रनिगार**—गद्य-लेखक; **असनाफ़**—रचना; **निस्फ़े-आख़िर**—अंतिम अर्धांश; **मुशाहिदा**—जीवन-दर्शन; **माद्दी**—पार्थिव; **जज़्बात-परस्ती**—भाव-विमूढ़ता, भाव-स्वच्छन्दता; **मुबालग़ा**—अतिशयोक्ति।

की तल्ख़ी को मज़ाह की चाशनी से मज़ेदार बनाना, नाविल के असली जौहर हैं जो अंग्रेज़ी के बड़े नाविलनिगारों के' हाँ ख़ूब चमके हैं। नज़ीर अहमद अंग्रेज़ी ज़बान और अदब से मामूली-सी वाक़फ़ियत रखते थे। यह उनका कमाल है कि उन्होंने अंग्रेज़ी नाविल की बुनियादी सिफ़ात को पूरी तरह अपना लिया। अगरचे तकनीक (technique) के लिहाज़ से उनके नाविलों में बहुत-सी ख़ामियाँ रह गईं।

नज़ीर अहमद का मौज़ू दरअसल मज़हब-ओ-इख़लाक़ था। उन्होंने क़ुराने-पाक का तर्जुमा उर्दू में किया और कई क़ाबिले-क़द्र मज़हबी किताबें लिखीं। नाविल को उन्होंने महज़ इसलिए अख़्तियार किया था कि उसके ज़रिये से उनके मज़हबी और इख़लाक़ी ख़यालात पढ़ने वालों के बड़े हल्क़े में फैल सकेंगे। यही वजह है कि उनके नाविल, जिनमें 'तौबतुलनसूह' सबसे ज़्यादा मशहूर है, वाज़ ओ नसीहत के दफ़्तर बन गए हैं। फिर भी ज़िन्दगी की सच्ची मुसव्वरी और किरदारनिगारी के कमाल ने उनमें जान डाल दी है और अंदाज़े-बयान की शिगुफ़्तगी और मज़ाह की चाशनी ने मौज़ू की ख़ुश्की को बड़ी हद तक दूर कर दिया है।

'मिरातुल-अरूस', जो इस वक़्त आपके सामने है, नज़ीर अहमद का एक छोटा-सा नाविल है जो उन्होंने छपवाने के लिए नहीं बल्कि अपनी लड़की के पढ़ने के लिए लिखा था। इत्तफ़ाक़ से इसका मसौदा अंग्रेज़ डायरेक्टर तालीमात की नज़र से गुज़रा। वह इसे पढ़कर फड़क उठा। उसी की तवज्जो से यह किताब छपी और इस पर मुसन्निफ़ को हुकूमत की तरफ़ से एक हज़ार रुपया इनाम मिला।

तनक़ीद—आलोचना; **तल्ख़ी**—कटुता; **मज़ाह**—व्यंग्य, हास्य; **सिफ़ात**—गुण; **मौज़ू**—विषय; **इख़लाक़**—नीति; **वाज़**—उपदेश; **मुसव्वरी**—चित्रण; **किरदारनिगारी**—चरित्र-चित्रण; **तवज्जो**—कृपा, मेहरबानी; **मुसन्निफ़**—लेखक।

कभी-कभी ऐसा होता है कि बड़े लिखने वाले कोई छोटी-सी चीज़ सरसरी तौर पर क़लम उठाकर लिख डालते हैं, मगर पढ़नेवाले उनकी बड़ी-बड़ी किताबों से कहीं ज़्यादा उसकी क़द्र करते हैं। यही 'मिरातुल-अरूस' के साथ हुआ। पचास-साठ साल तक यह किताब, जिसके अरबी नाम को बदलकर लोगों ने 'अकबरी असग़री की कहानी' कर लिया था, न सिर्फ़ लड़कियों की बल्कि बड़ी उम्र के मर्दों और औरतों की भी सबसे महबूब किताबों में शुमार होती थी। अब कुछ अर्से से इसकी तरफ़ तवज्जो कम हो गई है। ऐसा क्यों हुआ, इस पर हम बाद में ग़ौर करेंगे। पहले तो यह देखना है कि जो ग़ैर-मामूली मक़बूलियत इसे इस सदी के शुरू तक हासिल रही उसकी क्या वजह है।

ज़ाहिर है कि जो किताब जान-बूझकर तालीम-ओ-नसीहत की ग़रज़ से लिखी गई हो, जिसके मतन में छिपा हुआ और दीबाचे में खुला हुआ वाज़ हो, उसकी दिलचस्पी अपने मौज़ू और मक़सद की वजह से तो हो ही नहीं सकती। सिर्फ़ अन्दाज़े-बयान का जादू ही उसे दिलचस्प बना सकता है। यह जादू नज़ीर अहमद ने मिरातुल-अरूस में जगाया है। सादगी, सफ़ाई, बेतकल्लुफ़ी, बेसाख़्तापन, नज़ीर अहमद के अस्लूब की आम सिफ़ात हैं जो ख़ुश्क-से-ख़ुश्क मौज़ू को पुरलुत्फ़ बना देती हैं। 'मिरातुल-अरूस' में, जो दरअसल छोटी उम्र की लड़कियों के लिए लिखी गई थी, उन्होंने ख़ास तौर पर हल्का-फुल्का सुबकरौ चश्मे की तरह बहता हुआ तर्ज़े-अदा अख़्तियार किया है और घरेलू बोल-चाल की ज़बान में वह मिठास और घुलावट पैदा कर दी है कि पढ़नेवाला किताब को शरबत के घूँट की तरह पीता चला जाता है। दिल्ली के मुतवस्त तबक़े के एक घराने की जो जीती-जागती तसवीर इस किताब में खींची गई है वह पहली बड़ी लड़ाई से पहले हिन्दुस्तान के बहुत से शहरों में लोगों को अपने घराने की तसवीर नज़र आती

मक़बूलियत—लोक-प्रियता; **मतन में**—कलेवर में; **बेसाख़्तापन**—नैसर्गिकता; **अस्लूब**—**शैली**, Style. **मुतवस्त**—औसत दर्जे के, मध्यवित्त।

थी। और लड़कियों की तरबियत और घरदारी के जो मसले इसमें छेड़े गए हैं वे अपने मसले मालूम होते थे। इसलिए उस ज़माने में इसे क़बूले-आम हासिल होना क़ुदरती बात थी।

अदबी ख़ूबियों के लिहाज़ से तो अब भी यह किताब उतनी ही दिल लुभाने वाली है। लेकिन जिस ज़िन्दगी का इसमें नक़्शा खींचा गया है उसमें बहुत बड़ी तब्दीली हो गई है। इसके मसले और उन मसलों के हाल बहुत-कुछ बदल गये हैं। इसलिए सतही तौर पर देखने वालों को यह तसवीर अपनी नहीं लगती और उनका दिल इसकी तरफ़ इतना नहीं खिचता जितना दो क़रन पहले के लोगों का खिचता था। लेकिन जो गहरी नज़र रखते हैं और जिन्होंने इस कहानी की हीरोइन असग़री के ख़द ओ ख़ाल में हिन्दुस्तानी औरत की सूझ-बूझ, उसकी रखपत-रखापत, उसके अथाह सहार और अनन्त प्रेम की झलक देखी है वह जानते हैं कि असग़री और उसकी कहानी अमर है। अगर आज वो हमें जानी-बूझी नहीं बल्कि बेगानी नज़र आये तो यह समझना चाहिये कि हम पराये रंग में इतने डूब गए हैं कि अपने-आपसे बेगाना हो गए और हमने नये ज़माने, नये हालात, नई तालीम, नई तहज़ीब के हुजूम में हिन्दुस्तानी औरत को खो दिया है। उसे ढूँढ़कर निकालना है तो जदीद मुसन्निफ़ों के ताज़ातरीन नाविलों और अफ़सानों के मुताले से थोड़ा-सा वक़्त निकालकर नज़ीर अहमद जैसे पुराने लिखने वालों की 'मिरातुल-अ़रूस' जैसी पुरानी कहानियाँ दिल लगाकर पढ़िये।

अलीगढ़
सितम्बर, १९५७

सैयद आबिद हुसैन

तरबियत—शिक्षा-दीक्षा; **क़रन**—दशाब्दी; **ख़द-ओ-ख़ाल**—चरित्र; **मुताला**—पुस्तक-पठन।

दीवाचा

ख़ुदावन्दे-करीम का शुक्र अपनी गोयाई की बिसात भर तो अदा हो ही नहीं सकता। उसकी बंदानवाज़ियों और हज़ारों-लाखों नैमतों की मकाफ़ात का हौसला—छोटा मुँह बड़ी बात।

पैग़ंबर साहब की मदह अपनी इरादते-नाक़िस की क़दर तो बन ही नहीं पड़ती—उनकी शफ़क़तों और दिलसोज़ियों की तलाफ़ी का दावा—इतनी-सी जान गज़-भर की ज़बान।

हम्दओ नात के बाद वाज़ह हो कि हर चंद इस मुल्क

दीवाचा—भूमिका; **ख़ुदावन्दे करीम**—कृपालु ईश्वर; **शुक्र**—धन्यवाद; **गोयाई**—वाणी; **बिसात**—बिसात असल में तो बिछौने को कहते हैं, बाद में इसीसे फैलाव का अर्थ निकलने लगा। यहाँ यही अर्थ है कि हमारी वाणी में जितना फैलाव और शक्ति है उतना भी अदा नहीं हो सकता; **बंदानवाज़ी**—दीन-दुखियों पर दया करना; **नैमत**—वरदान, उपहार; **मकाफ़ात**—बदला; **पैग़ंबर साहब**—मुहम्मद साहब चूँकि अल्लाह का पैग़ाम लाये थे उन्हें पैग़ंबर कहते हैं; **मदह**—स्तुति; **इरादते-नाक़िस**—अपूर्ण श्रद्धा; **शफ़क़त**—मेहरबानी; **दिलसोज़ी**—इसका शाब्दिक अर्थ तो दिल जलाना है, जैसे मोहन की सोहन से सच्ची दोस्ती है तो सोहन की ख़राबियों को देखकर मोहन को दुःख होगा और उसका दिल जलेगा। मतलब यह कि मोहन बहुत ही ख़ैरख़्वाह यानी शुभचिन्तक है; **तलाफ़ी**—बदला; **हम्द**—हम्द, नात और मदह तीनों का एक ही अर्थ है। मगर हम्द का प्रयोग सिर्फ़ ख़ुदा की स्तुति के लिए होता है; **वाज़ह**—स्पष्ट; **हर चंद**—यद्यपि।

में मस्तूरात के पढ़ाने-लिखाने का रिवाज नहीं, मगर फिर भी बड़े शहरों में ख़ास-ख़ास शरीफ़ ख़ानदानों की बाज़ औरतें क़ुरान मजीद का तर्जुमा, मज़हबी मसायल और नसायह के उर्दू रिसाले पढ़-पढ़ा लिया करती हैं। मैं ख़ुदा का शुक्र करता हूँ कि मैं भी देहली के एक ऐसे ही ख़ानदान का आदमी हूँ। ख़ानदान के दस्तूर के मुताबिक़ मेरी लड़कियों ने भी 'क़ुरान शरीफ़', उसके मानी और उर्दू के छोटे-छोटे रिसाले घर की बड़ी-बूढ़ियों से पढ़े। घर में रात-दिन पढ़ने-लिखने का चरचा तो रहता ही था। मैं देखता था कि हम मर्दों की देखा-देखी लड़कियों को भी इल्म की तरफ़ एक तरह की ख़ास रग़बत है। लेकिन इसके साथ ही मुझको यह भी मालूम होता था कि निरे मज़हबी ख़यालात बच्चों की हालत के मुनासिब नहीं। और जो मज़ामीन उनके पेशे-नज़र रहते हैं उनसे उनके दिल अफ़सुर्दा, उनकी तबीयतें मुन्क़बिज़ और उनके ज़हन कुंद होते हैं। तब मुझको ऐसी किताब की जुस्तजू हुई जो इख़लाक़ ओ नसायह से भरी हुई हो और उन मामलात में जो औरतों की ज़िन्दगी में पेश आते हैं और औरतें अपने तोहमात और जहालत और कजराई की वजह से हमेशा इनमें मुब्तिलाये-रंज ओ मुसीबत रहा करती हैं, उनके

मस्तूरात—औरतें; **मसायल**—मसले; **नसायह**—नसीहत का बहु वचन; **रिसाला**—किताब; **रग़बत**—रुचि; **मज़ामीन**—मज़मून का बहु वचन है, विषय; **पेशे-नज़र**—नज़र के सामने; **अफ़सुर्दा**—बुझे हुए, उदास; **मुन्क़बिज़**—बन्द, रुकी हुई; **ज़हन**—दिमाग़; **कुंद**—भोंथरा, गब्बी; **जुस्तजू**—तलाश; **इख़लाक़**—नेकचलनी, नैतिकता; **तोहमात**—वहम से पैदा की हुई बातें जिनकी कोई बुनियाद न हो, जैसे हम कोई काम करना चाहें और किसी शख़्स के छींक देने से रुक जावें; **जहालत**—अज्ञान, नादानी; **कजराई**—कुबुद्धि; **मुब्तिला**—फँसी हुई।

ख़यालात की इस्लाह और उनकी आदात की तहज़ीब करे और किसी दिलचस्प पैराये में हो जिससे उनका दिल न उकताए, तबीयत न घबराये। मगर तमाम किताबख़ाना छान मारा ऐसी किताब का पता न मिला, पर न मिला। तब मैंने इस क़िस्से का मंसूबा बाँधा। तीन बरस हुए जब मैं झाँसी में था कि अकबरी का हाल क़लमबंद किया। लड़कियों को तो इसका वज़ीफ़ा हो गया और हर रोज़ ख़तम किताब का तक़ाज़ा शुरू किया। यहाँ तक कि डेढ़ बरस में असग़री का हाल भी लिखा गया। होते-होते इस किताब का चरचा मुहल्ले में हुआ और चंद औरतें इसके सुनने को आईं। जिसने सुना रीझ गई। ऊँचे-ऊँचे घरों में किताब मँगवाई गई—नक़ल लेने के इरादे हुए। जब मैंने देख लिया कि यह किताब औरतों के निहायत मुफ़ीद है और ख़ूब दिल लगाकर पढ़ती और सुनती हैं तब इसको जनाब डाइरेक्टर साहब बहादुर मदारिस मुमालिके शुमाली व मग़रिबी के ज़रिये से सरकार में पेश किया। सरकार की क़द्रदानी ने तो मेरी आबरू और इस किताब की क़द्र व वक़अत को ऐसा बढ़ाया कि मैं बयान नहीं कर सकता। मैंने ख़ातिरख़्वाह अपनी मुराद और मेहनत की दाद पाई। जो कुछ वक़्त इस किताब की तसनीफ़ में सर्फ़ हुआ उसके अलावा मुद्दतों यह किताब इस ग़र्ज़ से पेशे-नज़र रही कि बोली

इस्लाह—संशोधन, सुधार; **तहज़ीब**—दुरुस्ती, सुधार; **पैराया**—प्रसंग; **छान मारा**—ढूँढ़ डाला; **मंसूबा**—इरादा; **क़लमबंद करना**—लिखना; **वज़ीफ़ा**—जप को कहते हैं। जिस प्रकार जप करने वाले हर वक़्त जप करते रहते हैं, उसी तरह लड़कियाँ हर वक़्त इस किताब को पढ़ती थीं; **निहायत**—बहुत; **मुफ़ीद**—फ़ायदेमंद; **मदारिस**—मदरसे का बहु वचन; **मुमालिक**—मुल्क का बहु वचन; **शुमाली**—उत्तरी; **मग़रिबी**—पश्चिमी; **वक़अत**—क़ीमत; **ख़ातिरख़्वाह**—मनचाही; **दाद**—पुरस्कार; **तसनीफ़**—लेखन ।

बामुहावरा हो, ख़यालात पाकीज़ा और किसी बात में आवर-दावर बनावट का दख़ल न हो। चूँकि बिलकुल नये तौर की किताब है अजब नहीं कि फिर भी इसमें क़सर रह गई हो। नाज़रीन से तवक़्क़ो है कि माज़ूर रखें क्योंकि इस तर्ज़ में यह पहली तसनीफ़ है।

अल्अब्द
नज़ीर अहमद
वफ़्फ़क़हु अल्लाहु अत्तज़व्वुद लिग़दिन्

पाकीज़ा—शिष्ट, पुनीत; **नाज़रीन से**—पाठकों से; **तवक़्क़ो**—आशा; **माज़ूर रखना**—माफ़ करना; **अल्अब्द**—बंदा; **वफ़्फ़क़हु अल्लाहु अत्तज़व्वुद लिग़दिन्**—अल्लाह उसे कल (क़यामत) के लिए संबल दे।

बाब पहला

तमहीद के तौर पर औरतों के लिखने-पढ़ने की ज़रूरत और उनकी हालत के मुनासिब कुछ नसीहतें

जो आदमी दुनिया के हालात में कभी ग़ौर नहीं करता उससे ज़्यादा कोई अहमक़ नहीं। ग़ौर करने के वास्ते दुनिया में हज़ारों तरह की बातें हैं। लेकिन सबसे उम्दा और ज़रूरी आदमी का अपना हाल है कि जिस रोज़ से आदमी पैदा होता है ज़िन्दगी में उसको क्या-क्या बातें पेश आतीं और क्योंकर उसकी हालत बदला करती है।

इंसानी ज़िन्दगी में सबसे अच्छा वक़्त लड़कपन का है। इस उम्र में आदमी को किसी तरह का फ़िक्र नहीं होता। माँ-बाप निहायत शफ़क़त और मुहब्बत से उसको पालते और जहाँ तक बस चलता है उसको आराम देते हैं। औलाद के अच्छा खाने और अच्छा पहनने से माँ-बाप को ख़ुशी होती है। बल्कि माँ-बाप औलाद के आराम के वास्ते अपने ऊपर तकलीफ़

तमहीद—प्रस्तावना; **ग़ौर करना**—ध्यान लगाकर सोचना; **अहमक़**—मूर्ख; **शफ़क़त**—प्यार, मेहरबानी।

और रंज तक गवारा कर लेते हैं। मर्द, जो बाप होते हैं, कोई मेहनत-मज़दूरी से कमाते हैं, कोई पेशा करते हैं, कोई सौदागरी, कोई नौकरी। गर्ज़ जिस तरह बन पड़ता है औलाद को आसाइश के वास्ते रुपये के पैदा करने में कोताही नहीं करते। औरतें, जो मां होती हैं, अगर बाप की कमाई घर के ख़र्च को काफ़ी नहीं होती, बाज़ औक़ात ख़ुद भी मेहनत किया करती हैं। कोई माँ सिलाई सीती है, कोई गोटा बुनती, कोई टोपियाँ काढ़ती, यहाँ तक कि कोई मुसीबत की मारी माँ चरख़ा कातकर, चक्की पीसकर, मामागिरी करके बच्चों को पालती है। औलाद की मुहब्बत जो माँ को होती है हरगिज़ बनावट और ज़ाहिरदारी की नहीं होती। बल्कि सच्ची और दिली मुहब्बत है। और ख़ुदाये-ताला ने जो बड़ा दाना है, यह मामता इसलिए माँ-बाप के पीछे लगा दी है कि औलाद परवरिश पाये। इब्तदाये-उम्र में बच्चे निहायत बेबस होते हैं—न बोलते न समझते, न चलते न फिरते। अगर माँ-बाप मुहब्बत से औलाद को न पालते तो बच्चे भूखों मर जाते। कहाँ से उनको रोटी मिलती, किस तरह कपड़ा बहम पहुँचाते

गवारा करना—सह लेना; **आसाइश**—आराम; **कोताही**—कमी; **औक़ात**—वक़्त का बहु वचन, समय; **मामागिरी**—मामा का पेशा, खाना पकाने और घर की टहल के लिए जो औरतें नौकरी करती हैं उन्हें मामा कहते हैं; **ज़ाहिरदारी**—दिखावा; **ख़ुदाये-ताला**—ईश्वर; **दाना**—अक़्लमन्द, ज्ञानी; **मामता**—ममता; **परवरिश**—पोषण; **इब्तदाये-उम्र**—शुरू की उमर; **निहायत**—अत्यन्त, अधिक; **बहम पहुँचाना**—मुहैया करना, प्राप्त करना।

और क्योंकर बड़े होते। आदमी पर क्या मौक़ूफ़ है, जानवर में भी औलाद की मामता बहुत सख़्त है। मुर्ग़ी बच्चों को दिन-भर परों में छिपाये बैठी रहती है और अनाज का एक दाना भी उसको मिलता है तो आप नहीं खाती, बच्चों को बुलाकर चोंच से उनके आगे सरका देती है। और अगर चील या बिल्ली उसके बच्चों पर हमला करना चाहे तो मुतलक़ अपनी जान का ख़याल न करके लड़ने और मरने को मौजूद हो जाती है। ग़र्ज़ हो-न-हो यह खास मुहब्बत माँ-बाप को सिर्फ़ इसलिए ख़ुदा ने दी है कि नन्हे-नन्हे बच्चों को जो ज़रूरत हो अटकी न रहे। भूख के वक़्त खाना और प्यास के वक़्त पानी, सर्दी से बचने को गरम कपड़ा और हर तरह की आराम की चीज़ वक़्ते-मुनासिब पर मिल जाय। देखने से एक बात यह भी मालूम होती है कि यह फड़क उसी वक़्त तक रहती है जब तक बच्चों को उसकी ज़रूरत और अहतियाज होती है। जब मुर्ग़ी के बच्चे बड़े हो जाते हैं तो वह उनको परों में छिपाना छोड़ देती है; और जब बच्चे चल-फिर कर आप अपना पेट भरने के क़ाबिल हो जाते हैं, मुर्ग़ी कुछ भी उसकी मदद नहीं करती। बल्कि जब बहुत बड़े हो जाते हैं तो उनको इस तरह मारने दौड़ती है, गोया वह उनकी माँ नहीं। आदमी के माँ-बाप का भी यही हाल है। जब तक बच्चा बहुत छोटा है माँ दूध पिलाती है और उसको गोद में लादे-लादे फिरती है। अपनी नींद ख़राब करके बच्चे को थपक-थपककर सुलाती

मौक़ूफ़—अवलम्बित; **मुतलक़**—बिलकुल; **वक़्ते-मुनासिब**—ठीक समय पर; **फड़क**—उत्कट ममता; **अहतियाज**—आवश्यकता, ख्वाहिश।

है। जब बच्चा इतना सयाना हुआ कि खिचड़ी खाने लगा, माँ दूध बिल्कुल छुड़ा देती है और वही दूध, जिसको बरसों प्यार से पिलाती रही, सख़्ती और बेरहमी से नहीं पीने देती कड़वी-चीज़ें लगा लेती है और बच्चा ज़िद करता है तो मारती और घुड़कती है। चन्द रोज़ बाद बच्चों का यह हाल हो जाता है कि गोद में लेना तक नागवार होता है। क्या तुमने अपने छोटे भाई-बहन को इस बात पर मार खाते नहीं देखा कि माँ की गोद से नहीं उतरते। माँ ख़फ़ा हो रही है—"कैसा नाहमवार बच्चा है, एक दम नहीं छोड़ता!" इन बातों से यह मत समझो कि माँ को मुहब्बत नहीं रही। नहीं-नहीं, मुहब्बत होती है। औलाद का हाल यकसां नहीं रहता, आज दूध पीते हैं, कल खाने लगे, फिर पाँव चलना सीखा। बच्चा जितना बड़ा होता गया मुहब्बत का रंग बदलता गया। और ज़्यादा बड़े होकर लड़के और लड़कियाँ पढ़ने और लिखने पर और काम करने के वास्ते मारें खाते हैं। अगरचे बेवकूफ़ी से बच्चे न समझें, मगर माँ-बाप के हाथों से जो तकलीफ़ भी तुमको पहुँचे वह ज़रूर तुम्हारे अपने फ़ायदे के वास्ते है। तुमको दुनिया में माँ-बाप से अलग रहकर बहुत दिनों जीना पड़ेगा। किसी के माँ-बाप तमाम उम्र जिन्दा नहीं रहते। ख़ुशनसीब हैं वे लड़के और लड़कियाँ जिन्होंने माँ-बाप के जीते-जी ऐसा हुनर और ऐसा अदब सीखा जिससे उनकी

कड़वी चीज़ें—औरतें जब बच्चे का दूध छुड़ाने को होती हैं तो रसौत या कत्थे का लेप कर लिया करती हैं; **नागवार**—अरुचिकर; **ख़फ़ा**—नाराज़; **नाहमवार**—शरारती; **यकसां**—एक सरीखा।

तमाम ज़िन्दगी ख़ुशी और आराम में गुज़री, और निहायत बदक़िस्मत हैं वे औलाद जिन्होंने माँ-बाप की ज़िन्दगी की क़द्र न की और जो आराम माँ-बाप की वजह से उनको मयस्सर हुआ उसको अकारत और ऐसे अच्छे फ़राग़त बेफ़िक्री के वक़्त को सुस्ती और खेल-कूद में ज़ाया किया। उम्र-भर रंज और मुसीबत में काटी। आप अज़ाब में रहे और माँ-बाप को अपने सबब अज़ाब में रखा। मरने पर कुछ मौक़ूफ़ नहीं, शादी-ब्याह हुए पीछे औलाद माँ-बाप से जीते-जी छूट जाती है। लड़कों और लड़कियों को ज़रूर सोचना चाहिए कि माँ-बाप से अलग हुए पीछे उनकी ज़िन्दगी क्योंकर गुज़रेगी।

दुनिया में बहुत भारी बोझ मर्दों के सर पर है। खाना, कपड़ा और रोज़मर्रा के ख़र्च की सब चीज़े रुपये से हासिल होती हैं और सारा खटराग रुपये का है। औरतों को बड़ी ख़ुशी की बात है कि अक्सर रुपया पैदा करने की मेहनत से महफ़ूज़ रहती हैं। मर्दों को देखो रुपये के लिए कैसी-कैसी सख़्त मेहनतें करते हैं। कोई भारी बोझ सर पर उठाता, कोई लकड़ियाँ चीरता। सुनार, लोहार, ठठेरा, कसेरा, कंदलागर ज़रकोब, दबकिया, तारकश, मुलम्मासाज़, जड़िया, सलमा-

---

मयस्सर होना—प्राप्त होना; **अकारत**—अकारथ, व्यर्थ; **फ़राग़त**—फ़ुरसत; **ज़ाया**—बरबाद; **अज़ाब**—संकट, दुःख; **रोज़मर्रा**—प्रतिदिन; **खटराग**—बखेड़ा; **महफ़ूज़**—सुरक्षित; **क़ंदलागर**—सोने-चाँदी के तार बनाने वाला; **ज़रकोब**—वरक़साज़, सोने-चाँदी के वरक़ बनाने वाला।

सितारे वाला, बटैया, बदरसाज़, मीनासाज़, क़लईगर, सादा-कार, सैकलगर, आईनासाज़, ज़रदोज़, मनिहार, नालबन्द, नगीनासाज़, कामदानी वाला, सानगर, नियारिया, ढलैया, बढ़ई, ख़रादी, नारियल वाला, कंघीसाज़, बँसफोड़, काग़ज़ी, जुलाहा, रफ़ूगर, रंगरेज़, छीपी, दस्तारबन्द, दरज़ी, इलाक़ाबन्द, पंजाबन्द, मोची, मुहरकन, संगतराश, हक्काक, मैमार, दबगर, कुम्हार, हलवाई, तेली, तम्बोली, रंगसाज़, गन्धी वग़ैरह जितनें पेशे वाले हैं किसी का काम जिस्मानी और दिमाग़ी तकलीफ़ से ख़ाली नहीं। और रुपये की ख़ातिर यह तमाम तकलीफ़ मर्दों को सहनी और उठानी पड़ती है। लेकिन इस बात से यह नहीं समझना चाहिए कि औरतों से खाने और सो रहने के सिवा दुनिया का कोई काम मुतल्लिक़ नहीं। बल्कि ख़ानादारी के तमाम काम औरतें ही करती हैं। मर्द अपनी कमाई औरतों के आगे लाकर रख देतें हैं और औरतें अपनी अक़्ल से उसको बन्दोबस्त करके सलक़े से उठाती हैं। बस अगर ग़ौर से देखो तो दुनिया की गाड़ी जब तक एक पहिया

बटैया—कलाबत्तू बटने वाला; **सादाकार**—सुनार जो बहुत ही जड़ाऊ काम करता है; **सैकलगर**—पॉलिश करने वाला; **ज़रदोज़**—कपड़ों पर सलमे-सितारे का काम करने वाला; **मनिहार**—लखेरा, लाख की चूड़ी बनाने वाला; **सानगर**—चाकू-छुरी तेज़ करने वाला; **नियारिया**—कूड़े में से सोने आदि के कण निकालने वाला; **दस्तारबन्द**—पगड़ी बाँधने वाला; **इलाक़ाबन्द**—पटवागिरी करने वाला, जेवर में डोरे गूँथने वाला; **मुहरकन**—मुहर खोदने वाला; **हक्काक**—मुहरकन; **दबगर**—ढाल बनाने वाला, आजकल कुप्पा बनाने वाले को कहते हैं; **मुतल्लिक**—सम्बन्धित; **ख़ानादारी**—घर गृहस्थी।

मर्द का और दूसरा औरत का न हो तो चल नहीं सकती। मर्दों को रुपया कमाने से इतना वक़्त नहीं बचता कि उसको घर के कामों में सर्फ़ करें। अय लड़को! वो बात सीखो कि मर्द होकर तुम्हारे काम आए; और अय लड़कियो! ऐसा हुनर हासिल करो कि औरत होने पर तुम को उससे ख़ुशी और फ़ायदा हो। बेशक औरत को ख़ुदा ने मर्द की निस्बत किसी क़दर कमज़ोर पैदा किया है, लेकिन हाथ, पाँव, कान, आँख, याददाश्त, सोच-समझ सब चीज़ें मर्दों के बराबर औरतों को भी दी गई हैं। लड़के इन ही चीज़ों से काम लेकर हर फ़न में ताक़ और हर हुनर में मुश्ताक़ हो जाते हैं। लड़कियाँ अपना वक़्त गुड़िया खेलने और कहानियाँ सुनने में खोती हैं वैसे ही बेहुनर रहती हैं। और जिन औरतों ने वक़्त की क़द्र पहचानी और उसको काम की बातों में लगाया, या हुनर सीखा, लियाकत हासिल की वो मर्दों से किसी बात में हेठी नहीं रहीं। मलिका विक्टोरिया को देखो औरत ज़ात होकर किस धूम और किस शान और किस नामवरी और किस सादगी के साथ इतने बड़े मुल्क का इन्तज़ाम कर रही हैं कि दुनिया में किसी मर्द बादशाह को आज यह बात नसीब नहीं। जब एक औरत ने सल्तनत जैसे कठिन काम को और सल्तनत भी माशा अल्लाह! इस क़दर वसीअ़। ऐसे नाज़ुक वक़्त में

सर्फ़—ख़र्च; **निस्बत**—अपेक्षा; **याददाश्त**—स्मरण-शक्ति; **ताक़**—अद्वितीय; **मुश्ताक़**—इच्छुक; **लियाक़त**—योग्यता; **सल्तनत**—शासन; **माशा अल्लाह**—अरबी का वाक्यांश है, मतलब ईश्वर की मर्ज़ी, ईश्वर उसे कुदृष्टि से बचाए; **वसीअ़**—लम्बी-चौड़ी, विस्तृत।

कि बात मुँह से निकली और अखबार वालों ने बतंगड़ बनाया इतनी मुद्दत दराज़ तक सँभाला और ऐसा सँभाला कि जो सँभालने का हक़ है। तो अब औरतों की ख़ुदादाद क़ाबलियत में कलाम करना निरी हठधर्मी है।

बाज़ नादान औरतें ख़याल करती हैं कि क्या लिख-पढ़कर हमको मर्दों की तरह नौकरी करनी है। अगर किसी औरत ने पढ़-लिख लिया है तो गो उसने नौकरी नहीं की मगर उसका लिखना-पढ़ना अकारथ भी नहीं गया। उसको और बहुतेरे फ़ायदे पहुँचे जिनके मुक़ाबले में नौकरी की कुछ भी हक़ीक़त नहीं। जो लोग इल्म को सिर्फ़ नौकरी का ज़रिया समझकर पढ़ते हैं उनको इल्म की क़द्र नहीं। सच पूछो तो इल्म के आगे नौकरी ऐसी है जैसे सौदे के साथ रूखन। कहाँ से क़ुव्वते-बयान लाएँ कि तुमको इल्म के फ़ायदे समझाएँ। ज़ाहिर की दो आँखें तो हमारे तुम्हारे सब के मुँह पर हैं। कभी अन्धे फ़क़ीरों की सदा सुनो कि किस हसरत से कहते हैं—"बाबा अँखियाँ बड़ी नैमत हैं।" शायद कोई ऐसा संगदिल न होगा जिसको अन्धों की माज़ूरी और

मुद्दत दराज़—लम्बे समय तक; **ख़ुदादाद**—ईश्वर दत्त; **क़ाबलियत**—क्षमता; **कलाम करना**—एतराज करना; **गो**—यद्यपि; **रूखन**—दूकानदारों का दस्तूर है कि खरीदार को खुश करने के लिए ऊपर से कुछ और दे दिया करते हैं, इसीको 'रूखन' कहते हैं; **क़ुव्वते-बयान**—वर्णन करने की शक्ति; **सदा**—आवाज़, फक़ीरों की आवाज़ को 'सदा' कहने लगे हैं, वरना 'सदा' प्रतिध्वनि को कहते हैं; **हसरत**—अफ़सोस, खेद; **नैमत**—अलभ्य वस्तु; **संगदिल**—कठोर हृदय, जिसका हृदय पत्थर का हो; **माज़ूरी**—असमर्थता।

बेकसी पर रहम न आता हो। लेकिन दिल के अन्धे जिनको लिखना-पढ़ना नहीं आता उनसे कहीं ज़्यादा क़ाबिले-रहम हैं। अंग्रेज़ों की विलायत में तो अन्धों की तालीम का ऐसा उम्दा इन्तज़ाम है कि अन्धे टटोल-टटोलकर अच्छी-ख़ासी तरह अख़बार और किताबें सब-कुछ बेतकल्लुफ़ पढ़ लेते हैं। हमारे यहाँ के अन्धे भी बाज़ ऐसे बला के ज़हीन होते हैं कि सूई पिरोयें, सीयें, अकेले सारे शहर के गली-कूचों में बेधड़क दौड़े-दौड़े फिरें। खोटा-खरा रुपया परखें। 'क़ुरान शरीफ़' का हिफ़्ज़ करना तो अन्धों के लिए गोया एक मामूली बात है। ग़दर से पहले शहर में गिनती के दो-चार मादरज़ाद अन्धे मौलवी भी थे। ग़र्ज़ आँखों का अन्धा होना मुसीबत है, मगर न ऐसी कि जैसे दिल का अन्धा (यानी जाहिल होना)। लेकिन अफ़सोस कोरिये-दिल के नुक़सानात से लोग वाक़िफ़ नहीं। और यही वजह है कि आलिम और फ़ाज़िल होना तो दर-किनार हजार पीछे एक भी पढ़ा-लिखा नज़र नहीं आता।

यह तो मर्दों का मज़कूर है जिनको पढ़-लिखकर रोटी कमानी है। औरतों में पढ़ने-लिखने का चरचा इस क़दर कम

बेकसी—विवशता; **क़ाबिले-रहम**—दया के पात्र; **बेतकल्लुफ़**—बेहिचक; **बाज़**—कोई; **बला के ज़हीन**—मुहावरा है यानी हद से ज़्यादा दिमाग़ वाले कि उनका दिमाग़ ही एक आफ़त हो; **हिफ़्ज़**—कण्ठस्थ; **मादरज़ाद**—जन्मजात; **जाहिल**—अज्ञानी; **कोरिये-दिल**—कोर फ़ारसी में अंधे को कहते हैं, दिल का अन्धापन, अज्ञान; **वाक़िफ़**—जानकार, परिचित; **आलिम और फ़ाज़िल**—ज्ञानी और पण्डित; **मज़कूर**—बात, वर्णन।

है कि दिल्ली-जैसे ग़द्दार शहर में अगर मुश्किल से सौ-सवा सौ औरतें वो भी शायद हर्फ़शनास निकलीं भी तो इसको चरचा नहीं कह सकते। फिर अगर चरचा न हो ख़ैर चन्दां मुजायक़े की बात नहीं। मुसीबत तो यह है कि अकसर लोग औरतों के लिखाने-पढ़ाने को ऐब और गुनाह ख़याल करते हैं। उनको ख़दशा यह है कि ऐसा न हो लिखने-पढ़ने से औरत की चार आँखें हो जायँ। लगें ग़ैर मर्दों से ख़त-ओ-किताबत करने और ख़ुदा न ख़ास्ता कल कलां को उनकी पाकदामनी और परदा-दारी में किसी तरह का फ़ितूर वाक़ा हो। ये सिर्फ़ शैतानी वसवसे हैं और मुल्क की, ख़ुसूसन औरतों की, बदक़िस्मती लोगों को बहका और भड़का रही है। अव्वल तो हम एक ज़री-सी बात यही पूछते हैं कि इल्म इन्सान की इस्लाह करता है या उलटा उसको बिगाड़ता और ख़राबी के लच्छन सिखाता है? अगर बिगाड़ता है तो मर्दों को भी पढ़ने-लिखने की मनाही होनी चाहिए ताकि बिगड़ने न पायें। और मर्द बिग-ड़ेंगे तो कभी-न-कभी उनका बिगाड़ औरतों में असर करेगा

ग़द्दार—ग़द्दार का शाब्दिक अर्थ तो दंगा-फसाद करने वाला होता है। लेकिन यहाँ बहुत बड़ा का अर्थ है; **हर्फ़शनास**—अक्षर पहचानने वाली; **चन्दां**—इतना; **मुजायक़ा**—हर्ज; **ख़दशा**—डर; **ख़त-ओ-किताबत**—चिट्ठी-पत्री लिखना; **ख़ुदा न ख़ास्ता**—ईश्वर न करे; **कल कलां**—भविष्य में; **पाकदामनी**—सतीत्व; **परदादारी**—पर्दानशीन रहने के गुणों में; **फ़ितूर**—खलल, दोष; **वाक़ा होना**—पैदा होना; **वसवसा**—आशंका; **ख़ुसूसन**—विशेषकर; **ज़री-सी**—ज़रा-सी बात का दिल्ली का मुहावरा; **इस्लाह**—संशोधन; **लच्छन**—लक्षण।

पर करेगा। दूसरे इन्साफ़ शर्त है बेशक बाज़ पढ़े-लिखे मर्द भी आवारा और बदवज़ा होते हैं। लेकिन क्या इल्म ने उनको आवारगी और बदवज़ई सिखाई ? नहीं-नहीं आवारगी और बदवज़ई उन्होंने बुरी सोहबत में देखी या खुजली और कोढ़ की तरह उनको उड़कर लगी। और पढ़-लिखकर उनकी बुराई छटाँक-भर है तो न पढ़ने की सूरत में यक़ीन जानो ज़रूर सेर-सवा सेर होती। बा ईं हमा मसलन सौ पढ़े-लिखों पर नज़र डालो तो इक्का-दुक्का शामतज़दा ख़राब हो, तो हो, वरना ख़ुदा ने चाहा तो अकसर नेक, भलेमानस, माँ-बाप का अदब करने वाले, भाई-बहनों से मुहब्बत रखने वाले, बड़े को बड़े और छोटे को छोटे की जगह समझने वाले, दंगे-फ़िसाद और बुरी सोहबत से दूर भागने वाले, नमाज़ पढ़ने वाले, रोज़े रखने वाले, सच बोलनेवाले, ग़रीबों पर तरस खाने वाले, ग़ुस्से के पी जाने वाले, बुज़ुर्गों की नसीहत पर चलने वाले, लिहाज़-शरम वाले, जैसा खाना-कपड़ा मयस्सर आया शुक्रगुज़ारी के साथ खाने-पहनने वाले। हमारी भी सारी उम्र ऐसे ही लोगों में गुज़री है। हम तुमसे सच कहते हैं कि जो शख़्स इल्म को

इंसाफ़ शर्त—हम जो कहना चाहते हैं उसके सुनने के लिए शर्त यह है कि सुनने वाला न्यायप्रिय हो; **बेशक**—निस्सन्देह; **बदवज़ा**—अशिष्ट; **बदवज़ई**—अशिष्टता; **बा ईं हमा**—इन तमाम बातों के अलावा; **मसलन**—मिसाल के तौर पर; **शामतज़दा**—कमबख़्त, बदनसीब; **रोज़ा**—उपवास को कहते हैं; **तरस**—दया; **ग़ुस्से को पीना**—क्रोध को जीतना या ज़ब्त करना; **बुज़ुर्ग**—गुरुजन; **नसीहत**—सीख; **मयस्सर आना**—मिलना; **शुक्रगुज़ारी**—कृतज्ञता।

बदनाम करता है आसमान को थूकता है और चाँद पर ख़ाक डालता है। बेशक बाज़ बुरे लोगों ने बुरी किताबें भी दुनिया में फैला दी हैं। उर्दू में इस क़िस्म की किताबें बहुत कम हैं और जो हैं सिलसिलये-दर्स से ख़ारिज हैं और उनका पढ़ना और सुनना क्या मर्द क्या औरत सब ही के हक़ में ज़बूं है। लेकिन इस ख़याल से कि आँख बुरी जगह भी पड़ सकती है या ज़बान से बाज़ नालायक कोसते, झूठ बोलते, गालियाँ बकते, बिला ज़रूरत क़सम खाते या लोगों के पीठ पीछे उनकी बदियाँ रोते हैं जिसको ग़ैबत कहते हैं, न आँख फोड़ी जाती है और न ज़बान काटी जाती है। तो सिर्फ़ इल्म ने क्या क़ुसूर किया है कि एक लग़्व और बेअसल एहतिमाल की बुनियाद पर औरतों को उसके बेइन्तहा दीनी और दुनियावी फ़ायदों से महरूम रखा जाय ? क्या इतना नहीं हो सकता कि बेहूदा किताबों को मस्तूरात की नजर से न गुज़रने दें ? अलावा बरीं आदमी के दिल को ख़ुदा ने बनाया है आज़ाद। जब इन्सान को किसी काम पर मजबूर किया है तो वह चार और नाचार उस काम को करता तो है मगर न उस उम्दगी और ख़ूबी

आसमान—जिस तरह आसमान का थूँका उल्टा मुँह पर आता है और ख़ाक उड़ाने से चाँद धुँधला नहीं होता उसी तरह से इल्म बदनाम करने से बदनाम नहीं होता बल्कि बदनाम करने वाले को बदनाम करता है; **सिलसिलये-दर्स**—पठन-क्रम; **ख़ारिज**—रद्द; **ज़बून**—बुरा; **बदियाँ रोना**—बुराइयाँ करना; **ग़ैबत**—चुगली; **लग़्व**—झूठ; **एहतिमाल**—शंका; **बेइन्तहा**—अपार; **दीनी**—धार्मिक; **महरूम**—वञ्चित; **मस्तूरात**—स्त्रियाँ, औरतें; **अलावा बरीं**—इसके अलावा।

के साथ जैसा कि ख़ुद अपने दिल के तक़ाजे से। कहाँ तो दूसरों की ज़बरदस्ती और कहाँ अपना शौक़। मसलन बाज़ तो वो हैं जिनको ख़ुद पढ़ने का मुतलक़ शौक़ नहीं। इस वास्ते कि नादान हैं, बेसमझ हैं। इतना नहीं जानते कि आज को जी लगाकर पढ़-लिख लेंगे तो बड़े हुए पीछे हमारे ही काम आयेगा। दुनिया में हमारी इज़्ज़त ओ आबरू होगी। इन्हीं दो हर्फ़ों की बदौलत ख़ुदा हमको अमीर कर देगा। लोग हमारी वक़अ़त और ताज़ीम करेंगे। दुनिया और दीन दोनों में हमारा भला होगा। तो ऐसे बदशौक़ लड़के कभी ख़ुशी से मदरसे नहीं जाते। घरवालों ने ज़बरदस्ती धकेल दिया या मकतब के लड़के आये और टाँगकर ले गये। ज़बरदस्ती गये, बेदिली से बैठे रहे। छुट्टी मिली, न कुछ पढ़ा न लिखा। कोरे वापस आये। दूसरी क़िस्म के लड़के वो हैं जिनकी क़िस्मत में ख़ुदा ने कुछ बेहतरी लिखी है। वो आपसे बे कहे, बे भेजे, बे बुलाये, वक़्त से पहले मदरसे को दौड़े चले जाते हैं। जाते ही आमोख़्ता पढ़ा, मुताला किया, सबक लिया और आख़िर वक़्त तक उसमें लगे-लिपटे रहे। अब हम पूछते हैं कि इन दोनों क़िस्म के लड़कों में किससे उम्मीद की जा सकती है कि लिख-पढ़कर इम्तिहान पास करेगा। घर बैठे उसको नौकरी के बुलावे आयेंगे। ज़्यादा सोचने की कुछ ज़रूरत नहीं। बेशक

मसलन—मिसाल के तौर पर, जैसे; **मुतलक़**—बिलकुल; **वक़अ़त**—मूल्य; **ताज़ीम**—सम्मान; **मकतब**—पाठशाला; **आमोख़्ता**—पढ़ा हुआ पाठ; **मुताला**—आगे का पाठ निकालने और पढ़ने को मुताला कहते हैं; **इम्तिहान**—परीक्षा।

जिसको शौक़ है उसीको फ़ौक़ है ।

इसी तरह हमारी औरतों में हया, पाकदामनी, परदादारी, नेकी जो-कुछ समझो खुदा के फ़ज़्ल ओ करम से बहुतेरी है । मगर बुरा मानो या भला मानो अभी तक है मजबूरी की । यानी मज़हब और मुल्की रिवाज और मर्दों की हुकूमत ने औरतों को ज़बरदस्ती नेक बना रखा है । लेकिन अगर खुद औरतों के दिल से नेकी का तक़ाज़ा हो तो सुबहान अल्लाह नूरुन् अ़ला नूर । एक तो सोना खरा, ऊपर से मिला सुहागा, क्या कहना है । मगर दिल से नेकी के तक़ाज़े के पैदा होने की इल्म के सिवा और कोई तदबीर ही नहीं । पस जो लोग औरतों को इल्म से महरूम रखना चाहते हैं गोया उनको सच्ची और हक़ीक़ी और पाक़ीज़ा और बेलौस और खरी और पायदार नेकदिली से रोकते हैं । फिर हम देखते हैं इल्म के लिए जो क़ुव्वतें दरकार हैं मर्द-औरत दोनों में बराबर हैं । इससे मालूम होता है कि औरतों को खुदा ने जाहिल रहने के लिए नहीं बनाया । जिस हालत में हमारी औरतें अब हैं

फ़ौक़—बरतरी; **हया**—शर्म, लज्जा; **पाकदामनी**—सतीत्व; **फ़ज़्ल ओ क़रम**—मेहरबानी; **सुबहान अल्लाह**—ईश्वर या अल्लाह पाक है, यह वाक्यांश तारीफ़ करने की जगह बोलते हैं; **नूरुन् अ़लानूर**—यह अरबी का वाक्यांश है, जिसका अर्थ है नूर पर नूर, यानी नेकी खुद नूर है फिर दिल का तकाज़ा तो दूसरा नूर हुआ; **सुहागा**—का गुण है कि सोने के मैल को काट देता है, यह एक कहावत है; **तदबीर**—साधना; **पस**—इसीलिए; **पाकीज़ा**—पवित्र; **बेलौस**—निर्लेप, बेलगाव; **क़ुव्वतें**—शक्तियाँ; **जाहिल**—अज्ञानी, मूर्ख ।

उसके लिए उनको इतनी अक़्ल की क्या ज़रूरत है ? पस ख़ुदा ने जो औरतों को इतनी सारी अक़्ल दी है जरूर किसी बड़े काम के लिए दी है यानी इल्म हासिल करने के लिए। लेकिन अगर औरतें अक़्ल से इल्म हासिल करने का काम न लें तो उनकी मिसाल ऐसी होगी जैसे हिन्दुओं के जोगी, जो अपना हाथ सुखाकर मसलहते-इलाही को बातिल करते हैं। क्यों साहब, हाथ का ख़ुश्क और बेकार कर देना बेहतर या उसको नेक काम में लाकर दुनिया का फ़ायदा और दीन का सवाब हासिल करना बेहतर ? मुसलमानों की तशफ़्फ़ी के लिए तो शायद इससे बढ़कर और कोई बात हो नहीं सकती कि पैग़म्बर साहब सली अल्लाह इलैह व सलम की बीबियों में हज़रत आयशा और हज़रत हफ़सा सर बर आवुर्दा थीं। एक दिन दोनों बैठी हुई बातें कर रही थीं कि पैग़म्बर साहब आ निकले और हज़रत आयशा की तरफ़ इशारा करके हज़रत हफ़सा से फरमाया कि इनको भी लिखना सिखाओ। हरचन्द पर्दानशीनी की वजह से दुनिया के बहुत से काम औरतों को माफ़ हैं लेकिन फिर भी ख़याल करो तो औरतें निरी निकम्मी नहीं हैं।

ख़ानादारी बदूं औरत के एक दिन नहीं चल सकती। मर्द कितना ही होशियार क्यों न हो मुमकिन नहीं कि औरत

मसलहते इलाही—ईश्वर का शुभ हेतु; **बातिल**—झूठा; **सवाब**—पुण्य; **तशफ़्फ़ी**—तसल्ली, संतोष; **सर बर आवुर्दा**—बढ़-चढ़ कर; **हरचंद**—यद्यपि; **वजह**—कारण; **ख़ानादारी**—घर का काम-काज, गृहस्थी; **बदूं**—बिना।

की मदद के बदूँ घर चला सकें। यही वजह है कि औरत के मरने को ख़ानावीरानी से ताबीर किया जाता है। पस अगर दुनिया के किसी काम में भी इल्म बकार आमद है तो बड़े ताज्जुब की बात है कि ख़ानादारी के इतने भारी काम में जो मर्दों के संभाले न संभले बकार आमद न हो। पर यों कहो कि लोगों को अपने मामलात में ग़ौर करने और सोचने की आदत नहीं। अगले लोग बुरी या भली जो राह निकाल गए हैं, दायें-बायें कुछ नहीं देखते, भेड़ों की तरह उस पर आँखें बंद किये चले जाते हैं। ख़ानादारी मुँह से कहने को तो एक लफ़्ज़ है मगर उसके मानी और मतलब पर नज़र करो तो पन्द्रह-बीस के फ़र्क़ से ख़ानादारी और दुनियादारी एक ही चीज़ है। ख़ानादारी में जो काम करने पड़ते हैं उनकी कोई फ़हरिस्त मुन्ज़बित नहीं हो सकती। शादी, ग़मी, तक़रीबात मेहमानदारी, लेन-देन, निस्बत नाता, पीसना पकाना, सीना-पिरोना, ख़ुदा जाने कितने बखेड़े हैं, जिसने घर किया हो उसी को कुछ ख़बर होगी। लेकिन इसी ख़ानादारी में औलाद की तरबियत भी है। और क़िसी काम के लिए औरतों को इल्म की ज़रूरत शायद न भी हो, मगर औलाद की तरबियत तो जैसी चाहिए बेइल्म के होनी मुमकिन नहीं। लड़कियाँ तो

मुमकिन—सम्भव ; **ख़ानावीरानी**—किसी की बीबी मर जाय तो कहा करते हैं कि बेचारे का घर बरबाद हो गया; **ताबीर करना**—उपमा देना; **मुंज़बित**—क़लम बंद, लिखना; **शादी**—ख़ुशी; **ग़मी**—शोक; **तक़रीबात**—तीज त्यौहार, ब्याह-शादी वग़ैरह ; **निस्बत नाता**—नाता-रिश्ता ; **तरबियत**—पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा ।

ब्याह तक और लड़के अकसर दस बरस की उम्र तक घरों में तरबियत पाते हैं और माओं की ख़ू बू उनमें असर कर जाती है। पस अय औरतो ! औलाद की अगली ज़िन्दगी तुम्हारे अख़्तियार में है। चाहो तो शुरू से उनके दिलों में ऐसे ऊँचे इरादे और पाकीज़ा ख़याल भर दो कि बड़े होकर नाम ओ नमूद पैदा करें और तमाम उम्र आसाइश में बसर करके तुम्हारे शुक्रगुज़ार रहें और चाहो तो उनकी उफ़्ताद को ऐसा बिगाड़ दो कि जूं जूं बड़े हों ख़राबी के लच्छन सीखते जायँ और अंजाम तक इस इब्तदा का तास्सुफ़ किया करें।

लड़कों को बोलना आया और तालीम पाने का माद्दा हासिल हुआ। अगर माओं को लियाक़त हो तो इसी वक़्त से बच्चों को तालीम कर चलें। मकतब या मदरसे भेजने के इन्तज़ार में लड़कों के कई बरस ज़ाया हो जाते हैं। बहुत छोटी उम्र में न तो ख़ुद लड़कों को मदरसे जाने का शौक़ होता है और न माओं की मुहब्बत इस बात को गवारा करती है कि नन्हे-नन्हे बच्चे जो अभी अपनी ज़रूरतों के ज़ब्त पर क़ादिर नहीं हैं उस्ताद की क़ैद में रखे जायँ। लेकिन मायें अगर चाहें इसी वक़्त में उनको बहुत-कुछ सिखा-पढ़ा दें।

ख़ू बू—आदत और प्रकृति; **नाम ओ नमूद**—नामवरी, कीर्ति; **आसाइश**—आराम, सुखचैन; **उफ़्ताद**—आदत, डौल; **लच्छन**—लक्षण; **अंजाम तक**—अन्त तक; **इब्तदा**—प्रारम्भ; **तास्सुफ़**—अफ़सोस; **तालीम**—शिक्षा; **माद्दा**—योग्यता; **लियाक़त**—जानकारी; **ज़ाया होना**—निरर्थक, बरबाद होना; **गवारा करना**—सहन करना; **ज़रूरतों**—यानी अपनी हाजतों, जैसे टट्टी-पेशाब की हाजतों को रोक नहीं सकते और न इसकी योग्यता है।

लड़के मदरसे में बैठने के बाद भी मुद्दतों तक बेदिली से पढ़ा करते हैं और कहीं बहुत दिनों में उनकी इस्तअ़दाद को तरक़्क़ी होती है । इस तमाम वक़्त में उनको माओं से यक़ीनन बहुत मदद मिल सकती है । अव्वल तो माओं की सी शफ़क़त और दिलसोज़ी कहाँ ? दूसरे रात-दिन का बराबर पास रहना । जब ज़रा तबीयत मुतवज्जा देखी झट कोई हर्फ़ पहचनवा दिया या कुछ गिनती ही याद करा दी । कहीं पूरब-पच्छिम का इम्तियाज़ बता दिया । मायें तो बातों-बातों में वो सिखा सकती हैं जो उस्ताद बरसों की तालीम में भी नहीं सिखा सकता । और माओं की तालीम में एक यह कितना बड़ा लुत्फ़ है कि लड़कों की तबीयत को वहशत नहीं होने पाती और शौक़ को तरक़्क़ी होती जाती है । औलाद की तहज़ीब तो तहज़ीब उनकी परवरिश, उनकी जान की हिफ़ाज़त माओं के अख़्तियार में है । अगर ख़ुदा न ख़ास्ता कहीं इस सलीक़े में कमी है तो औलाद की जिन्दगी मारिज़े-ख़तर में है । ऐसा कौन कमबख़्त होगा जिसको माओं की मुहब्बत में कलाम हो । लेकिन वही मुहब्बत अगर नादानी के साथ बरती जाय तो

मुद्दत—बहुत समय; **इस्तअ़दाद**—जानने की, सीखने की क़ाबलियत; **यक़ीनन**—सचमुच; **शफ़क़त**—मेहरबानी; **दिलसोज़ी**—सहानुभूति; **मुतवज्जा**—लगी हुई, किसी तरफ़ ध्यान का लगा होना; **इम्तियाज़**—पहचानना; **लुत्फ़**—मज़ा, उम्दगी, अच्छाई; **वहशत**—नफ़रत; **तहज़ीब**—बनाना सँवारना, संस्कार; **हिफ़ाज़त**—रक्षा; **ख़ुदा न ख़ास्ता**—ईश्वर न करे; **सलीक़ा**—योग्यता; **मारिज़े-ख़तर**—ख़तरे की जगह; **कलाम होना**—शंका होना ।

मुमकिन है कि बजाय नफ़े के उल्टा नुक़सान पहुँचाये। ज़रा इन्साफ करो क्या हज़ारों जाहिल और कम-अक़्ल मायें ऐसी नहीं हैं जो औलाद के हर-एक मर्ज़ को नज़र गुज़र या पर-छावां, झपट्टा और आसेब समझकर बजाय दवा के झाड़-फूँक उतारा किया करती हैं? वरना मुनासिब इलाज का असर तुम ही समझ लो क्या होता है। ग़र्ज़ यह है कि कुल ख़ाना-दारी की बल्कि यूँ कहो कि दुनियादारी की दुरुस्ती मौकूफ़ है अक़्ल पर और अक़्ल की इल्म पर। इस बात को हर कोई तसलीम करेगा कि औरत में सबसे बड़ा हुनर यह होना चाहिए कि जिसके पल्ले बँधी है आप उससे राज़ी रहे और उसको अपने से राज़ी और ख़ुश रखे।

तुमने बहिश्त और दोज़ख़ का हाल सुना होगा। सचमुच की बहिश्त और दोज़ख़ तो दूसरे जहां की चीज़ें हैं, मरे पीछे उनकी हक़ीक़त खुलेगी। लेकिन उनकी नक़लें घर-घर दुनिया

मर्ज़—बीमारी; **नज़र-गुज़र**—प्राय: अनपढ़ लोगों का यह ख़याल है कि दुनिया में भूत-प्रेत, जिन शैतान और मरे हुए लोगों की रूहें चलती-फिरती और ख़ासकर बच्चों को तरह-तरह की तकलीफ़ें देती रहती हैं। अगर किसी बच्चे पर इन चीज़ों की नज़र पड़ जाय या इनमें से कोई चीज़ चली जा रही हो और बच्चा उसके गुज़र यानी राह में या झपट में आ जाय या उसकी छाया पड़ जाय तो वह किसी-न-किसी बीमारी में फँस जाता है और जब तक दुआ या मंतर से झाड़ा फूँका या उस पर से ख़ास क़िस्म की निछावर नहीं उतारी जाती, अच्छा नहीं होगा। ऊपर इन्हीं बातों की तरफ़ इशारा है; **मौक़ूफ़**—अवलंबित; **तसलीम करना**—स्वीकार करना; **बहिश्त**—स्वर्ग; **दोज़ख़**—नरक; **जहां**—दुनिया।

में भी मौजूद हैं और उनकी पहचान क्या है? मियाँ-बीबी के आपस का प्यार ओ इख़लास। जिस घर में मियाँ बीबी मुहब्बत और साज़गारी से ज़िन्दगी बसर करते हैं बस समझ लो कि उनकी दुनिया ही में बहिश्त है और अगर आये दिन की लड़ाई है, झगड़ा है, यह उससे ख़फ़ा वो उससे नाराज़ तो जानो जीते-जी जहन्नुम में हैं। साज़गारी के साथ सारी मुसीबतें अंगेज़ की जा सकती हैं, बल्कि उनकी ईज़ा तक महसूस नहीं होती। और साज़गारी नहीं तो ज़िन्दगी में कुछ मज़ेदारी नहीं। यह भी ज़ाहिर है कि साज़गारी के लिए औरतों को ज़्यादा इहतिमाम करना होगा। इसलिए कि मर्दों के मुक़ाबले में औरतों का पल्ला बिल्कुल हल्का है। कुछ राह-चलते की साहब-सलामत नहीं कि तुम रूठे हम छूटे बल्कि मरने-भरने का ताल्लुक़ है। साज़गारी पैदा करने के लिए जो तदबीरें औरत के अख़्तियार की हैं उन सबमें बेहतर हमारे समझने में लियाक़त है। लड़कियाँ शर्म के मारे मुँह से न कहें लेकिन दिल में तो ज़रूर जानती हैं कि कुँवारपते के थोड़े दिन

हक़ीक़त—असलियत, सत्यता; **इख़लास**—सच्चा प्रेम; **साज़गारी**—मिलनसारी; **आये दिन**—प्रतिदिन; **ख़फ़ा**—नाराज़; **अंगेज़ करना**—उठा लेना, सहन करना; **ईज़ा**—तकलीफ़; **महसूस**—मालूम; **ज़ाहिर**—स्पष्ट; **इहतिमाम**—तैयारी; **पल्ला**—यानी मर्द-औरत दोनों के अधिकार तोले जायँ तो मर्द के अधिकार ज़्यादा निकलेंगे और औरत के कम; **साहब-सलामत**—मेल-मुलाक़ात; 'तुम रूठे हम छूटे' मुहावरा है, यानी तुम नाराज हो गए अच्छा हुआ, हम तो बहाना ही ढूँढ़ रहे थे, हमें भी छुट्टी मिल गई। मरने-भरने का ताल्लुक़ यानी मरते दम तक निबाहना; **कुँवारपत**—कुँवारपन।

और हैं आखिर ब्याही जायेंगी, ब्याहे पीछे बिल्कुल नई तरह की ज़िन्दगी बसर करनी पड़ती है। जैसा कि तुम मां और नानी और ख़ाला और क़ुनबे की तमाम औरतों को देखती हो। कुँवारपने का वक़्त तो बहुत थोड़ा है। इस वक़्त का अकसर हिस्सा तो बेतमीज़ी में गुज़र जाता है। धप्पाड़ ज़िन्दगी तो आगे आ रही है जो तरह-तरह के झगड़ों और अनवाअ्-ओ अक़साम के बखेड़ों से भरी होती है। अब तुम ग़ौर करो कि तुम कोई अनोखी लड़की तो हो नहीं कि ब्याह हुए पीछे तुमको कुछ और भाग लग जायेंगे। जो दुनिया जहां की बहू-बेटियों को पेश आती है वो तुमको भी पेश आयेगी। पस सोचना चाहिए कि ब्याह हुए पीछे औरतें किस तरह पर ज़िन्दगी बसर करती हैं, कैसी उनकी इज़्ज़त की जाती है, कहाँ तक मर्द उनकी ख़ातिरदारी करते हैं। ख़ास लोगों की हालत पर तो नज़र मत करो। बाज़ जगह इत्तिफ़ाक़ से ज़्यादा मिलाप हुआ औरत मर्द पर ग़ालिब आ गई, और जहाँ ज़्यादा नामुवाफ़िक़त हुई औरत का वक़्र बिलकुल उठ गया यह तो बात ही अलग है। मुल्क के आ़म दस्तूर और आ़म रिवाज को देखो। सो आ़म दस्तूर के मुवाफ़िक़ हम तो औरतों की कुछ क़दर देखते नहीं। नाक़िसात उल अक़्ल उनका ख़िताब

बसर करना—बिताना; **ख़ाला**—मौसी; **बेतमीज़ी**—अज्ञान; **धप्पाड़**—बड़ी भारी मुश्किल, बड़ी लम्बी; **अनवाअ़ 'ओ अक़साम**—तरह तरह के। **ख़ातिरदारी**—आव आदर; **इत्तफ़ाक़ से**—संयोग से; **ग़ालिब आना**—ऊपर हो जाना; **नामुवाफ़िक़त**—प्रतिकूलता; **वक़्र**—सम्मान, लिहाज; **नाक़िसात उल अक़्ल**—कम अक़्ल; **ख़िताब**—पदवी।

है। तिरिया हठ, तिरिया चरित्तर मर्दों के ज़बान ज़द। औरतों के मक्र की मुज़म्मत क़ुरान में मौजूद 'इन्न कैद कुन्न अज़ीमुन्' यानी मर्द लोग औरतों की ज़ात को बेवफ़ा जानते हैं—अस्प ओ ज़न ओ शमशीर वफ़ादार के दोद।*

एक शायर ने औरतों की वजहे-तस्मिया में भी उनकी मुज़म्मत पैदा की है—बैत

अगर नेक बूदे सरअंजामे-ज़न,
ज़नारा मज़न नाम बूदे न ज़न।†

ये सब बातें किताबों में लिखी हुई हैं। खानादारी के बरताव में देखो तो घर की टहल-ख़िदमत के अलावा दुनिया का कोई उम्दा काम भी औरतों से लिया जाता है या किसी उम्दा काम के सलाह और मशविरे में औरतें शरीक़ होती हैं? जिन घरों में औरतों की बड़ी इज़्ज़त और बड़ी ख़ातिरदारी है वहाँ भी जब औरतों से पूछा जाता है तो यही "क्यों जी, आज क्या तरकारी पड़ेगी? लड़की के लिए टाटबाफ़ी

तिरिया हठ—त्रिया हठ; **तिरिया चरित्तर**—त्रिया चरित्र; **ज़बान ज़द**—यानी ज़बान पर चढ़ा हुआ है कि बात-बात में कह बैठते हैं; **मक्र**—छल कपट; **मुज़म्मत**—बुराई; **बेवफ़ा**—बेईमान, वचन को न निभाने वाला; * फ़ारसी की कहावत है कि भला किसी ने घोड़े और औरत और तलवार को भी वफ़ादार देखा है; **वजहे-तस्मिया**—नामकरण के कारण में; † औरत को फ़ारसी में ज़न कहते हैं और लफ़्ज़ ज़न का दूसरा अर्थ मार भी है। तो शायर कहता है कि अगर औरत का सरअंजाम यानी कारोबार अच्छा होता ग़र्ज़ यह है कि अगर औरत सम्मान के योग्य होती तो उसका नाम होता मज़न (मत मार) न कि ज़न यानी मार; **शरीक**—शामिल।

जूती मँगवाओगी या डेढ़ हाशिये की ? छालिया मानिकचंदी लोगी या जहाज़ी ? ज़र्दा पूरबी लेना मंज़ूर है या अमानत-ख़ानी ? रज़ाई को ऊदी गोट लगेगी या सुरमई ? इसके सिवा कोई औरत बता दे कि कभी मर्दों ने उससे बड़ी-बड़ी बातों में सलाह ली है या कोई बड़ा काम उसके अख़्तियार में छोड़ दिया है ? पस अय औरतो ! क्या तुमको ऐसे बुरे हालों जीना कभी नाख़ुश नहीं आता ? अपनी बेऐतबारी और बेवक़री पर अफ़सोस नहीं होता ? क्या तुम्हारा जी नहीं चाहता कि मर्दों की नज़रों में तुम्हारी इज़्ज़त हो, तुम्हारी अक़्ल पर उनको ऐतमाद और भरोसा हो ? तुमने अपने हाथों अपना वक़र खो रखा है, अपने कारन नज़रों से गिरी हुई हो । तुमको क़ाबलियत हो तो मर्दों को कब तक ख़याल न होगा ? तुमको लियाक़त हो तो मर्दों को कहाँ तक पास न होगा ? मुश्किल तो यह है कि तुम सिर्फ़ इसी रोटी-दाल पका लेने और फटा-पुराना सी लेने को लियाक़त समझती हो । फिर जैसी लियाक़त है वैसी क़दर है । तुम्हारी इस बिलफ़ैल की हालत और जहालत पर एक बदअक़्ली और एक मक्र ओ बेवफ़ाई क्या

टाट बाफ़ी और डेढ़ हाशिया—ये कामदार जूतियों की क़िस्में हैं ; **छालिया**—सुपारी ; **मानिकचन्दी और जहाज़ी**—सुपारी की दो क़िस्में हैं ; **ज़र्दा**—खाने का तम्बाख़ू ; **ऊदी**—ललाई लिये हुए काले रंग का बैंगनी रंग ; **सुरमई**—सुरमे के रंग का, हलका नीला ; **बेएतबारी**—अविश्वसनीयता ; **बेवक़री**—असम्मान ; **ऐतमाद**—विश्वास ; **पास**—लिहाज ; **बिलफ़ैल**—आज की, इस समय की ; **जहालत**—मूर्खता और अज्ञान ।

ग्रगर दुनिया-भर के इल्ज़ाम तुम पर लगा दिये जायें तो वाजिब ग्रौर सारे जहां की बुराइयाँ तुममें निकाली जायें तो बजा। ग्रय ग्रौरतो! तुम मर्दों के दिल का बहलावा ग्रौर उनकी ज़िंदगी का सरमायये-ऐश, उनकी ग्राँखों की बाग़ ग्रो बहार, उनकी ख़ुशी को ज़्यादा ग्रौर उनके ग़म को ग़लत करने वालियाँ हो। ग्रगर तुमसे मर्दों को बड़े कामों में मदद मिले ग्रौर तुमको बड़े कामों के इन्तज़ाम का सलीक़ा हो तो मर्द तुम्हारे पाँव धो-धो कर पिया करें ग्रौर तुमको ग्रपना सरताज बनाकर रखें। तुमसे बेहतर उनका ग़मगुसार, तुमसे बेहतर उनका सलाहकार, तुमसे बेहतर उनका ख़ैरख़्वाह ग्रौर कौन है? लेकिन बड़े कामों का सलीक़ा तुमको हासिल हो तो क्यों-कर हो? घर की चारदीवारी में तो तुम क़ैद हो। किसी से मिलने की तुम नहीं, किसी से बात करने की तुम नहीं। ग्रक़्ल हो या सलीक़ा, ग्रादमी से ग्रादमी सीखता है। मर्द लोग पढ़-लिखकर ग्रक़्ल ग्रो सलीक़ा हासिल करते हैं ग्रौर जो लिखे-पढ़े नहीं वो भी हज़ारों तरह के लोगों से मिलते, दस से दस क़िस्म की बातें सुनते। इस पर्दे से तो तुमको नजात की उम्मीद नहीं। बहुत-कुछ हमारे मुल्की दस्तूर ग्रौर रिवाज ने ग्रौर किसी क़दर मज़हब ने पर्दानशीनी को ग्रौरतों पर फ़र्ज़ ग्रो वाजिब कर दिया है ग्रौर ग्रब इस रिवाज की पाबन्दी निहा-

इल्ज़ाम—दोष; **वाजिब**—ठीक, सही; **बजा**—उपयुक्त; **सरमायये-ऐश**—ग्रानन्द की पूँजी; **ग़म को ग़लत करना**—दुःख को, रंज को काटना, हटाना सबके एक ही ग्रर्थ हैं; **ग़मगुसार**—ग़मको हटाने वाला; **ख़ैरख़्वाह**—शुभचिंतक; **नजात**—छुट्टी, मुक्ति; **फ़र्ज ग्रो वाजिब**—कर्तव्य।

यत ज़रूर है। पस सिवाय पढ़ने-लिखने के और क्या तदबीर है कि तुम्हारी अक़्लों की तरक़्क़ी हो? बल्कि मर्दों की निस्बत औरतों को पढ़ने की ज़्यादा ज़रूरत है। मर्द तो बाहर के चलने-फिरने वाले ठहरे। लोगों से मिल-जुलकर भी तज-रुबा हासिल कर लेंगे। तुम घर में बैठी-बैठी क्या करोगी? सीने की बकुची से अक़्ल की पुड़िया निकाल लोगी, या अनाज की कोठरी से तजरुबे की झोली भर लाओगी? पढ़ना सीखो कि पर्दे में बैठे-बैठे तमाम दुनिया की सैर कर लिया करो। इल्म हासिल करो कि घर के घर में ज़माने-भर की बातें तुम को मालूम हुआ करें। फिर समझने की बात है कि दुनिया इन्हीं चंद घरों से अ़िबारत नहीं है जिसमें तुम रहती या आती-जाती हो और न दिल्ली या इन्हीं थोड़े-से शहरों से अ़िबारत है जिनके नाम तुमने सुने हैं।

ख़ैर तमाम दुनिया के हालात बयान करने का तो यह महल नहीं, तुमको शौक़ हो तो पढ़-लिखकर जुग़राफ़िया और तारीख़ की किताबों की सैर करना तो जानोगी कि दुनिया कितनी बड़ी है। कैसे-कैसे रद्दोबदल इसमें होते आये हैं। बहर कैफ़ इस वक़्त का यह रंग है कि सारे हिन्दुस्तान पर

निहायत—बिलकुल; **तजरुबा**—अनुभव, तजरुबे का असली अर्थ है आज़माना। एक आदमी दुनिया का बुरा भला आज़माता है और तरह-तरह की परिस्थितियाँ उसके सामने से गुज़रती हैं वो तजरुबेकार कहलाता है; **घर के घर में**—मुहावरा है, यानी घर ही में; **अ़िबारत**—आबाद;

महल—मौका, स्थान; **जुग़राफ़िया**—भूगोल; **तारीख़**—इतिहास; **रद्दोबदल**—उलट फेर; **बहर कैफ़**—ग़रज़ यह कि;

अंग्रेज़ क़ाबिज़ हैं। इन लोगों में मर्द-औरत, अमीर-ग़रीब, नौकरी-पेशा, सौदागर, अहले-हिरफ़ा, कारीगर, ज़मींदार काश्तकार सब के सब लिखे-पढ़े होते हैं। और इसी से ख़ुदा ने उनको यह तरक़्क़ी दी है कि कहाँ उनकी विलायत और कहाँ हिन्दुस्तान। छह-सात हज़ार मील का फ़ासला और बीच में समुन्दर। मगर इल्म के ज़ोर से इस मुल्क में आये, इल्म ही के ज़ोर से सल्तनत की और इल्म ही के ज़ोर से उसको इस ख़ूबी और उम्दगी के साथ चला रहे हैं कि रूये-ज़मीन की किसी सल्तनत में ऐसा अमन ओ इन्साफ़ और ऐसा इन्तज़ाम नहीं। कहते हैं, और सच कहते हैं कि दानिशमन्द और मुन्सिफ़ और ख़ुदातरस बादशाह को रैयत अपनी औलाद से बढ़कर प्यारी होती है। पस अंग्रेज़ जिस दिन से इस मुल्क में आये हैं उसी दिन से इस बात के पीछे पड़े हैं कि हिन्दुस्तान के लोग लिखें-पढ़ें, लियाक़त हासिल करें कि उनका इफ़लास दूर हो। ज़ुल्म-ज़बरदस्ती करना तो अंग्रेज़ों का दस्तूर नहीं, मगर जहाँ तक समझाने से लालच दिखाने से हो सकता है इल्म को तरक़्क़ी दे रहे हैं। गाँव-गाँव मदरसे बिठा दिये हैं, पढ़ने वालों को वज़ीफ़े और इनाम दिये जाते हैं, जो लोग इम्तिहान पास करते हैं उनको नौकरी मिलती है। सो ख़ुदा के फ़ज़्ल से

क़ाबिज़—क़ब्ज़ा या अधिकार रखने वाला; **अहले-हिरफ़ा**—हिरफ़त यानी कारीगरी जाननेवाले; **काश्तकार**—किसान; **रूये-ज़मीन**—धरती पर; **अमन**—शान्ति; **इन्तज़ाम**—बन्दोबस्त; **दानिशमन्द**—अक़्ल-मन्द; **मुन्सिफ़**—इन्साफ़ पसन्द; **ख़ुदातरस**—ख़ुदा यानी ईश्वर से डरने वाला; **रैयत**—प्रजा; **इफ़लास**—दरिद्रता, मोहताजी; **वज़ीफ़ा**—दान-वृत्ति, वृत्ति जो विद्यार्थियों, साधु सन्यासियों वग़ैरह को दी जाती है।

इतना तो हुआ है कि लिखने-पढ़ने का बहुत रिवाज हो गया और होता जाता है। यही एक ढंग है तो कोई दिन धोबी-सक़्क़े-मज़दूर तक लिखने-पढ़ने लगेंगे। भला फिर अनपढ़ और जाहिल अशराफ़ लोगों की, मर्द हों या औरत, क्या इज़्ज़त बाक़ी रह जायगी? अंग्रेज़ी अमलदारी में हज़ारों क़िस्म की नई चीज़ें चल पड़ी हैं। इन में से एक अजीब और बड़े काम की रेल है जिसकी वजह से महीनों के रस्ते घण्टों में तै किये जाते हैं और वो भी किस सहूलत और आसाइश के साथ कि सफ़र का सफ़र और तफ़रीह की तफ़रीह। और यही सबब है कि लोग जैसे परदेस के नाम से घबराते थे अब सफ़र के लिए बहाना ढूँढ़ते हैं। यह हमारी याद की बात है कि जब कोई हज का इरादा करता तो यह समझकर घर से निकलता कि बस मुझको लौटकर आना नहीं, या अब रेल और दुख़ानी जहाज़ों के तुफ़ैल में यह हाल हो गया है कि ज़ीक़ाद घर से निकले, मुहर्रम के आखिर होते-होते मक्का-मदीना दोनों की ज़ियारत करके असल ख़ैर से घर आ मौजूद हुए। और लोगों में तो ख़ैर, मगर नौकरी-पेशा तो शाज़-ओ-

सक्क़ा—भिश्ती; **अशराफ़**—शरीफ़ का बहुवचन यानी बड़े लोग; **अमलदारी**—शासन; **सहूलत**—आसानी; **आसाइश**—आराम; **सफ़र**—यात्रा; **तफ़रीह**—मनोरंजन; **हज**—मुसलमान लोग अरब में मक्के की यात्रा को जाते हैं इसे हज कहते हैं; **रेल की तरह जहाज भी धुएँ**—यानी भाप से चलते हैं और दुख़ानी जहाज़ कहलाते हैं, दुख़ान धुएँ को कहते हैं; **तुफ़ैल**—बदौलत; **ज़ीक़ाद**—रमज़ान से तीसरा महीना जिसको औरतें ख़ाली का महीना कहती हैं, इस महीने में लड़ाई हराम थी; **ज़ियारत**—यात्रा; **असल ख़ैर से**—कुशलता से।

नादिर कोई घर के घर में मौजूद हो वरना जिसको सुनो परदेस। लेकिन परदेस से आपस के ताल्लुक़ात तो नहीं छूटते। एक बार बड़े दिन की तातील में दिल्ली जाने का इत्तिफ़ाक़ हुआ। ज़रा गोरखपुर और दिल्ली के फ़ासले को देखो और बावजूदे कि गोरखपुर से दिल्ली तक बराबर रेल न थी। आठ दिन की छुट्टी में आने-जाने को और पूरे पाँच दिन दिल्ली में ठहरने को देखो। भले को अंग्रेज़ी अमलदारी हो गई थी कि हमने भी यह आराम देख लिये। ख़ैर, तो ग़र्ज़ यह कि मैं छुट्टी में दिल्ली आया हुआ था कि एक बीवी अपने मियाँ के नाम ख़त लिखवाने आईं। बताती गईं मैं लिखता गया। बहुत सी बातें उनके मुँह तक आती थीं मगर लिहाज़ के मारे कह नहीं सकती थीं। आख़िर मुझसे न रहा गया और मैंने उनको समझाया कि ख़ुदा ने तुम्हारी रोज़ी तो उतारी परदेस में, और परदेस भी महीने दो महीने का नहीं बल्कि सारी उम्र का। इससे तुम आप लिखना क्यों नहीं सीख लेतीं ? तो वो बड़ी हसरत के साथ कहने लगीं—भला कहीं अब मेरी उमर लिखना सीखने की है ? बाल-बच्चों के बखेड़े में पन्द्रह-पन्द्रह दिन गुज़र जाते हैं कि सर धोने तक की नौबत नहीं आती। बचपन में क़ुरान पढ़ा था। ख़ैर शुक्र है उस्तानीजी की बरकत से भूला तो नहीं मगर मुश्किल से घड़ियों में जाकर कहीं दो सिपारे पढ़े जाते हैं। अगर कहीं

शाज ओ नादिर—बिरला; **ताल्लुक़ात**—सम्बन्ध; **बावजूदेकि**—यद्यपि; **तातील**—छुट्टी। **रोज़ी**—आजीविका; **हसरत**—अफ़सोस; **नौबत**—मौक़ा; **बरकत**—प्रसाद। **सिपारा**—क़ुरान-शरीफ़ तीस अध्यायों में विभक्त है, प्रत्येक

एक महीने भी छोड़ दूँ तो सारा क़ुरान सपाट हो जाय। यह सुनकर मैंने कहा कि जब तुमको क़ुरान याद है तो लिखना सीख लेना कुछ बड़ी बात नहीं। हर रोज़ एक घण्टे भी तवज्जह करो तो कारंवाई के क़दर दो-तीन महीने में आ सकता है। आख़िर उर्दू तो तुम पढ़ लेती होगी। वो बोलीं—हाँ कुछ यूँ ही सी अटक-अटककर और अक्सर लफ़्ज़ रह भी जाते हैं। मगर छपा हुआ तो ख़ासी तरह निकाल लेती हूँ। मैंने कहा—बस तो तुमको उस्ताद की भी ज़रूरत नहीं। नक़ल करते-करते लिखना आ जायगा। उन बीबी ने दिल ही दिल में मेरी बात को तस्लीम तो किया मगर कहने लगीं शरम सी आती है। तब तो मैंने उनको ख़ूब आड़े हाथों लिया कि दूसरों के पास हाजत ले जाते हुए, दूसरों की ख़ुशामद करते हुए, दूसरों पर चबा-चबाकर अपने हालात ज़ाहिर करते हुए तुमको शर्म नहीं आती और लिखना सीखते हुए शर्म आती है! क्या लिखना कुछ ऐब है या गुनाह है? मैंने सुना कि इसके बाद से उन बीबी ने अपना ख़त किसी से नहीं लिखवाया। और फिर तो उनको लिखने का ऐसा शौक़ हुआ कि जिन बीवियों के मर्द परदेस में थे ख़त लिखने के लिए आप उनके सर होती थीं।

लिखने को लोगों ने नाहक़ बदनाम कर रखा है कि मुश्किल है मुश्किल। कुछ भी मुश्किल नहीं। लेकिन फ़र्ज़

अध्याय को सिपारा कहते हैं; **सपाट**—बराबर; **तवज्जह**—ध्यान; **कारंवाई**—काम-काज; **क़दर**—लायक। **फ़र्ज़ करना**—मान लेना।

करो कि पढ़ने की निस्बत लिखना कुछ मुश्किल है तो वैसी ही उसकी मुनफ़अतें भी हैं। जो शख़्स पढ़ना जानता है और लिखना नहीं जानता उसकी मिसाल उस गूँगे की सी है जो दूसरे की सुनता और अपनी नहीं कह सकता। अगर कोई शख़्स शुरू-शुरू में किसी किताब से ज़्यादा नहीं एक सतर दो सतर रोज़ नक़ल किया करे और इसी तरह अपने दिल से बनाकर लिखा करे और इस्लाह लिया करे और नक़ल करने और लिखने में झेंपे और झिझके नहीं तो ज़रूर चंद महीनों में लिखना सीख जायगा। खुशख़ती से मतलब नहीं। लिखना एक हुनर है जो ज़रूरत के वक़्त बहुत काम आता है। अगर ग़लत हो या हर्फ़ बदसूरत और नादुरुस्त लिखे जायँ तो बेदिल होकर मश्क़ को मौक़ूफ़ मत करो। कोई काम हो इब्तदा में अच्छा नहीं हुआ करता। अगर किसी बड़े आलिम को एक टोपी कतरने और सीने को दो जिसको कभी ऐसा इत्तिफ़ाक़ न हुआ हो वो ज़रूर टोपी ख़राब करेगा। चलना-फिरना जो तुमको अब ऐसा आसान है कि बेतकल्लुफ़ दौड़ी-दौड़ी फिरती हो, तुमको शायद याद न रहा हो कि तुमने किस मुश्किल से सीखा। मगर तुम्हारे मां-बाप और बुज़ुर्गों को बख़ूबी याद है कि पहले तुमको बेसहारे बैठना नहीं आता था। जब तुमको गोद से उतारकर नीचे बिठाते एक आदमी-पकड़े रहता था। या तकिये का सहारा लगा देते थे। फिर

निस्बत—अपेक्षा; **मुनफ़अत**—फ़ायदे; **सतर**—लाइन, पंक्ति; **इस्लाह लेना**—संशोधन करवाना; **मश्क़**—अभ्यास; **मौक़ूफ़**—बन्द; **आलिम**—विद्वान; **बेतकल्लुफ़**—बेझिझक; **बख़ूबी**—अच्छी तरह।

तुमने गिर-पड़कर घुटनों चलना सीखा। फिर खड़ा होना लेकिन चारपाई पकड़कर। फिर जब तुम्हारे पाँव ज़्यादा मज़बूत हो गये रफ़्ता-रफ़्ता चलना आ गया मगर सदहा मर्तबा तुम्हारे चोट लगी और तुमको गिरते सुना। अब वही तुम हो कि ख़ुदा के फ़ज़्ल से माशा-अल्लाह दौड़ी-दौड़ी फिरती हो। इसी तरह एक दिन लिखना भी आ जायगा। और फ़र्ज़ करो तुमको लड़कों की तरह अच्छा लिखना न भी आया तो बक़दरे ज़रूरत तो ज़रूर आ जायगा और यह मुश्किल तो नहीं रहेगी कि धोबन की धुलाई और पीसने वाली की पिसाई के वास्ते दीवार पर लकीरें खींचती फिरो। या कंकर-पत्थर जोड़कर रखो। घर का हिसाब ओ किताब लेना-देना ज़बानी याद रखना बहुत मुश्किल है। और बाज़ मर्दों की आदत होती है कि जो रुपया पैसा घर में दिया करते हैं उसका हिसाब पूछा करते हैं। अगर ज़बानी याद नहीं है तो मर्द को शुबहा होता है कि यह रुपया कहाँ खर्च हुआ और आपस में नाहक़ बदगुमानी पैदा होती है। अगर औरतें इतना लिखना भी सीख लिया करें कि अपने समझने के वास्ते काफ़ी हो तो कैसी अच्छी बात है।

लिखने-पढ़ने के अलावा सीना-पिरोना, खाना-पकाना यह दोनों हुनर हरेक लड़की को सीखने ज़रूरी हैं। किसी आदमी को हाल मालूम नहीं है कि आयन्दा उसको क्या इत्तिफ़ाक़ पेश

रफ़्ता-रफ़्ता—धीरे-धीरे ; **सदहा**—सैकड़ों ; **मर्तबा**—बार ; **बक़दरे ज़रूरत**—ज़रूरत के लायक़ ; **शुबहा**—शंका, शक ; **नाहक**—अनावश्यक ; **बदगुमानी**—कुशंका।

आयेगा। बड़े अमीर और बड़े दौलतमन्द यकायक ग़रीब और मोहताज हो जाते हैं। अगर कोई हुनर हाथ में पड़ा होता है तो ज़रूरत के वक़्त काम आता है। यह एक मशहूर बात है कि अगले वक़्तों के बादशाह बावजूद दौलत ओ शरवत के ज़रूर कोई हुनर सीख रखा करते थे ताकि मुसीबत के वक़्त काम आये। याद रखो कि दुनिया में कोई हालत क़ाबिले-ऐतबार नहीं। अगर तुमको इस वक़्त आराम ओ फ़राग़त मयस्सर है तो ख़ुदा का शुक्र करो कि उसने अपनी मेहरबानी से हमारे घर में बरकत और फ़राग़त दी है। लेकिन इसके यह मानी नहीं हैं कि तुम उस आराम की क़द्र न करो। या आयंदा के वास्ते अपना इत्मीनान कर लो कि यही आराम हम को हमेशा के वास्ते हासिल रहेगा। आराम के दिनों में आदतों का दुरुस्त रखना ज़रूर है। अगरचे ख़ुदा ने तुमको नौकर-चाकर भी दिये हों लेकिन तुमको अपनी आदत नहीं बिगाड़नी चाहिए। शायद ख़ुदा न ख़ास्ता मक़दूर बाक़ी न रहे तो यह आदत बहुत तकलीफ़ देगी। आप उठकर पानी न पीना या छोटे-छोटे कामों में नौकरों या छोटे भाई-बहनों को तकलीफ़ देना और आप अहदी बनकर बैठे रहना नामुनासिब और आदत के बिगाड़ने की निशानी है। तुमको अपना सब काम आप करना चाहिये बल्कि अगर तुम चुस्त ओ चालाक रहो तो घर के बहुत काम तुम उठा सकती हो।

शरवत—अमीरी ; **हालत**—परिस्थिति ; **क़ाबिले-ऐतबार**—विश्वास के योग्य ; **फ़राग़त**—बेफ़िक्री ; **मयस्सर**—मिली हुई ; **इत्मीनान**—तसल्ली, भरोसा ; **मक़दूर**—सामर्थ्य ; **अहदी**—बादशाही ज़माने में वे लोग थे जो घर बैठे बेखिदमत तनखा पाते थे ; अब बेकार, सुस्त, आलसी को कहते हैं।

और अगर तुम थोड़ी-सी मेहनत भी इख़्तियार करो तो अपनी मां को बहुत कुछ मदद और सहारा लगा सकती हो। ख़ूब ग़ौर करके अपना कोई काम ऐसा मत छोड़ो जिसको मां अपने हाथों करे या दूसरों को उसके वास्ते बुलाती या तकलीफ़ देती फिरे। रात को जब सोने लगो अपना बिछौना अपने हाथ से बिछा लिया करो और सुबह्-सवेरे उठकर आप तह करके एह्तियात से मुनासिब जगह् रख दिया करो। अपने कपड़ों की गठरी अपने एह्तिमाम में रखो। जब कपड़े बदलने मंज़ूर हों अपने हाथ से फटा-उधड़ा दुरुस्त कर लिया करो। मैले कपड़ों की एह्तियात करो। जब तक धोबन कपड़े लेने आये अ़लहदा खूंटी पर लटका रखो। अगर कपड़े बदलकर मैले कपड़े उठा न रखेगी शायद चूहे काट डालें या पड़े-पड़े ज़्यादा मैले हों और धोबन उनको ख़ूब साफ़ न कर सके। या शायद ज़मीन की नमी और पसीने की तरी से उनमें दीमक लग जाय। फिर धोबन को अपने मैले कपड़े आप देखकर दिया करो। और जब धोकर लाये ख़ुद देख लिया करो। शायद कोई कपड़ा कम न लाई हो या कहीं से फाड़ न दिया हो या कहीं दाग़ बाक़ी न रह गये हों। इस तरह जब तुम अपने कपड़ों की ख़बर रखोगी तुम्हारे कपड़े ख़ूब साफ़ धुला करेंगे और कोई कपड़ा गुम न होगा। जो ज़ेवर तुम पहने रहती हो बड़े दामों की चीज़ है। शाम को सोने से पहले और सुबह को जब सोकर उठो तो ख़्याल कर लिया करो कि सब हैं या नहीं। अक्सर बेख़बर लड़कियाँ खेल-कूद में ज़ेवर गिरा देती हैं और

एह्तियात—सावधानी ; **एह्तिमाम**—बंदोबस्त।

कई-कई दिन के बाद उनको मालूम होता है कि बाली गिर गई, छल्ला निकल पड़ा। जब कि घर में कई मर्तबा झाड़ू दी जा चुकी है क्या मालूम ज़रा-सी चीज़ किसकी नज़र पड़ गई, उठा ली या कहीं मिट्टी में दब-दबा गई। तब वो ग़ाफ़िल लड़कियाँ ज़ेवर के वास्ते अफ़सोस करके रोती और तमाम घर को जुस्तजू में हैरान कर मारती हैं। और जब मां और बाप को मालूम होता है कि यह लड़की ज़ेवर को एहतियात से नहीं रखती है और खो देती है तो वे भी दरेग़ करने लगते हैं। तुमको हमेशा यह खयाल करना चाहिये कि घर के कामों में कौन-सा काम तुम्हारा करने का है। बेशक छोटे भाई-बहन अगर रोते और ज़िद करते हैं तुम उनको सँभाल सकती हो ताकि मां को तक़लीफ़ न दें। मुँह धुलाना, उनके खाने और पीने की ख़बर रखना, कपड़ा पहनाना ये सब काम अगर तुम चाहो तो कर सकती हो। लेकिन अगर तुम अपने भाई-बहनों से लड़ो और ज़िद करो तो तुम खुद अपना वक़र खोती और मां को तकलीफ़ देती हो। वह घर के काम देखे या तुम्हारे मुक़दमे फ़ैसला करे। घर में जो खाना पकता है उसको इसी ग़र्ज़ से देखना नहीं चाहिए कि कब पक चुकेगा और कब मिलेगा। घर में जो कुत्ता और बिल्ली या दूसरे जानवर पले हैं वे अगर पेट भरने की उम्मीद से खाने के मुंतज़िर रहें तो मुज़ायक़ा नहीं। लेकिन तुमको ग़ौर करना चाहिए कि सालन किस तरह भूना जाता है, नमक किस अन्दाज़ से डालते हैं।

जुस्तजू—तलाश ; **दरेग़**—अफ़सोस ; **ज़िद**—हठ ; **मुंतज़िर**—प्रतीक्षा करने वाला; **मुज़ायक़ा**—हर्ज; **सालन**—मांस मछली या साग-तरकारी,

अगर हरेक खाने को ग़ौर से देखा करो तो यक़ीन है चन्द रोज़ में तुम पकाना सीख जाओगी और तुमको वह हुनर आ जायगा जो दुनिया के तमाम हुनर में सबसे ज़रूरत की चीज़ है। मामूली खानों के अलावा तकल्लुफ़ के चन्द खानों की तरकीब भी सीख लेनी चाहिए। आये-गये की दावत में हमेशा तरह-तरह के पुर तकल्लुफ़ खानों की ज़रूरत हुआ करती है। कबाब, पुलाव, मीठे चावल, ज़र्दा, मुतंजन, चटनी, मुरब्बा, फ़ीरीनी सब मज़ेदार खाने हैं। हरेक की तरकीब याद रखनी चाहिए। बाज़ खाने तकल्लुफ़ के तो नहीं होते लेकिन उनका मज़ेदार पकाना तारीफ़ की बात है, जैसे मछली, करेले। सीना तो चंदां दुश्वार नहीं, क़ता करना अलबत्ता अक़्ल की बात है। दिल लगाकर उसको मालूम कर लेना बहुत ज़रूरी है। औरतों के सब कपड़ों को क़ता करना ख़ासकर ज़रूर समझ लेना चाहिए। हमने अक्सर बेवक़ूफ़ औरतों को देखा कि अपने कपड़े दूसरी औरतों के पास क़ता कराने के वास्ते लिये-लिये फिरा करती हैं और उनको थोड़ी-सी बात के लिए बहुत-सी ख़ुशामद करनी पड़ती है। मर्दाने कपड़ों में अंगरखा किसी क़दर मुश्किल है। तुम अपने भाइयों के अंगरखे क़ता किया करो। दो-चार अंगरखे क़ता करने के बाद समझ में आ जायगा।

की मसालेदार तरकारी ; **तकल्लुफ़ के खाने**—माल मिष्टान्न, पकवान ; **आया-गया**—अतिथि, मेहमान; **कबाब**—सीखों पर भुना हुआ मांस; **पुलाव**—एक व्यंजन जो मांस और चावल को एक साथ पकाने से बनता है ; **ज़र्दा**—केसर डालकर बनाये हुए मीठे चावल ; **क़ता करना**—काटना।

बाब दूसरा

क़िस्से का आग़ाज़ और जिन लोगों का इस क़िस्से में बयान है उनके मुख्तसर हालात

अब तुमको एक बड़े मज़े का क़िस्सा सुनाते हैं जिससे मालूम हो जायगा कि जहालत और बेहुनरी से क्या-क्या तकलीफ़ें पहुँचती हैं।

दिल्ली में अंदेशख़ानियों का एक बड़ा मशहूर ख़ानदान है। मुद्दत से इस ख़ानदान के मर्दों के नाम अंदेशख़ां के नाम पर चले आते थे। दूरअंदेशख़ां, मालअंदेशख़ां, ख़ैरअंदेशख़ां वग़ैरह। इससे ये लोग अंदेशख़ानी कहलाये। इन लोगों का इतना बड़ा ख़ानदान था कि शहर में शरीफ़ों का कोई मुहल्ला न होगा जिसमें दो-चार घर अंदेशख़ानियों के न हों। ये लोग सबके सब नौकरी-पेशा और अक्सर हिन्दुस्तानी सरकारों में मुमताज़ ख़िदमतों पर मामूर थे।

दूरअंदेशख़ां जिनके ख़ानगी हालात से यह किताब तरतीब दी गई पंजाब के पहाड़ी अज़लाअ में सरकार अंग्रेज़ी की तरफ़

आग़ाज़—प्रारम्भ ; **मुख्तसर**—संक्षिप्त; **मुमताज़**—बड़े-बड़े ओहदे और बड़ी-बड़ी तनख़ा की नौकरियाँ ; **मामूर**—प्रतिष्ठित ; **ख़ानगी**—व्यक्तिगत; **तरतीब देना**—क्रमबद्ध करना; **अज़लाअ**—ज़िले का बहुवचन।

से तहसीलदार थे। नौकरी और तनख़ाह तो कुछ ऐसी बहुत बड़ी न थी मगर आदमी थे लायक और दयानतदार और कारगुज़ार, कि इतनी सिफ़्तें नौकरों में ज़रा कम होती हैं। इसलिए अंग्रेज़ों में अच्छी आबरू पैदा की थी। हमसे और दूरअंदेशख़ां साहब से जब अव्वल मुलाक़ात हुई कि उसको भी अब चार सवा चार बरस होने को आये। तो उनकी उम्र ऐसी कोई चालीस-पैंतालीस बरस की होगी। बहुत ही ख़ुशरू आदमी थे। कशीदा क़ामत, बदन के इकहरे। जामा ज़ेब। दाढ़ी खिचड़ी हो चली थी। हम तो समझे थे कि दादा और नाना हों तो अजब नहीं। मगर फिर मालूम हुआ कि अभी बड़ी लड़की का ब्याह किये हुए चले आ रहे हैं। उनकी कुछ ऐसी बहुत औलाद भी न थी। सिर्फ़ दो बेटे और दो बेटियाँ। ये चारों बच्चे गंगा जमनी के तौर पर पैदा हुए थे यानी सबसे बड़ी पहलौंटी की अकबरी, उसके ऊपर का ख़ैरअंदेश, ख़ैर-अंदेश के ऊपर की असग़री, असग़री के बाद सबसे छोटा माल-अंदेश। एक दिन कुछ यों ही मज़कूर-सा आ गया कि औलाद कम है तो बोले कि "ख़ुदा असग़री की उम्र में बरकत दे और उसको साहबे-नसीब करे और इंशा अल्लाह होगी। मुझे तो

दयानतदार—रिश्वत नहीं लेते थे और काम बेलाग करते थे। **कारगुज़ार**—कर्मठ ; **सिफ़्त**—गुण ; **ख़ुशरू**—ख़ूबसूरत ; **कशीदा क़ामत**—क़द के लम्बे; **इकहरे**—छरहरे ; **जामाज़ेब**—जो भी कपड़े पहनते उनको फबते थे ; **खिचड़ी**—यानी दाढ़ी में स्याह ओ सफ़ेद दोनों तरह के बाल थे। **मज़कूर**—ज़िक्र; **बरकत**—वृद्धि; **साहबे-नसीब**—भाग्यशाली; नसीब वाला ; **इंशा अल्लाह**—भगवान् ने चाहा तो।

बेटा-बेटी किसी की तमन्ना बाक़ी नहीं ।"

दूरअंदेशखां बीस बरस पूरे होकर इक्कीसवें में लगे थे कि उनका ब्याह हुआ और अकबरी पैदा हुई ब्याह के कहीं दस-साढ़े दस बरस बाद । हम समझते हैं कि ज़्यादातर इस इन्तज़ार के सबब और किसी क़दर पहलौंटी की वजह से भी अकबरी के साथ ऐसे चोचले बरते गये कि उन्होंने अकबरी के मिज़ाज पर बहुत ही बुरा असर किया । न तो उसने कुछ पढ़ा न लिखा, न कोई हुनर सीखा न अक़्ल हासिल की और न अपनी आदतों को सँवारा । बस अकबरी में सिवाय इसके कि वो एक शरीफ़ ख़ानदान की बेटी थी तारीफ़ की और कोई बात ही न थी । पैदा होने के साथ उसको नानी ने अपनी बेटी बनाया और इस क़दर उसकी नाज़ बरदारी की कि उसके रोने और मचलने के डर के मारे वो बेचारी किसी की शादी-ब्याह में शरीक़ नहीं हो सकती थीं । अकबरी मां को आपा और बाप को भाई कहती थी । और कहती क्या थी इसी तरह पर उसको समझाया और सिखाया गया था । वो बात-बात में मां के साथ ऐसी रद्द ओ कद रखती थी कि गोया दोनों ऊपर-तले की बहनें हैं । मां के साथ अकबरी को लड़ते-झगड़ते देखकर डाँटने और धमकाने का क्या मज़कूर नानी उल्टी उसी की हिमायत लेतीं और बिगड़ बिगड़कर बेटी से कहतीं—"फिर भाई क्यों बच्चे के मुँह लगो और बच्चे की बात का बुरा क्यों

तमन्ना—आरज़ू, कामना; **चोचले**—लाड़ प्यार; **मिज़ाज**—स्वभाव; **नाज़ बरदारी**—चोचले; **रद्द को कद**—हुज्जत, वाद-विवाद; **ऊपर-तले की**—बड़ी छोटी, जिनके बीच में कोई बच्चा न हो; **हिमायत**—पक्ष ।

मानो ?"

दूरअंदेशख़ां जहाँ नौकर होते अक्सर बीबी-बच्चों को अपने पास बुला भी लिया करते थे। जब कभी ऐसा इत्तिफ़ाक़ हुआ नानी ने अकबरी को किसी-न-किसी बहाने से रोक लिया और जब से पैदा हुई ब्याह की घड़ी तक एक लमहे के लिये अपने से जुदा न किया। और यों अकबरी नानी के अहमक़ाना लाड़ की वजह से मां और बाप दोनों की तंबीह से मुतलक़न आज़ाद रही और बेसरी उठी। असग़री का हाल बिल्कुल इसके ख़िलाफ़ था। सारे चोचले और अरमान तो अकबरी पर ख़त्म हो चुके थे। यह अपनी ख़ुशनसीबी से मां-बाप के यहाँ तीसरी जगह थी। उसने परवरिश पाई बड़ों की निगरानी में, बुज़ुर्गों की रोक-टोक में। उसने छोटी-सी उम्र में क़ुरान मजीद का तर्जुमा और मसायल की उर्दू किताबें पढ़ ली थीं। लिखने में भी आजिज़ न थी। अगर मां दिल्ली होती और बाप बाहर नौकरी पर तो जब तक दिल्ली रहती घर का हाल बाप को हफ़्ते के हफ़्ते लिख भेजा करती। हर एक तरह का कपड़ा सी सकती थी और अनवाअ़ और अक़साम के मज़ेदार खाने पकाना जानती थी। तमाम मुहल्ले में असग़री ख़ानम की तारीफ़ थी। मां के घर का तमाम बंदो-

---

लमहा—क्षण; **अहमक़ाना**—मूर्खतापूर्ण; **तंबीह**—रोकटोक; **बेसरी**—मानो उसके सर पर कोई बड़ा नहीं है; **अरमान**—कामना, इच्छा; **निगरानी**—देखभाल में; **क़ुरान मजीद**—क़ुरान को कहते हैं; **मसायल**—मसला का बहुवचन है, जानने योग्य बातें; **आजिज़**—मोहताज।

बस्त असग़री ख़ानम के हाथों में था। जब कभी बाप रुख़सत लेकर घर आता ख़ानादारी के इन्तज़ाम में असग़री से सलाह पूछता। रुपया-पैसा, कोठरियों और संदूक़ों की कुंजियाँ सब कुछ असग़री के इख़्तियार में रहा करता था। असग़री की नेकबख़्ती और सलीक़ा-शिआरी देखकर मां-बाप दोनों जान ओ दिल से असग़री को चाहते थे। बल्कि मुहल्ले के सब लोग असग़री को प्यार करते थे। मगर अकबरी ख़ुद बख़ुद अपनी छोटी बहन से नाराज़ रहा करती। बल्कि अकेला पाकर मार भी लिया करती थी। लेकिन असग़री हमेशा आपा का अदब करती और कभी मां से उसकी चुग़ली न खाती। दोनों बहनों की मँगनी भी इत्तिफ़ाक़ से एक ही घर में हुई। मुहम्मद आक़िल और मुहम्मद कामिल दो हक़ीक़ी भाई थे। अकबरी का ब्याह बड़े भाई मुहम्मद आक़िल से हुआ था और असग़री की बात मुहम्मद कामिल के साथ ठहर चुकी थी मगर ब्याह नहीं हुआ था।

रुख़सत—बिदाई, छुट्टी; **नेकबख़्ती**—सुशीलता; **सलीकाशिआरी**—सलीक़ामंदी, संस्कारिता; **आपा**—दिल्ली वाले बड़ी बहन को आपा पुकारते हैं; इनमें भी मुग़ल लोग बाजी, और बड़ी बहन बहुत बड़ी हो तो बाजी अम्मां; **मँगनी**—सगाई; **हक़ीक़ी**—सगे।

बाब तीसरा

अकबरी की बदमिज़ाजी और उसका सुसराल से रूठकर चला आना

कुनबे के लोगों में अकबरी की बदमिज़ाजी और बेहुनरी और शरारतों की इस क़दर शोहरत थी कि जहाँ कहीं उसकी मँगनी का पयाम जाता कोई हामी नहीं भरता था। लेकिन ख़ुदा का करना ऐसा हुआ कि न सान न गुमान एकदम से मर्दों-मर्दों में एक साथ दोनों बहनों की बात ठहर गई। हुस्ने-इत्तिफ़ाक़ से दूरअंदेशखां और मौलवी मुहम्मद फ़ाज़िल दोनों में पुरानी राहोरस्मी थी, दोनों ने एक ही उस्ताद से पढ़ा भी था। एक मर्तबा दूरअंदेशखां रुख़सत लेकर दिल्ली आ रहे थे, राह में मिल गये मौलवी मुहम्मद फ़ाज़िल। उन्होंने बाइसरार उनको अपने पास ठहराया। ख़ुलासा यह है कि दूरअंदेशखां ने दोनों बेटियाँ मौलवी साहब को देनी कर लीं। जब कुनबेवालों को मालूम हुआ तो किसी ने

बदमिज़ाजी—स्वभाव का बुरापन; **कुनबा**—कुटुम्ब; **पयाम**—सन्देश; **हामी**—स्वीकृति; **सान गुमान**—न वहम न अन्देशा; **हुस्ने-इत्तिफ़ाक़ से**—भले को, संयोग से; **राहोरस्म**—मेलजोल; **बाइसरार**—आग्रह करके; **देनी कर ली**—वादा कर लिया कि अपनी दोनों बेटियों का ब्याह तुम्हारे दोनों बेटों के साथ करूँगा।

मुहम्मद आ़क़िल की मां से कहा भी कि समधियों का क्या पूछना है मगर बड़ी लड़की को लोग मिज़ाज की बहुत तेज़ बताते हैं। मुहम्मद आ़क़िल की मां इस तरह की नेकदिल औ़रत थी कि हरचन्द अकबरी के हालात सुने-सुनाये उसको सब मालूम थे ताहम उसने यही जवाब दिया कि —"उस्तख़्वां अच्छी चाहिए, ख़ुदा रखे अमीर घर की बेटी है बड़ी फड़क के बाद पैदा हुई है। नानी को था अरमान और अरमान की जगह थी। उन्होंने किसी बात में बच्ची के दिल को मैला होने दिया नहीं। लाड़-प्यार में आकर कुछ ज़िद करने लगी होगी। सो बच्चे अपनी जगह सभी ज़िद किया करते हैं। ब्याह की देर है आप ही ठीक हो जायगी।

मगर यह सिर्फ़ बड़ी बी का ख़याल था। अकबरी ब्याह हुए से दुरुस्त तो क्या होती उसने चौथे-पाँचवें ही महीने मियाँ पर तक़ाज़ा करना शुरू किया कि हम से तुम्हारी मां के साथ नहीं रहा जाता। हम तो रहेंगे अपने मैके या ख़ैर ऐसी ही ज़बरदस्ती है तो किसी दूसरे मुहल्ले में चल रहो। हमसे यह रात-दिन की किलकिल नहीं सही जाती। मुहम्मद आ़क़िल हक्का-बक्का-सा होकर बीवी का मुँह देखने लगा

समधियाना—जहां लड़के-लड़कियों का सम्बन्ध होता है वे दोनों घर आपस में समधियाने कहलाते हैं; **ताहम**—फिर भी; **उस्तख़्वां**—शाब्दिक अर्थ हड्डी होता है लेकिन यहाँ खानदान, घराने का अर्थ है; **फड़क**—तृष्णा, किसी चीज़ के लिए तरस जाना या फड़क जाना एक ही बात है; **दिल मैला होना** का अर्थ है रंजीदा और उदास होना; बड़ी बीबी से यहाँ मुहम्मद आ़क़िल की मां की तरफ़ संकेत है; **मैका**—मा का घर; **किलकिल**—लड़ाई-झगड़ा।

और बोला कि—"आख़िर कुछ बात भी ? मुझ से तो आज तक अम्माजान ने तुम्हारी शिकायत की नहीं।"

अकबरी—"लो और सुनो, उल्टा चोर कोतवाल को डांडे। वो मेरी क्या शिकायत करतीं ? शिकायत करता है कमज़ोर। शिकायत करता है वो जिसका कुछ बस नहीं चलता। शिकायत करता है मज़लूम।"

मुहम्मद आक़िल—"ख़ुदा नख़ास्ता तुम पर किसी ने क्या ज़ुल्म किया, कुछ बताओगी भी।"

अकबरी—"एक हो तो बताऊँ, सारे दिन उनको मेरा ही जुटना है।"

मुहम्मद आक़िल—"तुमने कुछ मालूम भी किया कि क्या चाहती हैं ?"

अकबरी—"चाहती क्या हैं, मेरे पास किसी के आने और बैठने तक की रवादार नहीं। त्यौरी तो उनकी मैं जानती हूँ ख़ुदा ने चढ़ी हुई बनाई है। मगर आज तो उन्होंने चुनिया और ज़ुल्फ़न और रहमत और सलमती मुँह दर-मुँह सबकी फ़ज़ीहती की।"

मुहम्मद आक़िल—"तुम को उन लड़कियों का कुछ हाल भी मालूम है ? चुनिया तो भटियारी है, ज़ुल्फ़न शायद बख़्शू

उल्टा चोर कोतवाल को डांटे—यह कहावत है और ऐसी जगह कही जाती है जहाँ कोई मेरा ही क़सूर करे और उल्टा मुझी को दोष दे; **मज़लूम**—जिस पर ज़ुल्म हुआ हो; **जुटना**—मेरे ही पीछे पड़ी रहती हैं, मेरा ही दुखड़ा रोती हैं; **रवादार**—इसको भी ठीक नहीं समझतीं कि कोई मेरे पास आये और बैठे, सम्बन्ध रखने वाला; **फ़ज़ीहती**—बुरा-भला कहा।

क़लईगर की कोई है, रहमत सक़्क़नी है और उस काली-काली सलमती को मैंने अक्सर मूलन कुंजड़े की दुकान पर देखा है। मैं समझता हूँ ज़रूर उसकी बेटी होगी, मूलन से उसका नक़्शा भी मिलता हुआ है। भला फिर ये लोग इस क़ाबिल हैं कि तुम उनको अपनी सहेलियाँ बनाओ? मुहल्ले के भले आदमी सुनेंगे तो क्या कहेंगे? ग़रीब होना कुछ ऐब की बात नहीं है। मगर ऐसे लोगों की आदतें अच्छी नहीं होतीं। इसी ख़याल से वालिदा ने इन लड़कियों के आने को मुमानअ़त की होगी। सो यह कोई बुरा मानने की बात नहीं।"

अकबरी—"बस तुम मां-बेटों की मर्ज़ी तो मुझे क़ैद में डालने की है, नूज।"

मुहम्मद आ़क़िल—"अकेली क्यों बैठो? गली की गली में क़ाज़ी इमामअली, हकीम शफ़ाउद्दौला, मुन्शी मुमताज़ अहमद, मौलवी रूह अल्ला, मीर हसन रज़ा आग़ाई साहब वग़ैरह कोड़ियों अशराफ़ भरे पड़े हैं। ऐसे लोगों की बहू बेटियों से मिलो—चश्मे-मा रोशन, दिले-मा शाद।"

अकबरी—"उनसे मिले मेरी जूती उनसे मिले मेरी बला। तुम भी वही हमारी अम्मा जैसी हाई लाये। वो भी बहुत मेरे

सक़्क़नी—भिश्तन; **नक़्शा**—सूरत शक्ल; **ऐब**—बुराई; **वालिदा**—मां; **मुमानअ़त**—मनाही; **नूज**—दिल्ली की औरतों की बोली है। ऐसा मालूम होता है कि न हूजियो से नूज बना लिया है; **कोड़ी**—बीस को कहते हैं; **चश्मे-मा रोशन, दिले-मा शाद**—हमारी आँखें रोशन हमारा दिल ख़ुश, जैसे कहते हैं आँखों को सुख कलेजे ठंडक; **हाई**—यानी रीत करने लगे।

पीछे पड़ी रहा करती थीं कि पनिहारी की बेटी बन्नो से न मिल। वो बनी हुई थी मेरी सहेली, भला उससे मैं कैसे न मिलती? अम्मा की ज़िद में मैंने बन्नो के साथ एक छोड़ दो गुड़ियों के ब्याह किये और अम्मा से चुरा-चुराकर अनाज और पैसे-कपड़े और कौड़ियाँ इतनी चीज़ें बन्नो को दीं कि अम्मा भी ज़िच हो गईं। नानी अम्मा के डर के मारे मारतीं तो क्या, भतेरा कोसती थीं, बुरा-भला कहती थीं मगर हमने बन्नो का मिलना न छोड़ा।"

मुहम्मद आक़िल ने कहा—"तुमने बहुत झक मारा।"

यह सुनकर वो अहमक़ औरत बोली—"देखो ख़ुदा की क़सम, मैंने कह दिया, मुझसे ज़बान सँभालकर बोला करो, नहीं पीट-पीटकर अपना ख़ून कर डालूँगी।" यह कहकर रोने लगी और अपने मां-बाप को कोसना शुरू किया—"इलाही उस अम्मा-बावा का बुरा हो, कैसी कमबख़्ती में मुझको धकेल दिया है। मुझको अकेला पाकर सबने सताना शुरू किया है। इलाही मैं मर जाऊँ, मेरा जनाज़ा निकले। और ग़ुस्से के मारे पान खाने की पिटारी जो चारपाई पर रखी थी लात मारकर गिरा दी। तमाम कत्था-चूना तोशक पर गिरा। ऊनी दरेस का लिहाफ़ पायँते तह किया हुआ रखा था, चूने के लगते ही उसका तमाम रंग कट गया। पिटारी के गिरने का ग़ुल सुनकर सामने के दालान से सास दौड़ी आईं। मां को आते देखकर बेटा तो दूसरे दरवाज़े से चल दिया, लेकिन

ज़िच—तंग; **भतेरा**—बहुतेरा; **कोसना**—बुरा भला कहना; **जनाज़ा**—अरथी; **तोशक**—पलंग का रुईदार बिछौना; **ग़ुल**—शोर।

अपने दिल में कहता था नाहक़ मैंने भिड़ों के छत्ते को छेड़ा। सास ने आकर देखा तो चार पैसे का कत्था जो कल छान-पकाकर कुल्हिया में भर दिया था सब गिरा पड़ा है, तोशक कत्थे में लत-पत है। लिहाफ़ चूने में तर-बतर। बहू ज़ार-क़तार रो रही है। आते ही सास ने बहू को गले से लगा लिया और अपन बेटे को नाहक़ बहुत कुछ बुरा कहा। इतनी दिलजोई का सहारा ऊँघते को ठेलते का बहाना हुआ। हरचन्द सास ने मिन्नत की और समझाया, उस मक्कार औरत पर मुतलक़ असर न हुआ। हमसाये की औरतें रोने-पीटने की आवाज़ सुनकर जमा हो गईं। यहाँ तक नौबत पहुँची कि बख्शू क़लईगर की बेटी ज़ुल्फ़न समधियाने दौड़ी गईं और एक एक की चार चार लगाईं। नानी की बेतदबीरियों ने तो अकबरी को ग़ारत ही किया था। न अच्छी तरह पूछा न गच्छा, सुनते के साथ डोली पर चढ़ आ पहुँचीं। बहुत कुछ लड़ी-झगड़ीं। आख़िर अकबरी को अपने साथ ले गईं।

ज़ार क़तार—ज़ोर-ज़ोर से रोना; **दिलजोई**—दिलख़ुश करना; **ऊँघते को ठेलते का सहारा**—यह एक मुहावरा है कि ऊँघते आदमी को ठेल दो या झुका दो तो न लेटता हो तो भी लेट जायगा; **मिन्नत**—मान मनुहार; **मक्कार**—धूर्त; **हमसाया**—पड़ोस; **ग़ारत**—बरबाद।

बाब चौथा

अकबरी की शरारतें, फूहड़पन, हुमक और बदमिज़ाजियाँ उसका फिर ऐन ईद के दिन बेलुत्फ़ी से चला जाना। ज़मनन असग़री की मदह।

अकबरी गई तो ऐसे बेतौरी से थी कि शायद उसको बरसों सुसराल का मुँह देखना नसीब न होता। मगर इत्तिफ़ाक से उसकी सगी ख़ाला मुहम्मद आ़किल के घर के क़रीब रहती थीं। अगर यह नेकबख़्त तत्तो-थम्भो न करती रहें तो सुसराल में अकबरी की एक दिन भी गुज़र न हो। अकबरी का चला जाना सुनकर ख़ाला ने बहुत अफ़सोस किया कि अगर मुझको वक़्त पर ज़रा भी लड़ाई की ख़बर होती तो अकबरी को ऐसी क्या मजाल थी कि चली जाती। मैं तो उसको डोली में से घसीट लेती। उन्होंने यह ख़याल किया था कि अकबरी तो निरी अहमक़ है। रहीं नानी, उनको ख़ुदा ने बैठे-बिठाये नवासी का इश्क़ लगा दिया है। मगर हां आपा (अकबरी की माँ) बेटी को बिठाने वाली नहीं। जब देखा

फूहड़पन—अशिष्टता; **हुमक**—मूर्खता; **बदमिज़ाजियाँ**—स्वभाव की बुराइयाँ; **ज़मनन**—इसी संदर्भ में; **मदह**—तारीफ़; **बेतौरी**—कुढंगेपन से; **मुँह देखना नसीब न होना**—सुसराल लौटकर आना; **तत्तो-थंभो**—रोकथाम, सम्हाल; **मजाल**–हिम्मत, साहस; **नवासी**—धेवती, लड़की की लड़की।

कि बहुत दिन हो गये और जानिबैन से सलाम ओ पयाम तक मतरूक है तो भानजी की मामता के मारे खुद गईं और माँ और नानी दोनों के सामने अकबरी को बहुत कुछ लानत-मलामत की। समझाया, धमकाया, डराया और अपनी माँ से कहा कि—"तुम्हारी बावली मुहब्बत इसको ज़रूर घर से उजाड़कर रहेगी। बारे रमज़ान की तक़रीब से ज़बरदस्ती भानजी को सुसराल लिवा लाईं कि समधन अकेली हैं, ऊपर से आ रहा है रमज़ान। गुस्से को थूक डालो और चलकर सास का हाथ बँटवाओ। अब तुम बच्ची नहीं रहीं। तुम्हारी उम्र बाल-बच्चे होने की है। भारी-भरकम बनो और घर को घर समझो। लड़ो या झगड़ो अपनी उम्र इसी घर में तीर करनी है।"

चन्द रोज़ तक मुहम्मद आक़िल मिज़ाजदार बहू से नाखुश रहा। आखिर को खलिया सास ने मियाँ-बीबी का मिलाप करा दिया। लेकिन जब मिज़ाजों में नामुवाफ़िक़त होती है तो हर एक बात में बिगाड़ का सामान मौजूद होता है। मुहम्मद आक़िल ने एक दिन अपनी माँ से कहा कि आज मैंने एक दोस्त की दावत की है। इफ़्तारी और खाने का

जानिबैन—दोनों तरफ़ से, याने दोनों समधियाने से; **पयाम**—पैग़ाम, संदेश; **मतरूक**—बन्द; **लानत-मलामत**—बुरा भला कहना, भर्त्सना; **बारे**—अन्त में; **गुस्से को थूक डालो**—दूर करो; **हाथ बँटाना**—कुछ घर का काम वे करें कुछ तुम करो, इस तरह अपना हिस्सा बँटाओ; **भारी-भरकम बनो**—छिछोरपन छोड़ो और स्वभाव में पक्कापन और गम्भीरता लाओ; **तीर करनी है**—गुजारनी है; **नामुवाफ़िक़त**—प्रतिकूलता, मनमुटाव; **इफ़्तारी**—मुसलमान सूरज के डूबते ही रोज़ा याने उपवास खोलते हैं। रोज़ा

ज़्यादा एहतिमाम होना चाहिए।"

माँ ने जवाब दिया—"तीन दिन से इफ़्तार के वक़्त मुझको लरज़ा चढ़ता है, मुझको अपनी ख़बर तक नहीं रहती। ख़ुदा हमसाई का भला करे कि वो बेचारी आकर पका जाती है। तुमने दावत से पहले घर में पूछ तो लिया होता।"

मुहम्मद आक़िल ने बीबी की तरफ़ इशारा करके कहा कि—"ये क्या इतने काम की भी नहीं हैं।"

बहू को इतना ज़ब्त कहाँ था कि इतनी सुनकर चुप रहे। सुनते ही बोली—"इसी बूढ़ी अम्माँ से पूछो कि बेटे का ब्याह किया है या लौंडी मोल ली है। लो साहब रोज़े में चूल्हा फूँकना!" मुहम्मद आक़िल ने सोचा अब अगर मैं रद्द ओ कद करता हूँ, पहले की तरह रुसवाई होगी। अपना-सा मुँह लेकर रह गया और इफ़्तार के वास्ते कुछ बाज़ार से मोल ले आया। ग़र्ज़ बात टल गई।

अब मुहम्मद आक़िल को दूसरी आफ़त पेश आई—ईद। बेचारे ने एक हफ़्ता आगे से मिज़ाजदार बहू साहब के जोड़े की तैयारी शुरू की। हर रोज़ तरह-तरह के कपड़े, रंग-बिरंग की चूड़ियाँ, डेढ़ हाशिया और सलमा-सितारे की कामदार जूतियाँ लाता। मिज़ाजदार की ख़ातिर तले कुछ नहीं आता था और फिर कमबख़्त कुछ अपने मुँह से फूटती भी

खोलने को रोज़ा इफ़्तार करना कहते हैं और इस वक़्त को इफ़्तार का वक़्त और जिस चीज़ से रोज़ा खोलें जैसे शरबत वग़ैरह उसको इफ़्तारी कहते हैं; **एहतिमाम**—बंदोबस्त; **लरज़ा**—जाड़े की कँपकपी; **रुसवाई**—बदनामी; **अपना सा मुँह लेकर**—खिसयाना होकर रह गया; **ख़ातिर तले**

न थी कि ऐसी चीज़ ला दो। यहाँ तक कि ईद का एक दिन बाक़ी रह गया। मजबूर होकर अकबरी खानम की ख़ाला के पास गया। उन्होंने आवाज़ सुनकर अन्दर बुला लिया, बलायें लीं, प्यार से बिठाया और पूछा—"कहो, अकबरी तो अच्छी है ?"

मुहम्मद आक़िल नें कहा—"साहब आपकी भानजी तो अजब मिज़ाज की औरत हैं। मेरा तो दम नाक में आ गया है। जो अदा है सो निराली है जो बात है सो टेढ़ी है।"

ख़लिया सास ने कहा—"बेटा ! उसका कुछ ख़याल मत करो। अभी कम उम्र है बाल-बच्चे होंगे, घर का बोझ पड़ेगा, मिज़ाज खुद बख़ुद दुरुस्त हो जायगा। और आख़िर अच्छे लोग बुरों से भी निबाह देते हैं। बेटा तुमको ख़ुदा ने सब लायक़ किया है। ऐसी बात न हो कि लोग हँसें। आख़िर तुम्हारा नामूस है।"

मुहम्मद आक़िल ने कहा—"जनाब मैं तो ख़ुद इसी ख़याल से बहुत दर गुज़र करता रहता हूँ। अब देखिये कल ईद है। इस वक़्त तक न चूड़ियाँ पहनी हैं, न कपड़े बनाये हैं। ज़रा आप चलकर समझा दीजिये। मैंने बहुत कुछ कहा, अम्माँ ने बहुत मिन्नतें कीं। नहीं मानतीं।"

ख़लिया सास ने कहा—"अच्छा तुम्हारे ख़ालू अब्बा

न आना—पसन्द नहीं आता था; **मुह से न फूटती थी**—कहती भी नहीं थी। **बलायें लीं**—प्यार के तौर पर दोनों हाथ सर पर फेरकर अपनी कनपटियों पर उँगलियों के चटखाने को बलायें लेना कहते हैं; **दम नाक में आना**—परेशान होना; **नामूस**—इज़्ज़त आबरू; **दरगुज़र करना**—बरदाश्त करना; **ख़ालू अब्बा**—मौसा।

नमाज़ पढ़ने मस्जिद में गये हैं, आ लें तो उनसे पूछकर चलती हूँ।"

ग़र्ज़ ख़ाला अम्माँ ने जाकर चूड़ियाँ पहनाईं, कपड़े क़ता किये। जल्दी के मारे सब मिलकर सीने बैठे। ख़ाला ने कहा— "बेटी पायजामे में कलियाँ तुम लगाओ, गोट तुम्हारी सास कतरें, मैं इतने में तुम्हारे दुपट्टे में तुई टाँकती हूँ।"

जब अक़बरी कलियाँ लगा चुकी तो उसने इतराकर ख़ाला से कहा—"लो भी, तुमको अभी दो पल्ले बाक़ी हैं और मैं दोनों पायचों में कलियाँ लगा भी चुकी।" ख़ाला ने देखा तो सब कलियाँ उल्टी। अक़बरी की सास के लिहाज़ से मुँह पर तो कुछ न कहा लेकिन चुपके-चुपके दो-चार चुटकियाँ ऐसी लीं कि अकबरी की आँखों में आँसू भर आये और इशारे से कहा कि—दीदों फूटी, सूझ तो उल्टी कलियाँ लगा बैठी। अकबरी ने अपना सीया हुआ सब उधेड़ा और फिर कलियाँ लगानी शुरू कीं। जब लगा चुकी, ख़ाला ने देखा तो सब में झोल। अब तो ख़ाला से न रहा गया और अकबरी की सास की आँख बचा एक सूई अकबरी के हाथ में चुभो दी और कलियाँ फिर उधेड़कर आप लगाईं। ग़र्ज़ ख़ुदा ख़ुदा करके मिज़ाजदार बहू का जोड़ा सिलकर तैयार हुआ। अकबरी की ख़ाला अपने घर को रुख़सत हुईं।

इतराकर—शेखी और बड़ाई मारकर; **दीदों फूटी**—आँखों की अन्धी; **सूझ तो**—देख तो; **मिज़ाजदार**—दिल्ली का दस्तूर है कि सुसराल वाले बहू का कुछ नाम रख दिया करते हैं। इसको ख़िताब कहते हैं। मिज़ाज दार अकबरी का सुसराली खिताब था।

अगले दिन बच्चे ईद की ख़ुशी में सवेरे से जागे। किसी ने रात की मेंहदी खोली, किसी ने खली और बेसन के लिए ग़ुल मचाया, किसी ने उठने के साथ ईदी माँगनी शुरू की। मुहम्मद आ़क़िल भी नमाज़े-सुबह से फ़ारिग़ होकर हम्माम में ग़ुसल करने चला गया। नहा-धोकर चार घड़ी दिन चढ़े वापस आया। लड़कियों को देखा कि कपड़े बदल-बदला ईद-गाह के वास्ते तैयार बैठे हैं। लेकिन मिज़ाजदार बहू साहब हस्बे-आदत पड़ी सो रही हैं। मुहम्मद आ़क़िल ने अपनी छोटी बहन महमूदा से कहा—"जाओ, अपनी भाभी को जगा दो।"

पहले तो महमूदा ने ताम्मुल किया। इस वास्ते कि यह मिज़ाजदार बहू से बहुत डरती थी। जबसे ब्याह हुआ मिज़ाज-दार ने एक दिन भी अपनी छोटी ननद के साथ मुहब्बत से बात नहीं की थी, और न कभी उसको अपने पास आने और बैठने दिया था। लेकिन भाई के कहने से ईद की ख़ुशी में महमूदा दौड़ी चली गई और कहा भाभी उठो। भाभी ने उठते के साथ महमूदा के एक तमाचा सही किया। महमूदा रोने लगी। बाहर से भाई आवाज़ सुनकर दौड़ा। उसको रोता देखकर गोद में उठा लिया और पूछा क्या हुआ? महमूदा ने रोते-रोते कहा कि भाभीजान ने मारा।

खली—सरसों की खली और बेसन से बाल धोते और शरीर साफ़ करते हैं, इसे उबटन भी कहते हैं। **ईदी**—ईद का प्रसाद या ईनाम; **हम्माम**—ग़ुसलखाना; **ग़ुसल**—स्नान; **हस्बे-आदत**—आदत के मुताबिक़; **ताम्मुल**—संकोच; **सही किया**—मार दिया।

मिज़ाजदार ने कहा—"देखो झूठी नामुराद, आप तो दौड़ने में गिरी और मेरा नाम लगाती है।

मुहम्मद आक़िल को ग़ुस्सा आया लेकिन मसलहते-वक़्त समझकर ज़ब्त किया। महमूदा को प्यार-पुचकारकर चुप किया और बीबी से कहा—"ख़ैर उठो, नहाओ, कपड़े बदलो। दिन ज़्यादा चढ़ गया है। मैं ईदगाह जाता हूँ।"

मिज़ाजदार ने नाक-भौं सुकेड़कर कहा—"मैं तो ऐसे सवेरे नहीं नहाती, सर्दी का वक़्त है। तुम अपनी ईदगाह जाओ। मैंने क्या पल्ला पकड़ रक्खा है?"

मुहम्मद आक़िल को ऐसी रूखी बात सुनकर बहुत रंज हुआ और मिज़ाजदार सदा की ऐसी कमबख़्त थी कि हमेशा अपने मियाँ को नाख़ुश रखती थी। इतने में मुहम्मद आक़िल को माँ ने पुकारा कि—"बेटा जाओ, बाज़ार से दूध ला दो तो ख़ैर से ईदगाह को सिधार दो।"

मुहम्मद आक़िल ने कहा—"बहुत ख़ूब। पैसे दीजिये मैं दूध लाये देता हूँ। लेकिन अगर मेरे वापस आने तक इन्होंने कपड़े न बदले तो सब कपड़े चूल्हे में रख दूँगा।" मुहम्मद आक़िल तो दूध लेने बाज़ार गया। माँ को मालूम था कि लड़के का मिज़ाज बहुत बरहम है और तबियत भी इस तरह की वाक़ा हुई है कि अव्वल तो उसको ग़ुस्सा नहीं आता

नामुराद—कोसना है यानी उसकी कोई मुराद पूरी न हो; **मसलहते-वक़्त**—वक़्त की शुभ सलाह; पल्ला पकड़ने का मतलब है रोक रखना; **सिधार दो**—रवाना हो जाओ, प्यार और मुहब्बत के समय सिधार दो कहते हैं; **बरहम**—विक्षिप्त, नाराज़; **वाक़ा होना**—बनी होना।

और जो कभी आ जाता है तो उसकी अक़्ल ठिकाने नहीं रहती। ऐसा न हो सचमुच नये कपड़े जला दे। जल्दी से बहू के पास गईं और कहा—"बेटी ख़ुदा के लिए बरस के बरस दिन तो बदशगुनी मत करो। उठो, नहाओ, कपड़े बदलो।"

मिज़ाजदार ने कहा—"नहीं बी, मैं तो इस वक़्त नहीं नहाती। ठहरकर नहा लूँगी।" बाद में सास ने मिन्नत-समाजत करके बहू को नहला-धुला, कंघी-चोटी कर, कपड़े पहना मुहम्मद आ़क़िल के आने से पहले-पहले दुलहन बनाकर बिठा दिया। मुहम्मद आ़क़िल यह देखकर ख़ुश हुआ। ईद-गाह चलते हुए महमूदा से पूछा—"कहो बी, तुम्हारे वास्ते बाज़ार से कौनसा खिलौना लायें?"

महमूदा ने कहा—"अच्छी ख़ूबसूरत-सी रहल ला देना। उस पर हम अपना सिपारा रखेंगे और क़लम दवात रखने के लिए एक नन्ही सी सन्दूक़ भी।"

मिज़ाजदार ख़ुद बख़ुद बोली—"और हमारे लिये।"

मुहम्मद आ़क़िल बोला—"जो तुम फ़रमाइश करो लेता आऊँगा।"

मिज़ाजदार ने कहा—"भुट्टे और सिंघाड़े और झड़-बेरी के बेर और मटर की फलियाँ और ढेर सारी नारंगियाँ। एक डफ़ली, एक खंजरी।"

बरस के बरस दिन—ईद बरसवें दिन आती हैं और गोया इससे नया बरस शुरू होता है; **बदशगुनी**—बुरा शकुन; **मिन्नत-समाजत**—समझाना बुझाना; **रहल**—लकड़ी की बनी हुई दो पटरों की टिकटी होती है जो किताब की तरह खुल जाती है जिस पर क़ुरान शरीफ़ वग़ैरह रखकर पढ़ते हैं।

यह सुनकर मुहम्मद आ़क़िल हँसने लगा और कहा—"डफ़ली और ख़ंजरी का क्या करोगी ?" मिज़ाजदार अहमक़ ने जवाब दिया—"बजायेंगे और क्या करेंगे ?"

मुहम्मद आ़क़िल समझा कि अभी तक इस बेवकूफ़ में बेतमीज़ बच्चों की तरह खाने और खेलने के पस्त ख़यालात मौजूद हैं। कपड़े बदलने से जो ख़ुशी मुहम्मद आ़क़िल को हुई थी सब ख़ाक में मिल गई और इसी अफ़सुर्दा दिली की हालत में ईदगाह चला गया।

उसका जाना और मिज़ाजदार ने एक और नई बात की। सास से कहा—"हम को डोली मँगा दो, हम अपनी अम्माँ के घर जायँगे।"

सास ने कहा—"भला यह जाने का क्या मौक़ा है ? चार महीने के बाद तो तुम माँ के घर से अब आई हो। ऐन ईद के दिन जाना बिल्कुल नामुनासिब है।"

मिज़ाजदार ने कहा—"मेरा जी बहुत घबराता है। दिल उल्टा चला आता है। मुझको अपने मैके की सहेली बासू मनिहार की बेटी बन्नो बहुत याद आती है।"

सास ने कहा—"बेटी नूज किसी को किसी से ऐसा इश्क़ हो जैसा तुमको बन्नो का है। अगर ऐसा ही दिल चाहता है तो उसी को बुला भेजो।"

मिज़ाजदार ने कहा—"वाह, बड़ी बेचारी बुलाने वाली। ऐसा ही बुलाना था तो कल उसीको बुलाकर चूड़ियाँ पहनाई होतीं।"

पस्त—नीच; अफ़सुर्दा—उदास।

सास ने कहा—"भला बेटी मुझको क्या मालूम था कि यकायक तुमको उसकी याद गुदगुदायेगी।"

मिज़ाजदार ने कहा—"ख़ैर बी, बहस से क्या फ़ायदा? डोली मँगवानी है तो मँगवा दो नहीं तो मैं बुआ सलामती के अब्बा से मँगवा भेजूँ।"

सास ने कहा—"लड़की, कोई तेरी अक़्ल मारी गई है। मियाँ से पूछा नहीं गच्छा नहीं, आप ही आप चलीं। और मुझको अपना बुड्ढा चूँडा नहीं मुँडवाना है जो लड़के की बेइज़्ज़त डोली मँगवा दूँ।"

मिज़ाजदार बोली—"कैसे मियाँ और कैसा पूछना? अब कोई अपने मां-बाप से ईद को भी न मिला करे?" इतना कह मूलन कुंजड़े से डोली मँगवा, यह जा वो जा।"

थोड़ी देर के बाद मुहम्मद आ़क़िल ईदगाह से लौटा और घर में घुसते ही पुकारा—"लो बी, अपनी ख़ंजरी और डफ़ली। लो बजाओ।"

देखा तो सब चुप हैं। मां से पूछा—"क्या हुआ? ख़ैर तो है?"

महमूदा ने कहा—"भाभी जान चली गईं।" मुहम्मद आ़क़िल ने हैरान होकर पूछा—"अयँ, क्यों कर गईं? कहाँ गईं? क्यों जाने दिया?"

मां ने जवाब दिया—"बैठे-बिठाये यकायक कहने लगीं मैं तो अपनी मां के 'हाँ जाऊँगी। मैंने हरचन्द मना किया, एक न मानी। मूलन से डोली मँगवाकर चली गईं। मैं

बुड्ढा चूँडा—सफ़ेद चोटी;

रोकती की रोकती रह गई ।"

मुहम्मद आक़िल यह सुनकर ग़ुस्से के मारे थर्रा उठा और चाहा कि सुसराल जाकर अभी उस नाबकार औरत को सज़ा दे । यह सोचकर बाहर चला । मां समझ गई । जाते को पुकारा । उसने कुछ जवाब न दिया । मां ने कहा—"शाबाश बेटा, शाबाश ! मैं तुमको पुकार रही हूँ और तुम सुनते हो और जवाब नहीं देते । तेरहवीं सदी में माओं का यही वक़र रह गया है ।" यह सुनते ही मुहम्मद आक़िल उल्टे पाँव फिरा । मां ने कहा—"बेटा तू यह तो बता इस धूप में कहाँ जाता है ? अभी ईदगाह से आया है । अब फिर बाहर चला । अम्मा सदक़े गई, जी मांदा हो जायगा ।"

मुहम्मद आक़िल ने कहा—"बी मैं कहीं नहीं जाता, मस्जिद में हाफ़िज़जी से मिलने जाता हूँ ।"

मां ने कहा—"अय लड़के होश में आ ! मैंने धूप में अपना चूँडा सफ़ेद नहीं किया । लो साहब हमीं से बातें बनाने चला है ! हाफ़िज़जी के पास जाता है तो अंगरखा और दुपट्टा उतारकर रख जा ।" यह सुनकर मुहम्मद आक़िल मुस्कराने लगा । मां ने हाथ पकड़कर अपने पास जानमाज़ पर बिठा

थर्रा उठा—काँप उठा; **नाबकार**—नालायक़ । **उल्टे पांव**—फ़ौरन लौट आया; **सदके जाना**—बलायें टालने को औरतें कहा करती हैं कि मैं तुम्हारे पर न्यौछावर हो जाऊँ; **जी मांदा हो जाना**—तबियत ख़राब हो जायगी; **धूप में चूँडा सफेद नहीं किया**—यानी मेरे बाल उम्र की वजह से सफ़ेद हुए हैं और मैं बच्ची नहीं हूँ, इतनी बात समझती हूँ कि तुम मुझको बहका रहे हो; **जानमाज** को मुसल्ला भी कहते हैं, नमाज़ पढ़ने की चटाई ।

लिया और उसके सर की तरफ़ देखकर बोली कि "ईदगाह के आने-जाने में तुम्हारे बाल तमाम गर्द-आलूद हो गये हैं, ज़रा तकिये पर सर रखकर लेट जाओ तो मैं साफ़ कर दूँ।" मुहम्मद आ़क़िल मां के कहने से ज़रा के ज़रा लेट गया। महमूदा भाई को लेटा देख पंखा झलने लगी। कुछ तो ईद-गाह के आने-जाने का तकान, उधर पंखे की ठंडी-ठंडी हवा और मां नें जो दस्ते-शफ़क़त सर पर फेरा तो सब से ज़्यादा उसकी राहत। ग़र्ज़ मुहम्मद आ़क़िल सो गया। जागा तो दिन ढल चुका था और वो ग़ुस्सा भी धीमा हो गया था। मां ने कहा—"लो हाथ मुँह धोओ, वज़ू करके ज़हर की नमाज़ पढ़ो, वक़्त तंग है। फिर आओ तुमको काम बताएँ।"

नमाज़ पढ़-पढ़ाकर मुहम्मद आ़क़िल आया तो मां ने कहा—"लो अब सुसराल जाओ और तुझे मेरी जान की क़सम है जो तू वहाँ कुछ लड़ा या बोला।"

मुहम्मद आ़क़िल ने कहा—"तो मुझको मत भेजो।" मां ने कहा—"लड़के ख़ैर ख़ैर मना? इलाही कैसी बुरी ज़बान है। सुसराल तो तेरी, और भेजूँ किसको? लो यह रुपया तू अपनी साली असग़री के हाथों में ईदी देना और यह एक अठन्नी अपनी ख़लिया सास के बेटे मियाँ मुसल्लम को और आधे खिलौने भी लेते जाओ। एक ख़्वान में सिवैयाँ और दूध

दस्ते-शफ़क़त—प्यार का हाथ; **राहत**—आराम; **वज़ू**—पूजा-प्रार्थना या नमाज़ से पहले हाथ-मुँह धोकर पाक-पवित्र होने को वज़ू करना कहते हैं; **ज़हर की नमाज़**—तीसरे पहर या दिन ढले की नमाज़; **तंग**—थोड़ा है; **ख़्वान**—थाल।

और मिठाई की टोकरी भी मामा अ्ज़मत के हाथ अपने साथ लिवा ले जाओ। देखो ख़बरदार कुछ बोलना-चालना मत।"

मुहम्मद आ़क़िल ने कहा—"और अम्मा ख़ंजरी और डफ़ली भी लेता जाऊँ? मां ने कहा—"कहीं ऐसी बात वहाँ मत बोल उठना।"

ग़र्ज़ मुहम्मद आ़क़िल सास के घर पहुँचे। घर में अकबरी ख़ानम अपनी सहेलियों के साथ ऊधम मचा रही थी और बाहर गली में तमाम ग़ुल की बात चली आती थी। मामा अ़ज़मत अन्दर गई। असग़री ने मामा को दूर से देख दबी आवाज़ से कहा—"अय बी आपा, अय बी आपा, चुप करो। तुम्हारी सुसराल से मामा आई है। अ़ज़मत ने अन्दर पहुँचकर मुहम्मद आ़क़िल को बुलाया—"साहबज़ादे आइये।" गर्ज़ मुहम्मद आ़क़िल अन्दर गये। सास को सलाम किया। उन्होंने कहा—"जीते रहो उम्र दराज़" इतने में असग़री भी अपनी ओढ़नी सँभाल-सँभूल कोठरी से निकली और निहायत अदब से झुककर बहनोई को सलाम किया। असग़री को बहनोई ने हाथ पकड़कर बराबर बिठा लिया और रुपया दिया। असग़री मां की तरफ़ देखने लगी। मां ने कहा—"क्या हुआ ले लो ईदी का है।" असग़री ने रुपया लेकर फिर सलाम किया और अदब से ज़रा परे को सरककर हो बैठी। फिर उठकर निहायत सलीक़े के साथ उजला दस्तरख़्वान बहनोई के आगे ला बिछाया और एक रकेबी में सिवैयाँ, एक प्याले में दूध, तश्तरी में क़ंद, एक चमचा लाकर सामने रख

ग़ुल—शोर-शराबा; उम्र दराज़—लम्बी उम्र।

दिया। सास ने कहा—"बेटा खाओ।"

मुहम्मद आक़िल ने उज़्र किया कि—"मुझ को ईदगाह में ज़्यादा देर हो गई थी। अभी थोड़ी देर हुई मैंने खाना खाया है।"

सास ने कहा—"क्या मुज़ायक़ा है। सिवैयाँ तो पानी होती हैं। खाओ भी।"

जब तक मुहम्मद आक़िल सिवैयाँ खाता रहा असग़री इलायची डाल एक मज़ेदार पान बना लाई। खाने के बाद इधर-उधर की बातें होती रहीं। थोड़ी देर के बाद मुहम्मद आक़िल ने कहा—"जनाब मैं रुख़सत चाहता हूँ।"

सास—"अब कहाँ जाओगे यहीं सो रहना।"

मुहम्मद आक़िल—"आज ईद का दिन है आये-गये से मिलना है, दूसरे कहीं कुछ भेजना-भिजवाना और मैं अम्माँ से रात के वास्ते कह भी नहीं आया।"

सास—"मिलने-मिलाने का तो वक़्त नहीं रहा। शाम होने आई और भेजनें-भिजवाने को समधन काफ़ी हैं" और हँसकर यह भी कहा कि—"तुम कुछ समधन का दूध नहीं पीते। आख़िर अज़मत जायगी, ख़बर कर देगी।"

ग़र्ज़ मुहम्मद आक़िल ने बहुत-कुछ हीले किए। सास ने एक न मानी और मुहम्मद आक़िल को ज़बरदस्ती रहना पड़ा। चार घड़ी रात गये जब खाने-पीने से फ़ारिग़ हुए तो असग़री ने बरतन-भाँडा, गिरी-पड़ी चीज सब ठिकाने से रखी। बाहर

उज़्र—ऐतराज़; **मुज़ायक़ा**—हर्ज; **पानी होना**—जल्द हज़म हो जाने वाली; **हीला**—बहाना;

के दरवाज़े की ज़ंजीर बन्द की, कोठरियों को क़ुफ़्ल लगा कुंजियाँ माँ के हवाले कीं। बाहर के दालान और बावर्ची-ख़ाने का चिराग़ गुल किया। माँ और आपा और बहनोई सबको पान बनाकर दिये और इत्मीनान से जाकर सो रही।

अलग घर करने पर सास (अकबरी की माँ) और दामाद मुहम्मद आ़क़िल का मुबाहसा

अब सास ने मुहम्मद आ़क़िल से कहा—"क्यों बेटा, तुम मियाँ-बीबी में यह क्या आये दिन लड़ाई रहा करती है? अकबरी की तो ऐसी बुरी आदत है कि कभी भूलकर भी सुस-राल की बात मुँह से नहीं कहती। दुनिया-जहान की बेटियों का दस्तूर होता है कि सुसराल की ज़रा-ज़रा बात माओं से लगाया करती हैं। नहीं मालूम इसको क्या ख़ुदा की सँवार है, भतेरा पूछ-पूछकर अपना मुँह थकाओ, हाशा कि यह कुछ भी बताए। लेकिन टोले-मुहल्ले की बात कानों-कान पहुँच ही जाती है। ऊपरी लोगों से मैं भी घर बैठी सुना करती हूँ।"

मुहम्मद आ़क़िल ने सास से यह बात सुनकर थोड़ी देर ताम्मुल किया और लिहाज के सबब जवाब मुँह से नहीं निक-लता था। मगर उसने ख़याल किया कि मुद्दत के बाद ऐसा इत्तिफ़ाक़ हुआ है और ख़ुद उन्होंने छेड़कर पूछा है ऐसे

क़ुफ़्ल—ताला। **मुबाहसा**—बहस, वादविवाद; **सँवार**—संस्कार; **हाशा**—होना नहीं, हो नहीं सकता; **कानों-कान**—एक के कान से दूसरे के कान तक यानी एक से दूसरे तक; **ऊपरी**—अजनबी, बाहर वाले लोग; **सुकूत**—चुप रहना।

मौक़े पर सुकूत करना सरासर ख़िलाफ़े-मसलहत है। बेहतर है कि उम्र-भरका ज़हर उगल डालें। शायद आज की गुफ़्तगू में आयंदा के वास्ते कोई बात निकल आये।

ग़र्ज़ मुहम्मद आक़िल नें शरमाते-शरमाते कहा कि—"आप की साहबज़ादी मौजूद हैं। उन्हीं से पूछिए हमारे यहाँ उनको क्या तकलीफ़ पहुँची। ख़ातिरदारी और मदारात में किसी तरह की कमी हुई। या कोई उनसे लड़ा, या किसी ने उनको बुरा कहा? आपको मालूम है घर में हम गिनती के आदमी हैं। वालिदा से तो तमाम मुहल्ला वाक़िफ़ है। ऐसी नेक-मिज़ाज और सुलहकुल कि तमाम उम्र उनको किसी से लड़ने का इत्तिफ़ाक़ नहीं हुआ। अगर कोई उनको दस बातें सख़्त भी कह जाय तो चुप रह जाती हैं। मुहम्मद कामिल दिन भर लिखने-पढ़ने में रहता है। सुबह का निकला रात को घर आता है। खाना खाया और सो रहा। मैंने उसको इनसे कभी बात करते भी नहीं देखा। महमूदा इनकी सूरत से डरती है। रहा मैं सो मौजूद बैठा हूँ। जो कुछ शिकायत मुझसे हो बेतकल्लुफ़ बयान करें।"

मुहम्मद आक़िल की सास अब बेटी की तरफ़ मुख़ातिब होकर बोलीं—"हाँ भाई जो कुछ तुम्हारे दिल में हो तुम भी साफ़-साफ़ कह गुज़रो। बात का दिल में रहना अच्छा नहीं होता।

ख़िलाफ़े-मसलहत—समझदारी के ख़िलाफ़। **ज़हर उगलना**—यानी जितनी शिकायतें वग़ैरह हैं सब कह डाले; **मदारात**—आवभगत; **सुलहकुल**—सबसे सुलह शान्ति रखने वाली; **मुख़ातिब**—की तरफ़ मुँह करके;

दिल में रखने से रंज बढ़ता और फ़साद ज़्यादा होता है।"

अकबरी अगरचे झूठ बोलने पर बहुत दिलेर थी लेकिन इस वक़्त मुहम्मद आ़क़िल के रूबरू कोई बात कहते बन न पड़ी और जी ही जी में डर रही थी कि मैंने बहुत-सी झूठ-झूठ बातें माँ से आकर लगाई हैं, ऐसा न हो कहीं इस वक़्त क़लई खुल जाय। यह सोच-समझकर उसने इस बात ही को टाल दिया और कहा तो यह कहा कि—"हम तो अलग घर करेंगे।" अकबरी की माँ ने दामाद से कहा—"क्यों भाई तुम को अलग होकर रहने में क्या उज़्र है। ख़ुदा का फ़ज़्ल है, ख़ुद नौकर हो, ख़ुद कमाते हो, किसी बात में माँ-बाप के मोहताज नहीं, अपना खाना अपना पहनना, फिर दूसरे का दस्तनिगर होकर रहना क्या फ़ायदा? बेटा-बहू कैसे ही प्यारे हों फिर भी जो आराम अलग रहने में है माँ-बाप के घर कहाँ? जो चाहा सो खाया, जो चाहा सो पकाया। और ज़रा ग़ौर करने की बात है, माँ-बाप के साथ रहकर लाख कमाओ फिर भी नाम नहीं। लोग क्या जानें तुम अपना खाते हो या माँ-बाप के सर पड़े हो।"

मुहम्मद आ़क़िल ने कहा—"आराम पूछिये तो हमको जो अब हासिल है अलग हुए पीछे इसकी क़द्र मालूम होगी। दोनों वक़्त पकी-पकाई खा ली और बेफ़िक्र होकर बैठे रहे। अलग होने पर आटा-दाल, गोश्त तरकारी, तेल नमक, ईंधन सभी का फ़िक्र करना पड़ेगा और आप ही इन्साफ़ फ़रमाइये

फ़साद—झगड़ा, **क़लई**—यानी मालूम हो जाए कि यह माँ से आकर झूठी शिकायत किया करती है; **दस्तनिगर**—मोहताज;

ख़ानादारी में कितने बखेड़े हैं। बेसबब इन सब आफ़तों को अपने सर लेना मेरे नज़दीक तो अक़्ल की बात नहीं। रहा यह कि जो चाहा सो खाया और जो चाहा सो पकाया अब भी हासिल है। इन ही से पूछिए, कभी कोई फ़रमाइश की है जिसकी तामील न हुई हो? बड़े कुनबों में अलबत्ता इस तरह की तकलीफ़ हुआ करती है। एक का दिल मीठे चावलों को चाहता है, दूसरे को भुनी खिचड़ी चाहिए, तीसरे को पुलाव दरकार है, चौथे को क़ोरमा खाना मंज़ूर है, पाँचवे को परहेज़ी खाना हकीम ने बताया है। इसके वास्ते दस हँडियाँ रोज़ के रोज़ कहाँ से आयें? हमारे यहाँ कुनबा कौन बड़ा है। फ़रमाइश करें तो हम, और न करें तो हम। इसको भी जाने दीजिए। अगर इनको ऐसा ही लिहाज है, आप खाने का एहतिमाम किया करें। खुद वालिदा कई मर्तबा कह चुकी हैं। इन ही से पूछिए कहा है या नहीं? और नाम को जो आपने फ़रमाया यह तो मेरे नज़दीक महज़ ख़याले-ख़ाम है। अपने आराम से काम है लोग जो चाहें सो समझें। और फर्ज़ कीजिए लोगों ने यही जाना कि हम माँ-बाप के सर पड़े हैं तो इसमें हमारी क्या बेइज़्ज़ती है। माँ-बाप हैं कोई ग़ैर तो नहीं। माँ-बाप ने हमको पाला परवरिश किया, खिलाया, पिलाया, पहनाया, पढ़ाया-लिखाया, शादी-ब्याह किया। इन सब बातों में बेइज़्ज़ती नहीं हुई तो अब कौनसा सुरख़ाब का पर हममें

महज़—निरा; **ख़याले-ख़ाम**—अपक्व विचार; **सर पड़ना**—यानी अपने ख़र्च का बोझ उनके सर पर डाल रखा है; **सुरख़ाब**—लाल परों का समुद्री पक्षी होता है। इसके पर क़ीमती होते हैं। अमीर लोग इनको

लग गया है कि इनका दस्तनिगर होना हमारी बेइज़्ज़ती का मूजिब समझा जाय ?"

सास ने जवाब दिया—"अगर सब लोग तुम्हारी तरह समझा करें तो क्यों अलग हों। दुनिया का दस्तूर है, होती चली आई है और होती चली जायगी कि बेटे माँ बाप से जुदा हो जाते हैं। और मैं तो जानती हूँ दुनिया में कोई बहू ऐसी न होगी जिसका मियाँ कमाऊ हो और वो सास-ननदों में रहना पसन्द करे।"

मुहम्मद आ़क़िल ने कहा—"यह आपका फ़रमाना दुरुस्त है। अगर बेटे माँ-बाप से जुदा न हुआ करते तो शहर में इतने घर कहाँ से आते। लेकिन हरएक की हालत जुदा है। अलग होकर रहना मेरी हालत के लिए हरगिज़ मुनासिब नहीं मालूम होता। दस रुपये का तो मैं नौकर। इतनी आमदनी में अलग घर का सँभालना निहायत मुश्किल नज़र आता है और फिर इस नौकरी का भी ऐतबार नहीं। ख़ुदा नख़ास्ता अलग हुए पीछे अगर नौकरी जाती रही तो फिर बाप के घर आना मुझ पर निहायत शाक़ होगा। उस वक़्त अलबत्ता बेइज़्ज़ती होगी कि मियाँ अलग तो हो गए थे फिर झख मारकर बाप के टुकड़ों पर आ पड़े। लोगों की रीस इस मामले में ठीक नहीं। आदमी को अपने हाल पर नज़र करनी चाहिए। वो नक़ल आपने सुनी है कि एक शख़्स ने बाज़ार से नमक और रूई मोल ली। नमक ख़च्चर पर लादा और रूई गधे

टोपियों में लगाते हैं। मतलब यह कि हम ऐसे कहाँ के अमीर हो गये हैं। मूजिब—कारण; शाक़—कठिन;

पर। चलते-चलते राह में एक नदी वाक़ा हुई। नदी थी पायाब। उस शख़्स ने ख़च्चर और गधे दोनों के दोनों को लदा-लदाया पानी में उतार दिया। बीच नदी में पहुँचकर ख़च्चर ने ग़ोता लगाया। थोड़ी देर बाद सर उभारा तो गधे ने पूछा—"क्यों यार ख़च्चर! यह तुमने क्या किया?" ख़च्चर ने जवाब दिया कि—"भाई तुम तो बड़े ख़ुशक़िस्मत हो। तुम पर लदी है रूई। इसका बोझ है हलका। मुझ कमबख़्त पर है नमक। बोझ के मारे मेरी कमर कटकर लोहू-लुहान हो गई है। यह हमारा मालिक ऐसा बेरहम है कि उसको मुतलक़ हमारी तकलीफ़ का ख़याल नहीं। अनाप-शनाप जितना चाहता है लाद देता है। मैंने समझा कि मंज़िल तक पहुँचते-पहुँचते कमर नदारद है। आओ ग़ोता लगाओ, नमक पानी में भीगकर कुछ तो धुल जायगा। जिस क़दर हल्के हुए ग़नीमत है। मालिक बहुत करेगा छह-सात डण्डे और मारेगा सो यों भी राह-भर डण्डे खाता आता हूँ। देखो अब मेरा बोझ आधा रह गया है। गधे बेवक़ूफ़ ने भी ख़च्चर की रीस करके ग़ोता लगाया। रुई भीजकर और वज़नी हो गई। सर उभारा तो हिला न जाता था। ख़च्चर हँसा और कहा—'क्यों भाई गधे क्या हाल है?' गधे ने कहा—'यार मैं तो मरा जाता हूँ।' ख़च्चर ने कहा—'अबे अहमक़! तू ने मेरी रीस तो की लेकिन इतना तो समझ लेता तेरी पीठ पर रूई है नमक नहीं है।' अम्माँजान! ऐसा न हो लोगों की रीस

वाक़ा होना—सामने आई। **पायाब**—जिसे पाँव से चलकर पार कर सकें; **ग़नीमत**—संतोष की बात; **रीस**—ईर्ष्या।

करने से मेरा हाल उस गधे का सा हो।"

सास ने कहा कि—"भाई तुम तो किसी से क़ायल होने वाले नहीं और न मैं तुम्हारी तरह मंतिक़ पढ़ी हूँ। मैं तो सीधी बात यह समझती हूँ कि दस रुपया महीना तुम कमाते हो। ख़ुदा का फ़ज़्ल है। सस्ता समा है, बाल नहीं, बच्चे नहीं। अल्लाह रखे दो मियाँ-बीबी ख़ासी तरह गोश्त-रोटी खाओ, नैनसुख-तंज़ेब पहनो। आयंदा का फ़िक्र तुम्हारी तरह किया करें तो दुनिया का कारख़ाना बन्द हो जाय। नौकरी तो नौकरी ज़िन्दगी का ऐतबार नहीं। जै दिन जीना है हँसी-ख़ुशी से तीर कर देने चाहिए।"

मुहम्मद आ़क़िल ने कहा—"यही तो मैं सोचता हूँ—ख़ुशी अलग होकर रहने में है या साथ में।"

सास ने कहा—"दलील और हुज्जत से क्या मतलब। सीधी बात यही क्यों नहीं कहते कि मुझको माँ से अलग होना मंज़ूर नहीं। एक बात तुमसे बीबी ने कही उसके क़बूल करने में तुमको इस बाला का ताम्मुल है और फिर कहते हो कि हम इनकी ख़ातिरदारी में कमी नहीं करते। आराम और ख़ुशी क्या चीज़ है। जिसमें बीबी ख़ुश हो और जिसको वो आराम समझे।"

इसके बाद बातों में रंजिश तरावश करने लगी। मुहम्मत आ़क़िल ने सुकूत इख़्तियार किया। रात भी ज़्यादा गई थी। मुहम्मद आ़क़िल ने सास से कहा—"अब आप

क़ायल—मानने वाले; **मंतिक़**—तर्कशास्त्र; **सस्ता समा**—अनाज सस्ता है; **रंजिश**—रंजीदगी; **तरावश**—टपकना; **सुकूत**—ख़ामोशी।

आराम कीजिए मैं इस मज़मून को फिर सोचूँगा।" ये लोग तो सो रहे। मुहम्मद आ़क़िल रात-भर इसी ख़याल की उधेड़-बुन में रहा। सुबह को उठा तो देखा असग़री झाड़ू दे रही है। उसको देखकर असग़री ने सलाम किया और कहा—"भाई साहब ! वज़ू के वास्ते गरम पानी मौजूद है।"

मुहम्मद आ़क़िल ने कहा—"नहीं भाई ! मस्जिद में जमात के साथ नमाज़ पढ़ेंगे।"

असग़री ने कहा—"भाई साहब चले न जाइयेगा। आपके वास्ते चाय बनाई है। लेकिन सादी पीजिएगा या दूध की।"

मुहम्मद आ़क़िल ने कहा—"जैसी मिल जाय।"

असग़री बोली—"आपकी आवाज़ कुछ भारी-भारी लगती है। शायद नज़ले की तहरीक है तो दूध ज़रर करेगा।"

मुहम्मद आ़क़िल ने कहा—"नहीं नज़ले की तहरीक तो नहीं। रात को अम्माजान के साथ बहुत देर तक बातें करता रहा। बदख़्वाबी अलबत्ता है।"

मुहम्मद आ़क़िल नमाज़ पढ़कर वापस आया तो सास को देखा नमाज़ से फ़ारिग़ होकर पान खा रही हैं। सलाम करके बैठ गया। असग़री ने सीनी लाकर सामने रख दी। चाय-दान में गरमागरम चाय, दो प्यालियाँ, दो चमचे, एक तश्तरी में क़ंद। मुहम्मद आ़क़िल ने चाय पी। ख़ुशज़ायक़ा ख़ुशरंग,

---

उधेड़-बुन—यानी बुनता था और उधेड़ता था, कभी सोचता था कि यों करूँ फिर ख़याल आता था कि नहीं; **नज़ला**—ज़ुकाम; **तहरीक**—शिकायत; **ज़रर**—नुक़सान; **बदख़्वाबी**—अधूरी नींद; **अलबत्ता**—अवश्य; **सीनी**—एक प्रकार की थाली; **ख़ुशज़ायक़ा**—स्वादिष्ट, मज़ेदार।

बू-बास दुरुस्त। पीकर जी बाग़-बाग़ हो गया। अकबरी हस्बे-आदत पड़ी सोती थी। मुहम्मद आक़िल ने कहा—"अम्माँजान इनको भी नमाज़ की ताकीद कीजिए।"

सास ने कहा—"बेटा यह अपनी नानी की बहुत चहेती है। उनकी मुहब्बत ने इनकी ख़सलत, इनकी आदत सब ख़राब कर दी है। जब यह छोटी थी और मैं किसी बात पर घुड़क बैठती तो कई-कई दिन तक मुझसे बोलना छोड़ देती थी। और यह तो क्या मजाल थी कि अकबरी को कोई हाथ लगा दे। अकबरी बात-बात पर ज़िद करती, चीज़ों को तोड़ती फोड़ती। इनके डर के मारे कोई कुछ नहीं कह सकता था। इसी बात पर अकबरी के बाप से रोज़ बिगाड़ रहता था।"

अब मुहम्मद आक़िल रुख़सत होने लगा। चलते-चलते सासने कहा—"बेटा रात की बात याद रखना और ज़रूर उसका कुछ बन्दोबस्त करना।"

बाग़-बाग़ होना—खुश होना; **चहेती**—प्यारी; **ख़सलत**—आदत।

बाब पाँचवाँ

माँ से मुहम्मद आ़क़िल के अलग होने की सलाह

राह में मुहम्मद आ़क़िल इन्हीं बातों को सोचता आया। घर में पहुँचा तो माँ ने देखा कि उसके चेहरे पर फ़िक्र मालूम होता है। समझा जरूर आज सुसराल में लड़ा। पूछा—"मुहम्मद आ़क़िल, आख़िर मेरे कहने पर अ़मल नहीं किया।"

मुहम्मद आ़क़िल—"अम्माँ! सच कहता हूँ लड़ाई-भिड़ाई कुछ भी नहीं हुई।"

माँ—"फिर सुस्त क्यों है।"

मुहम्मद आ़क़िल—"कुछ भी नहीं। सोता उठकर आया हूँ इस सबब से शायद आपको मेरा चेहरा उदास मालूम होता होगा।"

माँ—"लड़के होश में आ। क्या तुझको सोता उठकर कभी थोड़ा ही देखा है! सच बता क्या बात है?"

मुहम्मद आ़क़िल ने आख़िर मजबूर होकर रात का तमाम क़िस्सा माँ के रूबरू बयान किया। सुनते के साथ ही माँ को काटो तो बदन में लोहू नहीं था। लेकिन औ़रत थी बड़ी दानिशमन्द। कहने लगी कि हरचन्द मेरी तमन्ना यह

लोहू—डर के मारे ख़ून सूख गया। तमन्ना—कामना।

थी कि जब तक मेरे दम में दम है तुम सबको अपने कलेजे से लगाये रहूँ और तुम दोनों भाई इत्तिफ़ाक़ से रहो। लेकिन मैं देखती हूँ तो सामान उल्टे ही उल्टे नज़र आते हैं। लो आज मैं तुमसे कहती हूँ कि ब्याह के दूसरे महीने से मिज़ाजदार बहू का इरादा अलग घर करने का है। जो दस रुपये महीने के महीने लाकर मुझको देते हो उनको निहायत नागवार होता है। आये दिन मैं तुम्हारी बीबी की सहेलियों से सुनती रहती हूँ कि बहू बल्लीमारों के मुहल्ले में मकान लेंगी। ज़ुल्फ़न को साथ ले जायँगी। जब तक ये सब लड़कियाँ बैठी रहती हैं यही मशविरा, यही मज़कूर आपस में रहा करता है। मैंने तुम्हारी ख़लिया सास के मुँह पर एक मर्तबा यह बात भी रख दी थी कि मिज़ाजदार बहू को अगर हमारे साथ रहना नागवार है तो अपना खाना-कपड़ा अलग कर लें। मगर रहें इसी घर में। फिर तुम्हारी ख़लिया सास से मालूम हुआ कि मिज़ाजदार बहू को यह भी मंज़ूर नहीं। आदमी ब्याह ख़ुशी और आसाइश के वास्ते करता है। रोज़ की लड़ाई, आये दिन का झगड़ा निहायत बुरी बात है। अगर तुम्हारी बीबी को यही मंज़ूर है, अलग रहने से उनकी ख़ुशी है तो बिस्मिल्लाह हमको उज़्र नहीं। जहाँ रहो ख़ुश रहो आबाद रहो। ख़ुदा ने एक मामता औलाद की हमारे पीछे लगा दी है सो कभी तुम इधर को आ निकले, एक नज़र देख लिया, सब्र आ गया। घर के काम-धन्धे से कभी छुटकारा मिला, मैं आप चली गई तुमको देख आई।"

इत्तिफ़ाक़—मेल-जोल; **बिस्मिल्लाह**—भगवान् के नाम से।

यह कहना था कि मुहम्मद आ़क़िल का जी भर आया और बेइख़्तियार रोना शुरू किया और समझा कि आज माँ से जुदाई होती है। माँ भी रोई। थोड़ी देर बाद मुहम्मद आ़क़िल ने कहा—"मैं तो अलग नहीं रहूँगा, बीबी रहे या जाय।"

माँ ने कहा–"अरे बेटा! यह भी कहीं होती है। अशराफ़ों में कहीं बोबियाँ भी छूटती हैं। तुमको अपनी उम्र इन ही के साथ काटनी है। हमारा क्या है कब्र में पाँव लटकाये बैठे हैं। आज मरे कल दूसरा दिन। मेरी सलाह मानो, जो वो कहें सो करो। हमने जिस दिन से तुम्हारा ब्याह किया उसी दिन से तुमको अलग समझा। न तुम अनोखे बेटे न मैं अनोखी माँ। कौन बेटा सारी उम्र माँ के साथ रहा है?"

मुहम्मद आ़क़िल ने अपने दोस्तों से भी सलाह पूछी। सबने यही कहा कि रफ़ा फ़साद बेहतर है। और साथ रहने पर क्या मुनहसिर है। माँ से अलग रहो और उनकी ख़िदमत ओ अताअ़त करो। जब सब लोगों ने यही सलाह दी मुहम्मद आ़क़िल ने भी कहा—"ख़ैर अलग रहकर भी देख लो—अगर यह औ़रत सँभल जाय और घर को घर समझे। बदमिज़ाजी नाफ़रमानी, बदज़बानी छोड़ दे तो अलग रहना ऐब नहीं, गुनाह नहीं। यही न कि ख़ानादारी का फ़िक्र करना पड़ेगा और तंगी से गुज़रेगी। सो दुनिया में रहकर फ़िक्र से किसी हालत में नजात नहीं। अब कुछ फ़िक्र नहीं तो यह हर रोज़

रफ़ा फ़साद—झगड़े का दूर करना; **मुनहसिर**—अवलम्बित; **ख़िदमत ओ अताअ़त**—सेवा और आज्ञापालन; **नाफ़रमानी**—बात न मानना।

का फ़साद बजाये-ख़ुद एक अज़ाब है। और तंगिये-रिज़्क का अंदेशा है भी बेजा। जो मुक़द्दर में है बहरहाल पहुँचेगा। आदमी की सअी ओ तदबीर को इसमें क्या दख़ल? यह सोच-कर मुहम्मद आक़िल ने अलग हो जाने का इरादा मुसम्मम कर लिया। इत्तिफ़ाक़ से उसी के मकान से मुत्तसिल एक मकान भी ख़ाली था। एक रुपया माहवारी किराये पर ठहरा लिया। बल्कि सरकुफ़्ली देकर सरख़त भी लिख दिया। कुंजी ले ली और सुसराल कहला भेजा कि मकान क़रार पा गया है। अब आओ तो नये मकान में उठ चलें और अपनी माँ से भी कह दिया कि यही तारकश वाला मकान ले लिया है। माँ ने जितना असबाब मिज़ाजदार बहू का था, कपड़ों के सन्दूक़, बरतन, फ़र्श, मशहरी, पलंग सब अलहदा कोठरी में रखवाया। शाम को मिज़ाजदार बहू भी आ पहुँचीं। सुबह उठ माँ ने कोठरी खोल मुहम्मद आक़िल से कहा, "लो भाई! अपनी चीज़ें। दोनों मियाँ-बीबी ख़ूब देख-भाल लो।"

मुहम्मद आक़िल ने कहा—"अम्माँ तुम क्या कहती हो? क्या कोई ग़ैर जगह थी।"

माँ ने कहा—"बेटा! यह बात नहीं। ऐसा न हो उठाने-

बजाये-ख़ुद—अपने आप में; **अज़ाब**—संकट, पीड़ा; **तंगिये-रिज़्क**—आजीविका की तंगी या कमी; **मुक़द्दर**—भाग्य; **बहर हाल**—हर हाल में; **सअी ओ तदबीर**—कोशिश और साधन; **मुसम्मम**—पक्का; **मुत्तसिल**—लगा हुआ; **सरकुफ़्ली**—किरायेदार जो थोड़ा सा किराया मालिक मकान को पेशगी दे उसे सरकुफ़्ली कहते हैं। **सरख़त**—किरायानामा, भाड़े की चिट्ठी; **क़रार पाना**—पक्का होना।

बिठाने में कोई चीज़ इधर-उधर हो जाय।" और मामा से कहा कि—"अज़मत तुम और हमसाई यह सब असबाब तारकश वाले घर में पहुँचा दो। अकबरी की सहेलियाँ चुनिया, रहमत, जुलफ़न, सलमती आ पहुँचीं और बात की बात में सारा असबाब उठाकर इधर से उधर ले गईं।

बाब छठा

अकबरी का अलग घर और उसकी बदइन्तज़ामी

मिज़ाजदार बहू हँसी-खुशी नये घर में आकर बसी। तीन दिन तक दोनों वक़्त मुहम्मद आ़क़िल की माँ ने खाना भेजा। चौथे दिन मुहम्मद आ़क़िल ने बीबी से कहा—"लो साहब! अब कुछ खाने का बंदोबस्त शुरू हो।" मिज़ाजदार ने कहा—"सब असबाब अभी बेठिकाने पड़ा है, यह रखा जाय तो फ़राग़त से हँडिया-चूल्हे को देखूँ। अभी तो मुझको फ़ुरसत नहीं।" ग़र्ज सात रोज़ तक तनूर पर रोटी पकती रही। रात को कबाब और दिन को कभी मलाई और कभी दही बाज़ार से मँगवाते और दोनों मियाँ-बीबी रोटी खा लेते। आख़िर मुहम्मद आ़क़िल ने रोज़ कह-कहकर मिज़ाजदार से खाना पकवाया। मिज़ाजदार ने कभी खाना पकाया न था। रोटी पकाई तो अ़जीब सूरत की। न गोल न चौखूँटी। एक कान इधर निकला हुआ और चार कान उधर। किनारे मोटे बीच में टिकिया। कहीं जली कहीं कच्ची। धूएँ में काली। और दाल जो पकाई तो पानी अलग दाल अलग। ग़र्ज़ मिज़ाजदार ऐसा लज़ीज़ और लतीफ़ खाना पकाती थी कि जिसको देख-

---

तनूर—तंदूर; लज़ीज़—लज़्ज़तदार, स्वादिष्ट; लतीफ़—बढ़िया।

कर भूख भाग जाय। सालन पकाती बदरंग बदमज़ा। नमक डाला तो ज़हर और कभी फीका पानी। दो-एक दिन तो मुहम्मद आ़क़िल ने सब्र किया। आख़िरकार उसने तो अपनी माँ के घर खाना शुरू कर दिया। मिज़ाजदार ने भी अपने आराम का ठिकाना कर लिया। दोनों वक़्त बाज़ार से कचौरियाँ और मलाई, कंद, खोया, रबड़ी, कबाब मँगवाकर खा लिया करती। खाना जो पकता ज़ुल्फ़न वगैरह खा-खाकर मोटी हुईं। उन बिल्लियों के भागों छींका टूटा। लेकिन दस रुपये महीने में यह चखोतियाँ क्योंकर हो सकती हैं। चुपके-चुपके असबाब बिकने लगा। मगर मुहम्मद आ़क़िल को असा उसकी ख़बर न थी।

एक रोज़ मुहम्मद आ़क़िल तो नौकरी पर गया था। मिज़ाजदार दोपहर को सो गई, चुनिया जो आई उसने देखा बहू बेख़बर सो रही हैं। उसने अपने भाई मीरन को जा ख़बर दी। वो बड़ा शातिर बदमाश था। मिज़ाजदार तो सोती की सोती रहीं। मीरन आके दिन-दहाड़े तमाम बरतन चुराकर ले गया। मिज़ाजदार उठकर जो देखें तो घर में झाड़ू दी हुई है। कोठरी को कुफ़्ल लगा हुआ था। उसका असबाब तो बचा बाक़ी जो चीज़ ऊपर थी एक-एक करके सब ले गया। अब पानी पीने तक को कटोरा न रहा। मुहम्मद

छींका टूटा—कभी ऐसा होता है कि छींके पर रखा हुआ सामान छींके के टूट जाने से नीचे गिर पड़ता है तो बिना मेहनत के बिल्ली को खाना मिल जाता है। इसी तरह अकबरी की सहेलियों की क़िस्मत से ही ऐसा हुआ; **असला**—हरगिज़; **शातिर**—चालाक।

आ़क़िल नौकरी पर से आया तो सुनकर बहुत मग़मूम हुआ। लेकिन अब पछताये होत क्या जब चिड़ियाँ* चुग गईं खेत। बीबी से लड़ा और ख़ूब अपना सिर पीटा। आख़िर रो-धोकर बैठ रहा। क़र्ज़ दाम करके हल्की-हल्की दो पतीलियाँ मोल लाया। छोटे-छोटे बरतन माँ से माँग लिये। लगन, तवा, रकाबी सास ने भेज दिये। ग़र्ज़ किसी तरह काम चल निकला।

मग़मूम—ग़मगीन; *पूरबी जबान की कहावत है यानी जब चिड़ियाँ खेत चुग गईं तो अब पछताने और अफ़सोस करने से क्या होता है; पहले से बंदोबस्त करना था कि चिड़ियाँ खेत चुग न पातीं।

बाब सातवाँ

एक कुटनी का अकबरी को ठगना

इत्तिफ़ाक से उन दिनों एक कुटनी शहर में वारिद थी और हर जगह उसका गुल था। मुहम्मद आक़िल ने भी बीबी से कह दिया था कि किसी अजनबी औरत को घर में मत आने देना। इन दिनों एक कुटनी आई हुई है। कई घरों को लूट चुकी है। लेकिन मिज़ाजदार शिद्दत से बेवक़ूफ़ थीं। उसकी आदत थी हरएक से जल्द मिल जाना। एक दिन वो ही कुटनी हज्जन का भेस बना उस गली में आई। यह मक्कारा हज्जन बेवक़ूफ़ औरतों के फुसलाने के लिए तरह-तरह के तबर्रुकात और सदहा क़िस्म की चीज़ें अपने पास रखा करती थी। तसबीह, ख़ाके-शिफा, ज़मज़मियाँ, मदीना मुनव्वरा की खजूरें

कुटनी—वह औरत जो दूसरी औरतों को बहकाये; **वारिद**—कहीं से आकर ठहरी थी; **अजनबी**—अनजान; **शिद्दत**—बहुत ज़्यादा; **हज्जन**—जो हज करके आई हो; **मक्कारा**—धूर्त; **तबर्रुकात**—वे चीज़ें जिनको पुण्य और शुभ समझकर लोग अपने पास रखें; **तसबीह**—माला, सुमरनी; **ख़ाके-शिफा**–कर्बला की ज़मीन की मिट्टी को ख़ाके-शिफा कहते हैं। बाज़ मुसलमानों का विश्वास है कि वह मिट्टी अगर बीमार चाट ले तो चंगा हो जाय; **ज़मज़मियाँ**—मोम की डिबिया जिसमें ज़मज़म का पानी होता है। ज़मज़म मक्का के मशहूर कुँए का नाम है; **मुनव्वरा**—पग़म्बर

कोहे-तूर का सुरमा, ख़ानये-काबा के ग़िलाफ़ का टुकड़ा अक़ीक़ उलबहर, और मूँगे के दाने और नादे-अली, पंजसूरे और बहुत-सी दुआएँ। गली में आकर जो उसने अपनी दुकान खोली बहुत सी लड़कियाँ जमा हो गईं। मिज़ाजदार ने भी सुना। ज़ुल्फ़न से कहा—"गली से उठने लगे तो हज्जन को यहाँ बुला लाना, हम भी तबर्रुकात की ज़ियारत करेंगे।" ज़ुल्फ़न जा खड़ी हुई और हज्जन को बुला लाई। मिज़ाजदार ने बहुत ख़ातिरदारी से हज्जन को पास बिठाया और सब चीज़ें देखीं। सुरमा और नादे-अली दो चीजें मिज़ाजदार ने पसन्द कीं। हज्जन ने मिज़ाजदार को बातों में ताड़ लिया कि यह औरत जल्द ढबपर चढ़ जायगी। एक पैसे का बहुत सा सुरमा तोल दिया और दो आने को नादे-अली हवाले की और फ़ीरोज़े की एक अँगूठी तबर्रुक के तौर पर अपने पास से मुफ़्त दी। मिज़ाजदार रीझ गईं। इसके बाद हज्जन ने समन्दर का हाल,

---

साहब मक्के से निकलकर मदीने गये थे। मुसलमान अदब से मदीने को मदीना मुनव्वरा कहते हैं। मुनव्वरा का शाब्दिक अर्थ है रोशन, प्रकाशमान; **कोहे-तूर**—कोह पहाड़ को कहते हैं, तूर नाम का एक पहाड़ है जिस पर हज़रत मूसा को पैग़म्बरी मिली थी; **अक़ीक़ उलबहर**—मूँगे की तरह का होता है मगर स्याह रंग; **नादे-अली**—एक मन्त्र जो प्राय: ज़हर मोहरे या चाँदी के पत्र पर खोदकर बच्चों के गले में उन्हें भय और रोग आदि से बचाने के लिए पहनाते हैं। इसे नादली भी कहते हैं; **ज़ियारत**—किसी बड़ी चीज़ को देखना या बुज़ुर्ग हस्ती से मिलने को ज़ियारत करना कहते हैं; **ताड़ लेना**—पहचान लेना, भाँप लेना; **ढब पर चढ़ना**—क़ाबू में आ जायगी; **फ़ीरोज़ा**—एक प्रकार का नीलम; **रीझना**—प्रसन्न होना।

अरब की कैफ़ियत और दिल से जोड़कर दो-चार बातें ऐसी कीं कि मिज़ाजदार ने कमाल शौक़ से सुना और उसकी तरफ़ एक ख़ास इल्तिफ़ात किया। हज्जन ने पूछा—"क्यों बी तुम्हारे कोई बाल-बच्चा नहीं ?"

मिज़ाजदार ने आह खींचकर कहा—"हमारी ऐसी तक़दीर कहाँ थी ?"

हज्जन ने पूछा—"ब्याह को कितने दिन हुए ?"

मिज़ाजदार ने कहा—"अभी बरस रोज़ नहीं हुआ।"

मिज़ाजदार की बेअक़्ली का अब तो हज्जन को यक़ीन हुआ और दिल में कहने लगी कि इसने तो औलाद का नाम सुनकर ऐसी आह खींची जैसे बरसों का उम्मीदवार। हज्जन ने कहा—"नाउम्मीदी की बात नहीं। तुम्हारे तो इतने बच्चे होंगे कि तुम सँभाल भी न सकोगी। अलबत्ता बिलफ़ैल अकेले घर में जी घबराता होगा। मियाँ का क्या हाल है ?"

मिज़ाजदार ने कहा—"हमेशा मुझसे नाख़ुश रहा करते हैं।"

ग़र्ज़ पहली ही मुलाक़ात में मिज़ाजदार ने हज्जन के साथ ऐसी बेतकल्लुफ़ी की कि अपना हाल जुज़ ओ कुल उससे कह दिया और हज्जन ने बातों-ही-बातों में तमाम भेद मालूम कर लिया। एक पहर कामिल हज्जन बैठी रही। रुख़सत होने लगी तो मिज़ाजदार ने बहुत मिन्नत की "अच्छी बी हज्जन अब कब आओगी ?"

कैफ़ियत—वर्णन; **इल्तिफ़ात**—ध्यान; **बिल फ़ैल**—इस समय; **जुज़ ओ कुल**—अंश और सम्पूर्ण; **कामिल**—पूरा।

हुज्जन ने कहा—"मेरी भानजी मोमगरों के छत्ते में रहती है और बहुत बीमार है उसी के इलाज के वास्ते मैं आगरे से आई हूँ। उसके दवा-मुआलिजे से फ़ुरसत कम होती है। मगर इंशा अल्ला दूसरे-तीसरे दिन तुम को देख जाया करूँगी।"

अगले दिन हुज्जन फिर आ मौजूद हुई और एक रेशमी इज़ारबंद लेती आई। मिज़ाजदार दूर से हुज्जन को आते देख ख़ुश हो गई और पूछा—"यह इज़ारबंद कैसा है?"

हुज्ज़न ने कहा—"बिकाऊ है।"

मिज़ाजदार ने पूछा—"कितने का है।"

हुज्जन ने कहा—"चार आने का। मुहल्ले में एक बेगम रहती हैं। अब ग़रीब हो गई हैं। असबाब बेच-बेचकर गुज़र करती हैं। मैं उनकी अक्सर चीज़ें बेच ला दिया करती हूँ।"

मिज़ाजदार इतना सस्ता इज़ारबंद देखकर लोट हो गई फ़ौरन पैसे निकाल हुज्जन के हाथ दिए और बहुत गिड़-गिड़ाकर हुज्जन से कहा—"अच्छी बी! जो चीज़ बिकाऊ हुआ करे पहले मुझको दिखा दिया करो।"

हुज्जन ने कहा—"बहुत अच्छा पहले तुम पीछे और।" इसके बाद इधर-उधर की बातें हुईं। चलते हुए हुज्जन ने एक बटुवा निकाला। उसमें कपड़े और काग़ज़ की तहों में थोड़ी लोंगें थीं। उनमें से दो लौंगें हुज्जन ने मिज़ाजदार को दीं और कहा कि—"दुनिया में मुलाक़ात और मुहब्बत इसी

मुआलिजा—इलाज; **इंशा अल्ला**—ईश्वर ने चाहा तो; **इज़ारबंद**—पाजामे वग़ैरह में डालने का नाड़ा; **लोट होना**—रीझ जाना।

वास्ते हुआ करती है कि एक-से-दूसरे को फ़ायदा हो। यह दो लौंगें मैं तुमको देती हूँ। एक तो तुम अपनी चोटी में बाँध लो, दूसरी बेहतर था कि तुम्हारी मियाँ की पगड़ी में रहती। मगर तुम्हारे मियाँ शायद शुबहा करें। ख़ैर तकिये में सी दो और इनका असर आज ही से देख लेना। लेकिन इतनी एह॰तियात करना कि पाक-साफ़ जगह में रहें। और अपने क़द के बराबर एक कुलावा मुझको नाप दो, मैं तुम को एक गंडा बनवा ला दूँगी। मैं जब हज को गई थी तो उसी जहाज़ में भोपाल की एक बेगम भी सवार थीं। शायद तुमने उनका नाम भी सुना हो बिलक़ैस जहानीबेगम। सब-कुछ ख़ुदा ने उनको दे रखा है। दौलत की कुछ इन्तिहा न थी। नौकर-चाकर, लौंडी-ग़ुलाम, पालकी-वालकी सभी-कुछ था। एक तो औलाद की तरफ़ से रंजीदा रहा करती थीं, कोई बच्चा न था। दूसरे, नवाबसाहब को उनकी तरफ़ मुतलक़ इल्तिफ़ात न था और शायद औलाद न होने के सबब मुहब्बत न करते हों। वरना बेग़म सूरत-शकल में चन्दे आफ़ताब चन्दे माहताब* और इस हुस्न और दौलत पर मिज़ाज ऐसा सादा कि हम जैसे नाचीज़ों को बराबर बिठाना और पूछना। बेगम को फ़क़ीरों से परले दर्जे का ऐतकाद था। एक दफ़े सुना कि तीन कोस पर कोई कामिल वारिद है। अँधेरी रात में घर

कुलावा—लाल सूत; **गंडा**—कुछ मन्त्र पढ़-पढ़ाकर सूत में गाँठें लगा देते हैं इसी को गंडा कहते हैं। **इन्तिहा**—सीमा; *कुछ-कुछ सूरज की तरह चमकती हुई कुछ-कुछ चाँद की तरह; **ऐतक़ाद**—श्रद्धा; **कामिल**—पहुँचा हुआ, अपने फ़न का पूरा।

से प्यादा-पा उनके पास गईं और पहर-भर तक हाथ बाँधे खड़ी रहीं। फ़क़ीरों के नाम पर क़ुर्बान जाय। एक मर्तबा जो शाह साहब ने आँख उठाकर देखा, फ़रमाया कि—जा माई रात को हुक्म मिलेगा। बेगम को ख़्वाब में बशारत हुई कि हज को जा और मुराद का मोती समंदर से निकाल ला। सुबह उठ हज की तैयारियाँ होने लगीं। पाँच सौ मिस्कीन बेगम ने आप किराया देकर सवार कराये। उनमें से एक मैं भी थी। हर वक़्त पास का रहना। बेगम साहब (इलाही दोनों जहान में सुर्ख़रू) मुझपर बहुत मेहरबानी करने लगीं और सहेली कहा करती थीं। दस दिन तक बराबर जहाज़ पानी में चला, ग्यारहवें दिन बीच समन्दर में एक पहाड़ नज़र आया। कोहे-हबशा यही है और एक बड़ा कामिल फ़क़ीर इस पर रहता है। जो गया बामुराद आया। बेगम साहब ने नाख़ुदा से कहा किसी तरह मुझको इस पहाड़ पर पहुँचाओ। नाख़ुदा ने कहा—हुज़ूर जहाज़ तो पहाड़ तक नहीं पहुँच सकता। अलबत्ता अगर आप इरशाद करें तो जहाज़ को लंगर कर दें और आपको एक किश्ती में बिठाकर ले चलें। बेगम ने कहा ख़ैर यही सही। पाँच औरतें बेगम के साथ कोहे-हबशा पर गई थीं। एक मैं और चार और। पहाड़ पर पहुँचे तो अजीब तरह की ख़ुशबू महक रही थी।

प्यादा-पा—पैदल; **बशारत**—ख़ुशख़बरी; **मिस्कीन**—ग़रीब, मोहताज; **सुर्ख़रू**—कीर्तिवान; **नाख़ुदा**—जहाज के मल्लाहों का सरदार; **कोहे-हबशा**—हबशे का पहाड़; **बामुराद**—मुराद लेकर; **इरशाद करें**—हुक्म दें; **लंगर कर दें**—ठहरा दें; **किश्ती**—नाव।

चलते-चलते शाह साहब तक पहुँचे। हूका मुक़ाम था न आदमी न आदमज़ाद। तनतनहा शाह साहब एक ग़ार में रहते थे। कैसी नूरानी शक्ल जैसे फ़रिश्ता। हम सबको देखकर दुआ दी। बेग़म को बारह लौंगें दीं और कुछ पढ़कर दम कर दिया। मुझसे कहा—'चली जा, आगरा और दिल्ली में लोगों के काम बनाया कर।' बेटी उन बारह लौंगों में की दो लौंगें ये हैं। हम-सब हज करके जो लौटे तो नवाब साहब या तो बेगम की बात न पूछते थे या यह नौबत हुई कि एक महीने आगे बंबई में आकर बेगम के लेने को पड़े थे। जूँही बेगम ने जहाज़ से अपना पाँव उतारा, नवाब साहब ने अपना सर बेगम के क़दमों पर रख दिया और रो रोकर ख़ता माफ़ कराई। छह बरस मैं भोपाल में हज से आकर ठहरी। फ़क़ीर की दुआ की बरकत से लगातार ऊपर-तले, अल्लाह रखे, चार बेटे बेगम के मेरे रहते हो चुके थे। फिर मुझको अपना देस याद आया। बेगम से इजाज़त माँगी, बहुत रोका। मैंने कहा—"शाह साहब ने मुझको दिल्ली-आगरा की ख़िदमत सुपुर्द की है। मुझको वहाँ जाना ज़रूर है। यह सुनकर बेगम ने चार-ओ नाचार मुझको रुख़सत किया।"

दो लौंगें उसके साथ दो वर्क़ हिकायते-दिलचस्प। मिज़ाज-

हूका मुक़ाम—सन्नाटे की जगह थी कि ख़ुदा के सिवाय वहाँ कोई और न था। **तन-तनहा**–अकेले; **गार**—गढ़ा या पहाड़ की खोह; **नूरानी**–प्रकाश; **ऊपर-तले**– लगातार, एक के बाद एक, बराबर; **रखे**–भगवान उनकी रक्षा करे; **चार-ओ-नाचार**—विवश होकर; **वर्क़**—पृष्ठ; **हिकायते-दिल-चस्प**—दिल को पसन्द आने वाली बातें।

दार दिल-ओ-जान से मौतक़िद हो गई। हज्जन दो लौंगें देकर रुख़सत हुई। मिज़ाजदार बहू ने ग़ुसलकर, कपड़े बदल, ख़ुशबू लगा, एक लौंग बिस्मिल्ला करके अपनी चोटी में बाँधी और मियाँ के पलंग की चादर और तकियों के गिलाफ़ बदल एक लौंग किसी तकिये में रख दी। मुहम्मद आक़िल जो घर आया बीबी को देखा साफ़-सुथरी, पलंग की चादर बे कहे बदली हुई। ख़ुश हुआ और इल्तिफ़ात के साथ बातें करने लगा।

मिज़ाजदार ने कहा—"देखो हमने आज एक चीज़ मोल ली है।" यह कहकर इज़ारबन्द दिखाया। मुहम्मद आक़िल ने कहा—"कितने को लिया है?"

मिज़ाजदार ने कहा—"तुम तो आँको कितने का है।" वो इज़ारबंद ख़ास लाहौर का बना हुआ निहायत उम्दा था। चौड़ा चकला, कलाबत्तू की लच्छेदार हड़ें। मुहम्मद आक़िल ने कहा—"दो रुपये से किसी तरह कम नहीं।"

मिज़ाजदार—"चार आने को लिया है।"

मुहम्मद आक़िल—"सच कहो।"

मिज़ाजदार—"तुम्हारे सर की क़सम चार ही आने को लिया है।"

मुहम्मद आक़िल—"बहुत सस्ता है, कहाँ से मिल गया?"

मौतक़िद—ऐतक़ाद रखने वाली, श्रद्धालु; **इल्तिफ़ात**—प्रेम, मुहब्बत; **आँकना**—अन्दाज़ लगाना। **हड़**—इज़ारबंद के दोनों सिरों पर जो रेशम को गूँथ देते हैं उनको हड़ें कहते हैं क्योंकि उनकी शक्ल हड़ों की-सी होती है।

मिज़ाजदार—"एक हज्जन बड़ी नेकबख़्त है। बहुत दिनों से गली में आया करती है। किसी बेगम का है, बेचने को लाई थी।"

यह कहकर सुरमा, नादे-अली, फ़ीरोज़े की अँगूठी भी मिज़ाजदार ने दिखाई। तमा ऐसी बुरी चीज़ है कि बड़ा सयाना आदमी भी इससे धोका खा जाता है। जंगली जानवर, मैना, तोता, लाल, बुलबुल आदमी की शक्ल से भागते हैं, लेकिन दाने की तमा से जाल में फँस जाते और ज़िन्दगी भर क़फ़स में क़ैद रहते हैं। इसी तरह मुहम्मद आक़िल अपना फ़ायदा देखकर ख़ुश हुआ और जब मिज़ाजदार ने कहा कि—"वो हज्जन बेगम का तमाम असबाब जो बिकने को निकलेगा मेरे पास लाने का वादा कर गई है।" मुहम्मद आक़िल ने कहा—"ज़रूर देखना चाहिए। लेकिन ऐसा न हो चोरी का माल हो, पीछे कुछ ख़राबी पड़े, और हाँ हज्जन कोई ठगनी न हो।"

मिज़ाजदार ने कहा—"ख़ुदा ख़ुदा करो! वो हज्जन ऐसी नहीं है।" ग़र्ज़ बात गई-गुज़री हुई।

मुहम्मद आक़िल से जो आज ऐसी बातें हुईं, लौंगों पर मिज़ाजदार का ऐतक़ाद जम गया। अगले दिन ज़ुल्फ़न को भेज हज्जन को बुलवाया और आज मिज़ाजदार बेटी बनी और हज्जन को मां बनाया। रात के वक़्त मुहम्मद आक़िल से फिर हज्जन का ज़िक्र आया। मुहम्मद आक़िल ने कहा—

तमा—लोभ; **क़फ़स**—पिंजरा।

"देखो, होशियार रहना, इस भेस में कुटनियाँ और ठगनियाँ बहुत हुआ करती हैं।" लेकिन तमा ने खुद मुहम्मद आ़क़िल की अक़्ल पर ऐसा पर्दा डाल दिया कि इतनी मोटी बात को न समझा कि दो रुपये का माल चार आने को कोई बे वजह भी देता है। मुहम्मद आ़क़िल को मुनासिब था कि क़तअ़न उस हज्जन के आने को मुमानअ़त करता और सब चीज़ें उसकी फिरवा देता। और मिज़ाजदार को इतनी अ़क़्ल कहाँ थी कि इस तह को समझती। कई दिन के बाद मिज़ाजदार ने हज्जन से पूछा—"क्यों बी, आजकल बेगम की कोई चीज़ नहीं लाईं ?"

हज्जन ने जान लिया कि इसको अच्छी चाट लग गई है। कहा—"तुम्हारे ढब की कोई चीज़ निकले तो लाऊँ।" दो-चार दिन के बाद झूठे मोतियों की एक जोड़ी लाई और कहा-लो बी खुद बेगम के नथ के मोती हैं। नहीं मालूम हज़ार की जोड़ी है या पान सौ की। पन्नामल जौहरी की दुकान पर मैंने दिखाई थी, लट्टू हो गया। दो सौ रुपये ज़बरदस्ती मेरे पल्ले बाँधे देता था। मैं बेगम से पचास रुपये पर लाई हूँ। तुम ले लो फिर ऐसा माल नहीं मिलेगा।"

मिज़ाजदार ने कहा—"पचास रुपये नक़द तो मेरे पास नहीं हैं।"

हज्जन ने कहा—"क्या हुआ बेटी पोंचियाँ बेचकर ले लो, नहीं तो तुम जानो, ये मोती आज बिक जायँगे। हज्जन ने ऐसे ढब से कहा कि मिज़ाजदार फ़ौरन ज़ेवर का सन्दूक़चा

क़तअ़न—बिलकुल; **तह**—भेद, अन्दर की बात; **ढब की**—लायक, काम की; **लट्टू होना**—खुश होकर लट्टू की तरह सर घुमाने लगा।

उठा लाई और हज्जन को पोंचियाँ निकाल हवाले कर दीं। हज्जन ने मिज़ाजदार का ज़ेवर देख लिया—"अय हय, कैसी बेएहतियाती से ज़ेवर मूली गाजर की तरह डाल रखा है। बेटी धगदगी में डोरा डालो, बाली पत्ते, मगर मुरकियाँ, बाज़ूबन्द मैले चिक्कट हो गये हैं। मैल सोने को खाये जाता है। इनको उजलवाओ।"

मिज़ाजदार ने कहा—"कौन डोरा डलवाये और कौन उजलवाकर लाये ? उनसे कहती हूँ तो वो कहते हैं मुझे फ़ुरसत नहीं।"

हज्जन ने कहा—"ओह बेटी ! यह कौन बड़ा काम है ! लो मोती रहने दो। मैं अभी डोरा डलवा दूँ और जो ज़ेवर मैला है निकाल दो मैं अभी उजलवा दूँ।"

मिज़ाजदार ने सब ज़ेवर हवाले किया। हज्जन ने कहा—"ज़ुल्फ़न को भी साथ कर दो सुनार के पास बैठी रहेगी। मैं पटवे से डोरा डलवाऊँगी। मिज़ाजदार ने कहा—"अच्छा।" यह कहकर ज़ुल्फ़न को आवाज़ दी। वह आई तो हज्जन ने कहा—"लड़की ज़रा मेरे साथ चल, सुनार की दुकान पर बैठी रहियो।"

हज्जन ने ज़ेवर लिया, ज़ुल्फ़न साथ हुई। गली से बाहर निकल हज्जन ने रूमाल खोला और ज़ुल्फ़न से कहा—लाओ उजलवाने का अलग कर लें और डोरा डलवाने का अलग।

चिक्कट—मैल पर मैल जम गया हो तो चिक्कट कहते हैं; **उजलवाना**—साफ़ करवाना। **पटवा**—डोरे डालनेवाले को पटवा कहते हैं।

यही बात नहीं है कि रंगीन कपड़े पहने, मेहमान जमा हुए, माल ओ असबाब ओ ज़ेवर पाया। बल्कि ब्याह से नई दुनिया शुरू होती है, नये लोगों से मुआमला करना और नये घर में रहना पड़ता है। जिस तरह पहले-पहल बछड़ों पर जूआ रखा जाता है आदमी के बछड़ों का जूआ ब्याह है। ब्याह हुआ, लड़की बीबी बनी, लड़का मियाँ बना, इसके यही माने हैं कि दोनों को पकड़कर दुनिया की गाड़ी में जोत दिया। अब यह गाड़ी क़ब्र की मंज़िल तक उनको खींचनी पड़ेगी। पस बेहतर यह है कि दिल को मज़बूत करके इस मुहिम का सर अंजाम किया जाय और ज़िन्दगी के दिन जिस क़दर हो इज्ज़त-आबरू, सुलहकारी, इत्तिफ़ाक़ से काट दिये जायँ। वरना लड़ाई-भिड़ाई, झगड़े-बखेड़े, शोर-ओ-फ़साद और हाय-वावेला से दुनिया की मुसीबत और भी ज़्यादा तकलीफ़देह होती है।

अब तुमको अय मेरी प्यारी बेटी असग़री खानम! सोचना चाहिये कि मियाँ-बीबी में ख़ुदा ने कितना फ़र्क़ रखा है। मज़हब की किताबों में लिखा है कि हज़रत आदम बहिश्त में अकेले घबराया करते थे। उनके बहलाने को ख़ुदा ने हज़रत हव्वा को जो सबसे पहली औरत दुनिया में हो गुज़री हैं पैदा किया। पस औरत का पैदा करना सिर्फ़ मर्द की ख़ुशदिली के वास्ते था। और औरत का फ़र्ज़ है मर्द को

मुआमला—लेन देन; **मुहिम**—मुहिम वास्तव में चढ़ाई को कहते हैं, यहाँ कठिन काम से मतलब है; **सर अंजाम**—समाप्ति; **हाय वावेला**—हाय तोबा; **मज़हब**—धर्म।

ख़ुश रखना। अफ़सोस है कि दुनिया में किस क़दर कम औरतें इस फ़र्ज़ को अदा करती हैं। मर्दों का दर्जा ख़ुदा ने औरतों पर ज़्यादा किया न सिर्फ़ हुक्म देनें से बल्कि मर्दों के जिस्म में ज़्यादा क़ुव्वत और उनकी अक़्लों में ज़्यादा रोशनी दी है। दुनिया का बन्दोबस्त मर्दों की ज़ात से होता है। मर्द कमाने वाले और औरतें उनकी कमाई को मौक़ा मुनासिब पर ख़र्च करने वालियाँ और उसकी निगहबान हैं। क़ुन्बा बतौर किश्ती के है और मर्द उसके मल्लाह हैं। अगर मल्लाह न हो तो किश्ती पानी की मौजों में डूब जायगी, या किसी किनारे पर टक्कर खाकर फट पड़ेगी। क़ुन्बे में अगर मर्द मुन्तज़िम नहीं तो इसमें हरएक तरह की ख़राबी का एहतिमाल है। कभी नहीं ख़याल करना चाहिए कि दुनिया में ख़ुशी सिर्फ़ दौलत का बायस होती है। बहुत बड़े ऊँचे घरों मे लड़ाई और फ़साद हम ज़्यादा पाते हैं। इससे साबित हुआ सिर्फ़ दौलत तो ख़ुशी नहीं होती। बरखिलाफ़ इसके अक्सर ख़ानादारी में ख़ुशी सिर्फ़ इत्तिफ़ाक और सुलहकारी से होती है। ग़रीब आदमियों को हम देखते हैं जिनकी आमदनी बहुत मुख़्तसर है, दिन को मेहनत-मज़दूरी से मआश पैदा करते, रात को सब मिलकर दाल-रोटी से पेट भर लेते और एक-दूसरे के साथ खुश रहते हैं। बेशक ये लोग सुलहकारी के सबब दाल-रोटी और गाढ़े-धोती में ज़्यादा आराम से हैं। बनिस्बत नवाबों और बेगमों के जिनका तमाम ऐश आपस की ना-

क़ुव्वत—ताक़त; **निगहबान**—देखरेख करने वाली; **मौज**—लहर; **एहतिमाल**—शंका; **बायस**—हेतु; **मआश**—रोज़ी, आजीविका।

नासाज़गारी से तल्ख़ रहता है। अय मेरी प्यारी बेटी असग़री ख़ानम इत्तिफ़ाक पैदा करो और सुलहकारी को ग़नीमत जानो।

अब देखना चाहिए कि इत्तिफ़ाक़ किन बातों से पैदा होता है। न सिर्फ़ इस बात से कि बीबी अपनें मियाँ से मुहब्बत करे बल्कि मुहब्बत के अलावा उसको मियाँ का अदब करना भी लाज़िम है। बड़ी नादानी है अगर बीबी मियाँ को बराबर के दर्जे में समझे। बल्कि इस ज़माने में औरतों ने ऐसा ख़राब दस्तूर इख़्तियार किया है कि अदब के बिल्कुल ख़िलाफ़ है। जब चंद सहेलियाँ आपस में बैठकर बातें करती हैं तो अक्सर यह तज़किरा होता है कि फ़लानी का मियाँ उसके साथ किस तरह का बरताव रखता है। एक कहती है—"बुआ मैंने तो यहाँ तक उनको दबाया है क्या मजाल जो मेरी बात को काटें या उलटकर जवाब दें।" दूसरी फ़ख्र करती है—"जब तक घड़ियों ख़ुशामद न करें मैं खाना नहीं खाती।" तीसरी बड़ाई मारती है—"मैं तो दस मर्तबा पूछते हैं तब एक जवाब मुश्किल से देती हूँ।" चौथी डींग की लेती है—"चाहे वो पहरों नीचे बैठे रहें बंदी को पलंग से उतरना क़सम है।" पाँचवीं शेख़ी बघारती है—"जो मेरी ज़बान से निकलता है पूरा करके रहती हूँ।" शादी-ब्याह में टोने-टोटके भी इसी ग़र्ज़ से निकले हैं कि मियाँ मुतीअ़ ओ फ़रमांबरदार

नासाज़गारी—मनोमालिन्य; **तल्ख़**—कड़वा; **ग़नीमत**—बहुत; **लाज़िम**—ज़रूरी; **तज़किरा**—जिक्र; **फ़ख्र**—गर्व; **मुतीअ़ ओ फ़रमांबरदार**—आज्ञा-पालक, ताबेदार।

रहे। कहीं तो दुलहन की जूती पर काजल पाड़कर मियाँ के सुरमा लगाया जाता है। इसका मतलब यह है कि उम्र-भर जूतियाँ खाता रहे और चूँ न करे। कहीं नहाते वक़्त दुलहन के पाँव के अँगूठे के तले बीड़ा रखा जाता है और मियाँ को खिलाया जाता है। इसके यह मानी कि पैरों पड़ता रहे। इन बातों से साफ़ ज़ाहिर है कि औरतें मर्दों का दर्जा और इख़्तियार कम करने पर आमादा हैं। लेकिन यह तालीम बहुत बुरी तालीम है और हरगिज़ इसका नतीजा क़बाहत से ख़ाली नहीं। मर्दों को ख़ुदा ने शेर बनाया है। अगर दबाव और ज़बरदस्ती से कोई उनको ज़ेर करना चाहे नामुमकिन है। बहुत आसान तरकीब उनको ज़ेर करने की ख़ुशामद और ताबेदारी है। और जो अहमक़ औरत अपना दबाव डालकर मर्द को ज़ेर करना चाहती है वो बड़ी ग़लती में है। वो शुरू से तुख़्मे-फ़साद बोती है और इसका अंजाम ज़रूर फ़साद होगा अगरचे इसको बिलफ़ैल नहीं समझती। असग़री ख़ानम! मेरी सलाह यह है कि तुम गुफ़्तगू और निशस्त-ओ-बरख़ास्त में भी अपने मियाँ का अदब मलहूज़ रखना। मज़हब में मियाँ-बीबी के मुतल्लिक़ बहुत से अहकाम हैं और चूँकि तुमने

बीड़ा—पान की गिलौरी को बीड़ा कहते हैं; **आमादा**—तुली हुई, तैयार; **क़बाहत**—ख़राबी; **ज़ेर करना**—नीचे दबाना; **तुख़्मे-फ़साद**—तुख़्म बीज को कहते हैं, यहाँ लड़ाई का बीज मतलब है; **बिलफ़ैल**—इस वक़्त; **गुफ़्तगू**—बातचीत; **निशस्त-ओ-बरख़ास्त**—बैठना उठना; **मलहूज़**—यानी अदब का लिहाज ख़याल रखना; **मुतल्लिक़**—बारे में; **अहकाम**—हुक्म का बहुवचन है आज्ञाएँ।

क़ुरान का तर्जुमा और उर्दू के बहुत से मज़हबी रिसाले पढ़े हैं मैं उम्मीद करता हूँ वो अहकाम थोड़े-बहुत ज़रूर तुम्हारे ख़याल में होंगे। उन अहकाम का मजमूआ ख़ानादारी के लिए बड़ा दस्तूर-उल-अमल है। मगर अफ़सोस है लोग ख़ुदा रसूल के हुक्मों की तामील में तनदेही नहीं करते और इसी से अनवाअ-ओ-अक़साम की ख़राबियाँ पेश आती हैं। मैंने हदीस की किताब में पढ़ा था कि अगर ख़ुदा के सिवाय किसी दूसरे को सिजदा करना रवा होता तो पैग़म्बर साहब फ़रमाते हैं कि मैं बीबी को हुक्म देता कि अपने मियाँ को सिजदा किया करे। बस इसी एक बात से तुम ख़याल कर सकती हो कि मियाँ और बीबी में क्या निस्बत है। अब इसके साथ मुल्की रिवाज को मिलाओ कि बीबी न तो मियाँ को छोड़ सकती, न बदल सकती, न उससे किसी वक़्त और किसी हाल में बेनियाज़ हो सकती है। तो सिवाय इसके कि सच्चे दिल से आप उसकी हो रहे और अताअत से, फ़रमांबरदारी से, ख़ुशामद से जिस तरह मुमकिन हो उसको अपना कर ले। आफ़ियत की, इज़्ज़त-ओ-आबरू की दूसरी कोई तदबीर न है और न होनी मुमकिन है।

क्या वजह है कि शादी-ब्याह ऐसे चाव से होता है और

रिसाला—किताब; **मजमूआ**—संग्रह; **तनदेही**—कोशिश; **पेश**—सामने; **हदीस**—क़ुरान के अलावा पैग़म्बर साहब जो कहते या करते थे उनका ब्यौरा भी लोगों ने लिख रखा है, उसे हदीस कहते हैं; **सिजदा**—नमन; **रवा**—योग्य, उचित, वाजिब; **बेनियाज़**—बेपरवाह; **अताअत**—ताबेदारी; **आफ़ियत**—अमन चैन।

चौथी के बाद ही बहू से सास-ननदों का बिगाड़ शुरू हो जाता है? यह मज़मून ग़ौर के क़ाबिल है। ब्याह के पहले तक लड़का मां-बाप में रहा और सिर्फ उन ही के साथ उसको ताल्लुक़ था। माँ-बाप ने उसको परवरिश किया और यह तवक्क़ो करते रहे कि बुढ़ापे में हमारी ख़िदमत करेगा। ब्याह के बाद बहू डोली से उतरते ही यह फ़िक्र करने लगती है कि मियाँ आज माँ-बाप को छोड़ दें। पस लड़ाई हमेशा बहुओं की तरफ़ से शुरू होती है। अगर बहू कुन्बे में मिलकर रहे और कभी सास को न मालूम हो कि बेटे को हमसे छुड़ाना चाहती है तो हरगिज़ फ़साद पैदा न हो। यह तो सब कोई जानता है कि ब्याह के बाद माँ-बाप के साथ ताल्लुक़ चन्द रोज़ा है। आख़िर घर अलग होगा, मियाँ-बीबी जुदा होकर रहेंगे। दुनिया में यही होती आई है। लेकिन नहीं मालूम कमबख़्त बहुओं को बेसबरी कहाँ की पड़ जाती है कि जो-कुछ होना हो इसी दम हो जाय। बहुओं में एक ऐब चुगली का होता है जो बुनियादे-फ़साद है। वो यह कि सुसराल की ज़रा-ज़रा बात आकर माँ से लगाती हैं और मायें ख़ुद भी खोद-खोदकर पूछा करती हैं। लेकिन इस कहने और पूछने से सिवाय इसके कि लड़ाइयाँ बढ़ें और झगड़े खड़े हों कुछ हासिल नहीं होता।

बाज़ बहुएँ इस तरह की मग़रूर होती हैं कि सुसराल में कैसा ही अच्छा खाना और कैसा ही अच्छा कपड़ा उनको

मज़मून—विषय; **तवक़्क़ो**—आशा; **चन्द रोज़ा**—थोड़े दिन का; **बुनियादे-फ़साद**—लड़ाई का पाया या जड़; **मग़रूर**—घमण्डी।

मिले हमेशा नज़रे-हिक़ारत से देखती हैं। ऐसी बातों से मियाँ की दिलशिकनी होती है असग़री ! इस की तुमको बहुत एहतियात चाहिए। सुसराल की हर एक चीज़ क़ाबिले-क़दर है और तुमको हमेशा खाना खाकर और कपड़ा पहनकर बशाशत ज़ाहिर करनी चाहिए जिससे मालूम हो कि तुमने पसन्द किया। नई दुलहन को इस बात का ख़याल भी ज़रूर रखना चाहिए कि सुसराल में बेदिली से न रहे अगरचे ओपरी होने के सबब अलबत्ता अजनबी लोगों में जी नहीं लगता। लेकिन जी को समझाना चाहिए न यह कि रोते गये, वहाँ रहे तो रोते। जाते देर नहीं होती आने का तकाज़ा शुरू हुआ। रफ़्ता-रफ़्ता उन्स पैदा करने के वास्ते चालों का रिवाज बहुत पसन्दीदा है। इससे ज़्यादा मैके का शौक़ ज़ाहिर करना सुसराल वालों को ज़रूर नापसन्द होता है।

गुफ़्तगू में दरजा औसत मलहूज़ रहे यानी न इतनी बहुत कि ख़ुद-ब-ख़ुद बक-बक, न इतनी कम कि ग़रूर समझा जाय। बहुत बकने का अंजाम रंजिश होता है। जब रात-दिन की बकवास होगी हज़ारों तरह का तज़किरा होगा। नहीं मालूम

नज़रे-हिक़ारत—उपेक्षा की दृष्टि; **दिलशिकनी**—दिल टूटना; **बशाशत**—खुशी; **बेदिली**—उदासी; **ओपरी**—अपरिचित; **अजनबी**—अपरिचित। **रफ़्ता रफ़्ता**—आहिस्ता आहिस्ता, धीरे-धीरे; **चाला**—लड़कियों के लिए मैके जाने के लिए बीच-बीच में मुहूर्त आते हैं और कभी नहीं आते। इसे चाला कहते हैं। कभी चाला होता है कभी नहीं। इस तरह लड़की का सुसराल और मैके में आना-जाना चलता रहता है ताकि उसका मन न ऊबे; **पसन्दीदा**—पसन्द आने वाला।

किस तज़किरे में क्या बात मुँह से निकल जाय। न इतनी कमगोई इख़्तियार करनी चाहिए कि बोलने के वास्ते लोग ख़ुशामद और मिन्नत करें। ज़िद और इसरार किसी बात पर ज़ेबा नहीं। अगर कोई बात तुम्हारी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ भी हो, उस वक़्त मुल्तवी रखो। फिर किसी दूसरे वक़्त बतर्ज़-मुनासिब तय हो सकती है। फ़रमाइश किसी चीज़ की न करनी चाहिए। फ़रमाइश करने से आदमी नज़रों में घट जाता है और उसकी बात हेठी पड़ जाती है। जो काम सास-ननदें करती हैं तुमको अपने हाथों से करना आर न समझना चाहिए। छोटों पर मेहरबानी और बड़ों का अदब हर-दिल-अज़ीज़ होने के वास्ते बड़ी उम्दा तदबीर है। अपना कोई काम दूसरों के ज़िम्मे नहीं रखना चाहिए। और अपनी किसी चीज़ को बेख़बरी से पड़ा न रहने दो कि दूसरे उसको उठा लेंगे। जब दो आदमी चुपके-चुपके बातें करें उनसे अलहदा हो जाना चाहिए। फिर इसकी तफ़तीश भी मत करो कि ये आपस में क्या कहते थे। और ख़्वामख़्वाह यह भी मत समझो कि कुछ हमारा ही तज़किरा था। अपना मुआमला शुरू से अदब-लिहाज़ के साथ रखो। जिन लोगों में बहुत जल्द निहायत दर्जे का इख़्तिलात पैदा हो जाता है उसी क़दर जल्द उनमें रंजिश पैदा होने लगती है। फ़क़त मैं चाहता हूँ कि

कमगोई—कम बोलना; **ज़िद**—हठ; **ज़ेबा**—मुनासिब; **मुल्तवी**—स्थगित; **बतर्ज़-मुनासिब**—ठीक ढंग से; **आर**—बुरा, ऐब; **हर-दिल-अज़ीज़**—जिसको सब प्रिय समझें; **बेख़बरी**—असावधानी; **अलहदा**—अलग; **तफ़तीश**—तलाश, खोज; **इख़्तिलात**—मेलजोल; **रंजिश**—मनमुटाव।

तुम हर रोज़ बिलाज़रूरत भी इस ख़त को कम-से-कम एक दफ़ा पढ़ लिया करो ताकि इसका मतलब पेशे-नज़र रहे। व अ़द्दुआ़।

हर्ररहु ख़ैरअंदेशखां

बाप का ख़त पाकर असग़री के दिल में जोशे-मुहब्बत ने अ़जीब असर पैदा किया और बेइख़्तियार रोने को जी चाहा। लेकिन नई ब्याही थी, सुसराल में रो न सकी। ज़ब्त को काम में लाई और बाप के ख़त को आँखों से लगा बहुत एहतियात से वज़ीफ़े की किताब में रख लिया। हर रोज़ बिलानाग़ा उसको पढ़ती और उसके मतलब पर ग़ौर किया करती थी।

दफ़ा—बार; पेशे-नज़र—आँखों के सामने; व अ़द्दुआ़—इसके सिवा दुआ़ है और बस, हर्ररहु—इसको लिखा।

बाब दसवाँ

ब्याह के बाद असग़री का बरताव और बतदरीज इंतज़ामे-ख़ानादारी में उसका दख़ल

जब तक असग़री ब्याही हुई रही तो उसका जी बहुत घबराता था। इस वास्ते कि दफ़ातन मां का घर छोड़कर नये घर और नये आदमियों में रहना पड़ा। यह तो काम और इन्तज़ाम की ख़ूगर थी। बेशग़ल उसको एक घड़ी चैन न था। या महीनों बन्द कोठरी में चुपचाप बैठना पड़ा। माँ-बाप के घर में जो आज़ादी हासिल थी बाक़ी न रही। यहाँ सुसराल में आते ही उसकी हर एक बात को लोग देखने और ताकने लगे। कोई मुँह देखता है, कोई चोटी का लम्बान नापता है, कोई क़द की उठान को ताड़ता है, कोई ज़ेवर टटोलता है, कोई कपड़े पहचानता है। खाती है तो लुक़मे पर नज़र है, निवाला कितना बड़ा लिया, मुँह कितना खोला, क्योंकर चबाया और किस तरह निगला। उठती है तो देखते हैं कि दुपट्टा क्योंकर ओढ़ा, पांयचे किस तरह उठाये। सोती

बतदरीज—क्रम-क्रम से, दर्जा-दर्जा; **दफ़ातन**—अचानक, सहसा; **ख़ूगर**—आदी, यानी उसको काम करने की आदत थी; **बेशग़ल**—बेकाम; **लंबान**—लम्बाई; **लुक़मा**—ग्रास; **निवाला**—ग्रास; **पांयचा**—पाजामे या धोती के दोनों टाँगों के भाग को पांयचा कहते हैं।

है तो वक़्त पर निगाह है, किस वक़्त सोई कब उठी। अलग़र्ज़ जुम्ला हरकात-ओ-सकनात उसकी ज़ेरे-नज़र थीं। ऐसी हालत में असग़री को सख़्त तकलीफ़ होती थी। लेकिन अज़ बस कि आक़िला और तरबियत-याफ़्ता थी ऐसे सख़्त इम्तिहान में कामिल निकली और सब हवाएँ उसकी सुसरालवालों को भायीं। बात की न तो इस क़दर बहुत कि लोग कहें कैसी लड़की है, चार दिन की व्याही हुई ने किस बला की बकबक लगा रखी है! न इतनी कम कि बदमिज़ाज और तोरे-पीटी समझें। खाना खाया तो न इतना ज़्यादा कि मुहल्ले में चरचा हो, न ऐसा कि सास-ननदें सर थकाकर बैठ रहीं और यहाँ असर न हो। सोई तो न इतनी सवेरे कि चिराग़ में बत्ती पड़ी लाड़ो मेरी तख़्त चढ़ी। और न इतनी देर तक कि गोया मर्दों से शर्त बाँधकर सोई थी।

दस्तूर होता है कि नई दुलहन को मुहल्ले की लड़कियाँ घेरे रहा करती हैं। असग़री के पास भी जब देखो दस-पाँच मौजूद। लेकिन असग़री ने किसी से ख़ुसूसियत पैदा न की। अगर कोई लड़की तमाम दिन बैठी रह गई तो यह न कहा कि बुआ अपने घर जाओ। अगर कोई न आई तो उससे यह न पूछा कि बुआ तुम कहाँ थीं, क्यों नहीं आईं?

जुम्ला—तमाम; **हरकात**—चलना-फिरना; **सकनात**—बैठना-उठना; **ज़ेरे-नज़र**—दृष्टि के नीचे; **अज़-बस**—बहुत; **आक़िला**—अक़्लमन्द; **तरबियत-याफ़्ता**—शिक्षा पाई हुई; **तोरे-पीटी**—औरतों का मुहावरा है जिसका मतलब हैं नकचढ़ी या तुनक मिज़ाज; **ख़ुसूसियत**—विशेष घनिष्ठता।

असग़री के इस तर्ज़े-मुलाक़ात और तरीक़ये-मदारात से रफ़्ता-रफ़्ता लड़कियों का अंबोह कम हो गया। ख़ुसूसन मुहल्ले के कमीनों की लड़कियाँ तो चाट की आश्ना होती हैं, जब उन्होंने देखा कि न तो पान पर पान मिलता है, न कुछ सौदे-सुलफ़ का चरचा है। खिसियानी होकर छह-सात दिन में आप-ही-आप अलग हो गईं। असग़री ने पहले अपनी ननद महमूदा से रब्त बढ़ाया। महमूदा लड़की तो थी ही। थोड़े से इल्तिफ़ात में राम हो गई। दिन-भर असग़री के पास घुसी रहा करती। बल्कि माँ किसी-किसी वक़्त कह भी उठती, "इस भावज पर क्यों इतनी महरबाँ हो? बड़ी भावज के तो साये से तुम भागती फिरती थीं।" महमूदा इसका जवाब देती—"वो तो हमको मारती थीं, हमारी छोटी भाभीजान तो हमको प्यार करती हैं।"

महमूदा की मुलाक़ात से असग़री ने अपना ख़ूब काम निकाला। अव्वल तो तमाम घर बल्कि तमाम क़ुन्बे और मुहल्ले का हाल महमूदा से पूछ-पूछकर मालूम किया और जो बात शुरू में शर्म-ओ-लिहाज़ के सबब ख़ुद न कह सकती महमूदा के ज़रिये से कहा करती। असग़री ने घर के काम में बतदरीज इस तरह दख़ल देना शुरू किया कि शाम को महमूदा से रुई मँगाकर चिराग़ की बत्तियाँ बट दिया

तर्ज़े-मुलाक़ात—मिलने के ढंग; **तरीक़ये-मदारात**—आवभगत का ढंग; **अंबोह**—भीड़; **कमीन**—नीची जाति; **आश्ना**—चाहने वाली; **सौदा-सुलफ़**—कुछ ख़रीदने की चर्चा; **रब्त**—मेल जोल; **इल्तिफ़ात**—ध्यान देना; **राम होना**—हिल जाना; **साया**—परछाईं।

करती। तरकारी बना लेती। महमूदा का फटा-उधड़ा कपड़ा सी देती। सास और मियाँ के लिए पान बना दिया करती। शुदा-शुदा बावरची ख़ाने तक जाने और मामा अ़ज़मत को भूनने-बघारने में सलाह देने लगी। यहाँ तक कि असग़री की राय पर खाना पकने लगा। जब से असग़री ने खाने में दख़ल देना शुरू किया घरवालों ने जाना कि खाना भी अ़जब नैमत है। फिर तो यह हाल हो गया कि जिस दिन असग़री किसी वजह से मामा अ़ज़मत की सलाहकार न होती खाना फिका-फिका फिरता।

शुदाशुदा—धीरे-धीरे, रफ़्ता-रफ़्ता; नैमत—ईश्वरीय देन।

बाब ग्यारहवाँ

असग़री ने घर की मामा अज़मत की चोरी पकड़ी, वो लगी उससे दुश्मनी करने

सास-बहू की लड़ाई भी कुछ मामूली बात है। असग़री यों लड़ने के क़ाबिल भी न थी तो उसका हुनर बायसे-फ़साद हुआ। मामा अज़मत इस घर में ऐसी दख़ीले-कार थी कि कुल कामों का मदार एक उस मामा पर था। सौदा-सुलफ़, कपड़ा, ग़र्ज़ जो कुछ बाज़ार से आता सब मामा अज़मत के हाथों आता ज़ेवर तक मामा अज़मत बनवाकर लाती। जिस चीज की ज़रूरत होती तो मामा अज़मत की मारफ़त ली जाती। ग़र्ज़ कि मामा अज़मत मर्दों की तरह इस घर की मुन्तज़िम थी। जब से अगसरी ने खाने में दख़ल दिया तो मामा अज़मत का ग़बन ज़ाहिर होने लगा। एक दिन पसन्दों के कबाब पक रहे थे और असग़री बावरचीख़ाने में बैठी हुई मामा को बताती जाती थी। जब गोश्त पिसकर तैयार हुआ और दही-मसाला मिलने का वक़्त आया असग़री ने

बायसे फ़साद—लड़ाई का सबब, झगड़े का कारण; **दख़ीले कार**—सब कामों में दख़ल देने वाली; **मदार**—आधार; **ग़बन**—चोरी; **पसन्दे**—गोश्त के टुकड़े जिनका कि क़ीमा किया गया हो पसन्दे कहलाते हैं।

मामा से कहा—"दही मुझको चखा लो खट्टा और बासी होगा तो कबाब बिगड़ जायँगे।" मामा ने दही का दोना निकाल असग़री के हाथ में दिया। असग़री ने चखा तो खट्टा चूना कई दिन का बासी। नीला पानी अलग और दही की फिटकियाँ-फिटकियाँ अलग। असग़री ने कहा—"अय हय! कैसा बुरा दही है। यह तो हरगिज़ कबाबों में डालने के लायक नहीं। मामा जल्द जाओ और टके का अच्छा ताज़ा मीठा दही देखकर लाओ।"

मामा ने कहा—"ओह! बीबी सेर-भर गोश्त के कबाबों में टके का दही! ऊँट के मुह में ज़ीरा, क्या होगा? यह दही जो तुमने नापसन्द किया एक आने का है।"

असग़री को सुनकर हैरत हुई और बोली कि—"हमारे घर तो आये दिन कबाब पकते रहा करते थे, हमेशा सेर-भर गोश्त में डेढ़ पैसे का दही पड़ता था। इस हिसाब से तो टके का मैंने ज़्यादा समझकर मँगवाया कि कबाब ख़ूब नर्म और सुर्ख़ हों।"

मामा ने कहा—"बीवी, तुम अपने मुहल्ले का हिसाब-किताब रहने दो। भला कहाँ चाँदनी चौक और कहाँ तुर्कमान दरवाज़ा। जो चीज़ चाँदनी चौक में पैसे की है वो यहाँ एक आने को भी नहीं मिलती। यह ख़ाक मिला मुहल्ला तो उजड़ी नगरी सूना देस है। यहाँ हर चीज़ का तोड़ा, हर शै

चूना—चूना कहते हैं लेकिन चूका है, जो एक घास है जो बहुत खट्टी होती है; **फिटकी**—क़तला, छोटे-छोटे क़तले; **हैरत**—आश्चर्य; **तोड़ा**—कमी; **शै**—चीज़;

का क़हत रहता है।"

चूँकि खाने में देर होती थी असग़री यह सुनकर चुप हो रही और मामा से कहा—"ख़ैर जितने का मिलता हो जल्द लाओ।" लेकिन असग़री ऐसी भोली न थी कि मामा की बात को तस्लीम कर लेती। अपने दिल में कहने लगी ज़रूर दाल में कुछ काला है। दमड़ी छदाम का फ़र्क़ हो तो मुज़ायका नहीं। यह ग़ज़ब कि एक शहर के दो मुहल्लों में दुगने-चौगुने का फ़र्क़! उस वक्त से असग़री भी ताक में हुई। अगले दिन मामा पान लाई थी। असग़री ने देखकर कहा कि—"मामा तुम तो बिलकुल हरे पत्ते उठा लाती हो। इनमें न तो कुछ लज़्ज़त होती है न कुछ मज़ा मिलता है। अब तो जाड़े की आमद है, क़रारे पके पान ढूँढकर लाया करो।"

मामा ने कहा कि—"पके पान तो पैसे के दो आते हैं और यहाँ अल्लाह रखे आधी ढोली रोज़ का ख़र्च है। इस खयाल से मैं नये पान लाती हूँ।"

इतने में असग़री के घर से उसकी अपनी मामा किफ़ायत-निसा ख़ैर-सल्लाह की ख़बर को आ निकली। पानों का तज़किरा तो दरपेश था ही, असग़री ने अपनी मामा से पूछा—"क्यों बी किफ़ायतनिसा, तुमको आजकल कैसे पान मिलते हैं?"

किफ़ायतनिसा ने कहा—"बीबी पैसे के बारह।"

असग़री ने संदूक़चा खोल दो पैसे किफ़ायतनिसा के हाथ

क़हत—अकाल। तस्लीम करना—मानना; ख़ैर-सल्लाह—कुशल-क्षेम; दलदार—मोटे-मोटे।

दिये और कहा इसी मुहल्ले के पनवाड़ी से पान ले आओ।

किफ़ायतनिसा बड़े-बड़े क़रारे दलदार तीस पान ले आई। असग़री ने कहा—"चाँदनी चौक की निस्बत भी पैसे पीछे तीन पान ज़्यादा मिले।"

किफ़ायतनिसा ने कहा—"बीबी यह मुहल्ला शहर का फाटक है। जो चीज़ शहर में आती है इसी दरवाज़े से आती है। गोश्त, अनाज, पान ये चीज़ें इस मुहल्ले में सस्ती मिलती हैं। अलबत्ता हरी तरकारी सब्ज़ीमण्डी से सीधे काबुली दरवाज़े होकर शहर में जाती है, वो किसी क़दर मँहगी मिलती होगी। पुराने पान तीस मिले, नये लेती तो चालीस मिलते।"

असग़री ने कहा—"यह नामुराद मामा तो हर चीज़ में यूँ ही आग लगाती है। किफ़ायतनिसा तुम दो-चार दिन यहाँ रहो, मैं अम्माँ से कहला भेजूँगी। वहाँ का काम दो-चार दिन के लिए हर कोई देख-भाल लेगा।"

किफ़ायतनिसा ने कहा—"बीबी, मैं हाज़िर हूँ। ख़ुदा न करे क्या यहाँ-वहाँ दो-दो घर हैं।

ग़र्ज़ चार दिन किफ़ायतनिसा के हाथों हर तरह का सौदा बाज़ार से आया और हर चीज़ में मामा अज़मत का ग़बन साबित हुआ। लेकिन ये सब बातें इस तरह पर हुईं कि असग़री की सास को ख़बर तक न हुई। असग़री ने जाना या किफ़ायतनिसा ने या मामा अज़मत ने। इस वास्ते कि असग़री बहुत मुरव्वत और लिहाज़ की औरत थी। उसने

मुरव्वत—शील संकोच।

समझा कि इस बुढ़िया मामा को बदनाम और रुसवा करने से क्या फ़ायदा। रात के वक़्त खाने से फ़ारिग़ होकर कोठे पर असग़री पान खा रही थी, किफ़ायतनिसा भी पास बैठी हुई थी। इतने में मामा अ़ज़मत आई। किफ़ायतनिसा ने कहा—क्यों बुआ अ़ज़मत ! यह क्या माजरा है ? चोरी कौन नौकर नहीं करता ? देखो यह घरवाली मौजूद हैं। सात बरस तक बराबर इनकी ख़िदमत की, कई-कई बरस से घर का कारोबार सब यह उठाये हुए थीं। अल्लाह रखे अमीर घर और अमीर ख़र्च। हज़ारों रुपये का सौदा इन्हीं हाथों से आया। हक़ दस्तूरी यह क्योंकर कहूँ नहीं लिया। इतना लेना तो हम नौकरों का धरम है चाहे ख़ुदा बख़्शे चाहे मारे। लेकिन इससे ज़्यादा हज़म नहीं हो सकता। आगे बढ़कर नमकहरामी में शामिल है।"

अ़ज़मत ने कहा—"बुआ, मेरा हाल कौन नहीं जानता। अब मेरी बला छिपाये। हाँ मैं तो चुराती और लूटती हूँ। लेकिन न आज से बल्कि सदा से मेरा यही काम है। ज़रा मेरी हालत पर भी तो नज़र करो कि इस घर में किस बला का काम है। अन्दर बाहर मैं अकेली आदमी। चार नौकरों का काम मेरे अकेले दम पर पड़ता है। फिर बुआ बेमतलब तो कोई अपनी हड्डियाँ यूँ नहीं पेलता। बीबी कई मर्तबा मुझको

माजरा—हाल; **हक़ दस्तूरी**—दुमानदार नौकरों को जो उनके यहाँ से सौदा लेने आते हैं पैसा रुपया, या टका रुपया जैसा क़ायदा हो उन्हें दिया करते हैं ताकि वे सौदा उन्हीं के यहाँ से लिया करें। इसे दस्तूरी कहते हैं; **हड्डियाँ पेलना**—मतलब यह कि इतनी मेहनत नहीं करता।

मौक़ूफ़ भी कर चुकी हैं, फिर आख़िर मुझ ही को बुलवाया। समझ का फेर है कोई यूँ समझा कोई यूँ समझा। चार आदमी के बदले में अकेली हूँ, चार की तनख़ा भी मुझ अकेली को मिलनी चाहिए।"

इस मामा अज़मत की हक़ीक़त इस तरह पर है कि यह औरत पच्चीस बरस से इस घर में थी और हमेशा लूटने पर उतारू। एक दिन की बात हो तो छिप-छिपा जाय, आये-दिन उस पर शुबहा होता रहता था। मगर थी चालाक, गिरफ़्त में नहीं आई थी। कई मर्तबा निकाली गई। जब मौक़ूफ़ हुई बनिये, बज़ाज़, सुनार, क़साई, कुँजड़े जिन-जिनसे उसकी मारफ़त उचापत, क़र्ज़ उठती थी तक़ाज़े को आ मौजूद हुए। इस डर के मारे फिर बुलाई जाती थी। यूँ चोरी और सर-ज़ोरी मामा अज़मत की तकदीर में लिखी थी। जताकर लेती और बताकर चुराती। दिखाकर निकालती और लिखाकर मुकर जाती। घर में आमदनी कम और आदतें बिगड़ी हुईं। खाने में इम्तियाज़, कपड़े में तकल्लुफ़। सब कारख़ाना क़र्ज़ पर था और क़र्ज़ की आढ़त मामा अज़मत के दम से थी। खुले ख़ज़ाने कहती थी कि मेरा निकलना आसान बात नहीं, घर नीलाम कराके निकलूँगी, ईंट-से-ईंट बजाकर जाऊँगी। असग़री ने जो हिसाब-किताब में रोक-टोक शुरू की तो मामा अज़मत असग़री की जानी दुश्मन हो गई और अपने बचाव

गिरफ़्त—पकड़; **सरज़ोरी**—ज़बरदस्ती; **मुकर जाना**—इन्कार कर जाना; **इम्तियाज़**—गुणदोष निकालना; **आढ़त**—याने कर्ज़ उसकी मारफ़त उठता था; **खुले ख़ज़ाने**—साफ़-साफ़।

के लिए बदला लेने की नज़र से तदबीरें सोचने लगी। और इस फ़िक्र में हुई कि मुहम्मद कामिल और उसकी माँ से असग़री को बुरा बनाये। असग़री को इसकी मुतलक़ खबर न थी। बल्कि असग़री ने जब देखा कि मामा घर की मुख़्तारे-कुल है, न अपनी आदत से बाज़ आयेगी न निकलेगी तो अपने जी में कहा कि फिर नाहक़ की झिकझिक से क्या फ़ायदा। मैं मुफ़्त में मामा से क्यों बुरी हूँ। बावरचीख़ाने में जाना और खाने में दख़ल देना बिलकुल मौक़ूफ़ किया। घर वालों को तो असग़री के हाथ की चाट लग गई थी। पहले ही वक़्त से मुँह बनाने लगे। कोई कहता—"अय हय गोश्त मुँह में कचर-कचर होता है।" कोई कहता—"दाल में नमक ज़हर हो गया है, ज़बान पर नहीं रखी जाती।" लेकिन असग़री से कौन कह सकता है कि तुम खाना पकाओ। मजबूरन जैसा बुरा-भला मामा अज़मत पका-रींधकर रख देती खाना ही पड़ता था।

मुख़्तारे-कुल—कर्ता धर्ता। **पका-रींधकर**—पका रांध कर।

बाब बारहवाँ

असग़री पर मामा का पहला वार

एक दिन बरसात के मौसम में बादल घिरा हुआ था। नन्हीं-नन्हीं फुहार पड़ रही थी, ठंडी हवा चल रही थी। मुहम्मद कामिल ने कहा आज तो कढ़ाई को दिल चाहता है। बशर्ते कि तमीज़दार बहू एहतिमाम करें। असग़री कोठे पर रहा करती थी। उसको ख़बर नहीं कि मुहम्मद कामिल ने कढ़ाई की फ़रमाइश की। मामा अज़मत घी, शक्कर, बेसन वग़ैरह सामान ले आई और मुहम्मद कामिल से कहा—"साहबज़ादे, लीजिये सब सौदा तो मैं ले आई, जाऊँ बहू साहब को बुला लाऊँ।"

कोठे पर गई तो असग़री से कढ़ाई का कुछ तज़किरा तक नहीं किया। उसी तरह उल्टे पाँव उतर आई और कहा—"बहू कहती हैं मेरे सर में दर्द है।" मामा अज़मत से मामूली खाना तो पक नहीं सकता था, कढ़ाई क्या ख़ाक तलती। सब चीज़ों का सत्यानास मिलाकर रख दिया। किस चाव से तो मुहम्मद कामिल ने फ़रमाइश की थी। बदमज़ा पकवान खा-

---

कढ़ाई—गुलगुले, पूरियाँ, समोसे, बड़े, इंदरसे की गोलियाँ इस क़िस्म के पकवान जो कढ़ाई में तले जाते हैं उन्हें कढ़ाई कहते हैं; **एहतिमाम**—बन्दोबस्त।

कर बहुत उदास हुआ। कोठे पर गया तो बीबी को देखा बैठी हुई अपना पायजामा सी रही हैं। जी में नाखुश हुआ कि—"अँय सीने को सर में दर्द नहीं और ज़रा कढ़ाई को कहा तो दर्दे-सर का बहाना कर दिया।"

यह पहली नाख़ुशी मुहम्मद कामिल को असग़री से पैदा हुई और दस्तूर है कि मियाँ-बीबियों में बिगाड़ इसी तरह की छोटी-छोटी बातों में पैदा हुआ करता है। अज़ बस कि अकसर छोटी-सी उम्र में ब्याह हो जाता है। ख़ुदा के फ़ज़्ल से अक़्ल मसलहत-अन्देश न मियाँ में होती है न बीबी में। अगर ज़रा सी बात भी ख़िलाफ़े-मिज़ाज देखी तो मियाँ अपने को अकड़े बैठे हैं और बीबी अलग मुँह औंधाये लेटी हैं। और जब एक जगह का रहना-सहना हुआ तो मुख़ालिफ़त की छोटी छोटी बातों का बेशतर वाक़े होना क्या ताज्जुब है। यह मुख़ालिफ़त कसरत से होते-होते दोनों तरफ़ से लिहाज़ और पास उठ जाता है और तमाम उम्र जूतियों में दाल बँटती रहती है। सबसे बेहतर तदबीर यह है कि मियाँ-बीबी शुरू से अपना मआमला एक-दूसरे के साथ साफ़ रखें और अदना रंजिश को पैदा न होने दें। वरना छोटी-छोटी रंजिशें जमा होकर आख़िर को फ़सादे-अज़ीम हो जायँगी। और रंजिश को पैदा न होने देने की यह हिकमत है कि जब कोई ज़रा-सी बात भी ख़िलाफ़े-मिज़ाज वाक़े हो उसको दिल में न रखा।

अज़ बस—बहुत; **मसलहत-अन्देश**—मुनासिब बात की सोचने-समझने वाली; **औंधाये**—उल्टा किये। **मुख़ालिफ़त**—विरोध; **बेशतर**–ज़्यादातर; **अदना**—छोटी; **फ़सादे-अज़ीम**—बड़े झगड़े; **हिकमत**—तदबीर।

रू दर रू कहकर साफ़ कर लिया। अगर मुहम्मद कामिल बीबी से बतौर शिकायत पूछता कि क्यों साहब ज़रा सा काम तुमसे न हो सका और दर्दे-सर का बहाना कर दिया? उसी वक़्त दो-चार बातों में मामला तय हो जाता और मामा अज़मत की फ़ितरत खुल पड़ती। लेकिन मुहम्मद कामिल नें मुँह पर तो लगाई मुहर और दिल में दफ़्तरे-शिकायत लिख चला। असग़री को मुहम्मद कामिल की कम इल्तफ़ाती से खटका हुआ और समझी कि ख़ुदा ख़ैर करे लड़ाई का आग़ाज़ नज़र आता है। सास को देखा तो उनको भी किसी क़दर मुकद्दर पाया। हैरत में थी कि इलाही क्या माजरा है।

रू दर रू—मुँह दर मुँह भी कहते हैं, मुँह पर; **फ़ितरत**—चालाकी; **कम इल्तफ़ाती**—कम ध्यान देना; **आग़ाज़**—शुरू; **मुकद्दर**—नासाफ़, रूठा हुआ; **हैरत**—आश्चर्य।

बाब तेरहवाँ

असग़री पर मामा का दूसरा वार

अभी यह बात तय नहीं हुई थी कि मामा अज़मत ने एक शरारत और की। रमज़ान का क़ुर्ब था। मुहम्मद कामिल की माँ ने मामा अज़मत से कहा—"मामा रमज़ान आता है अभी से सब तैयारी कर चलो। बरतन छोटे-बड़े सब क़लई कराने हैं। मकान में बरस-भर हुआ सफ़ेदी नहीं हुई। लाला हज़ारी-मल से कहो कि जिस तरह हो सके कहीं से पचास रुपये दे, ईद का ख़र्च सर पर चला आता है।"

मामा अज़मत बोली कि "तमीज़दार बहू अपनी माँ के यहाँ मेहमान जायँगी और सुना है तहसीलदार भी आने वाले हैं। ज़रूर दोनों बेटियों को बुला भेजेंगे। बल्कि एक जगह तो इस बात का भी मज़कूर था कि तमीज़दार बहू का इरादा है बाप के साथ चली जायँ। बहू जायँगी तो छोटे साहबज़ादे भी जायँगे। फिर बीबी तुम्हारा अकेला दम है मकान में सफ़ेदी होकर क्या होगी और बरतन क़लई होकर क्या होंगे? हज़ारीलाल कमबख़्त तो ऐसा बेमुरव्वत हो गया है कि हर

क़ुर्ब—रमज़ान का महीना नज़दीक आ गया था; तहसीलदार—अकबरी असग़री के बाप; बेमुरव्वत—बे लिहाज़।

रोज़ तक़ाज़े को उसका आदमी दरवाज़े पर खड़ा रहता है। और क़र्ज़ क्यों कर देगा ?" मुहम्मद कामिल की माँ यह सुनकर सर्द हो गई और सर्द होने की बात थी। मियाँ तो जिस दिन से लाहौर गये फिर कर घर की शकल न देखी। छठे महीने बरसवें दिन जी में ख़याल आ गया तो कुछ ख़र्च भेज दिया। वरना कुछ सरोकार नहीं। मुहम्मद आक़िल माँ से अलग हो ही चुका था। सिर्फ़ मुहम्मद कामिल का दम घर में था। उसके गये पीछे मतला साफ़ था। मुहम्मद कामिल की माँ ने मामा से पूछा—"अरी सच बता, तमीज़दार बहू ज़रूर जायँगी ?"

मामा बोली—"बीबी जाने न जाने की तो ख़ुदा जाने। जो सुना था सो कह दिया।"

मुहम्मद कामिल की माँ ने पूछा—"अरी कमबख़्त, किस से सुना, क्यों कर मालूम हुआ ?"

मामा बोली—"सुनने की जो पूछो तो किफ़ायतनिसा से मैंने दो रुपये क़र्ज़ माँगे थे। उसने कहा—मैं दे तो देती पर पहाड़ पर जाने वाली हूँ। तब मैंने उससे हाल पूछा तो मालूम हुआ कि सब बात ठीक-ठाक हो चुकी है। बस इतनी देर है कि तहसीलदार आयें। ईद की सुबह को ये सब लोग रवाना हो जायँगे और सुनने पर क्या मुनहसर है। ख़ुदा को देखा नहीं

सर्द—डर के मारे हाथ-पाँव ठंडे पड़ गये; **सरोकार**—ताल्लुक़, परवा; **मतला**—जिस जगह चाँद, सूरज या कोई सितारा निकलता हो वह उसका मतला कहा जाता है। मतलब यह कि मुहम्मद कामिल के गये पीछे घर में कोई मर्द न था।

तो अक़्ल से पहचाना है। बीवी क्या तुमको तमीज़दार बहू के ढंगों से नहीं समझ पड़ता ? देखो पहले तो बहू घर का काम-काज भी देखती-भालती थीं। अब तो कोठे पर से नीचे उतरना भी क़सम है। ख़त पर ख़त बाप के नाम चले जाते हैं। सिवाय जाने के ऐसा कौन सा मआमला है।"

मुहम्मद कामिल की माँ यह हाल सुनकर सन्नाटे में रह गई और इसी सोच में बैठी थी कि मुहम्मद कामिल बाहर से आया। मुहम्मद कामिल को पास बुलाकर पूछा कि—"मुहम्मद कामिल एक बात पूछती हूँ, सचमुच बतलाओगे ?"

मुहम्मद कामिल ने कहा—"अम्माँ भला ऐसी कौन बात है जो तुमसे छिपाऊँगा ?"

मुहम्मद कामिल की माँ ने जो कुछ मामा से सुना था हर्फ़-ब-हर्फ़ मुहम्मद कामिल से कहा। मुहम्मद कामिल ने कहा—"अम्माँ मैं सच कहता हूँ मुझको इसकी मुतलक़ ख़बर नहीं। न मुझ से तमीज़दार बहू ने इसका तज़किरा किया।"

मुहम्मद कामिल की माँ बोली—"हमारे सामने का बच्चा और हमीं से बातें बनाता है। इतनी बड़ी बात और तुमको ख़बर नहीं !"

मुहम्मद कामिल ने कहा—"तुमको यक़ीन नहीं आता। तुम्हारे सर की क़सम मुझको मालूम नहीं।"

इतने में मामा भी आ निकली। मुहम्मद कामिल की माँ ने कहा—"क्यों बी अज़मत ! मुहम्मद कामिल तो कहता है

सन्नाटे—गुमसुम; **हर्फ़-ब-हर्फ़**—अक्षरशः। **मुतलक़**—बिलकुल; **तज़किरा**—ज़िक्र।

मुझको मालूम नहीं।"

मामा ने कहा—"मियाँ तुम बुरा मानो या भला मानो, तुम्हारी बीवी जाने की तो तैयारियाँ कर रही हैं। तुमसे शायद छिपाती हों। यह मिज़ाजदार बहू न हों कि उनके पेट में बात नहीं समाती थी। यह तमीज़दार बहू हैं कि किसी को अपना भेद न दें।"

मुहम्मद कामिल की माँ ने पूछा—"भला मुहम्मद कामिल, अगर यह बात सच हो तो तुम्हारा क्या इरादा है।"

मुहम्मद कामिल ने कहा—"भला यह क्यों कर हो सकता है कि तुमको अकेला छोड़कर चला जाऊँगा। और तमीज़दार बहू की भी ऐसी क्या ज़बरदस्ती है कि बेपूछे-गच्छे चली जायँगी। और मैं आज तमीज़दार बहू से पूछूँगा कि क्यों जी यह क्या बात है।"

मुहम्मद कामिल की माँ ने कहा—"इस नामुराद मामा की बात का क्या ऐतबार है। अभी बहू से कुछ ज़िक्र-मज़कूर मत करो। जब बात तहक़ीक़ हो जायगी उस वक़्त देखा जायगा।"

इस तरह की बातों से मामा अज़मत असग़री को सास और मियाँ से बुरा बनाने की फ़िक्र में थी। और असग़री से हरचन्द किसी ने कुछ कहा-सुना नहीं लेकिन वो भी इन सबके क़याफ़े से समझ गई थी कि ज़रूर कुछ कशीदगी है। असग़री के पास महमूदा बड़ी जासूस थी। ज़रा-ज़रा सी बात असग़री से कहती और मामा की बदज़ाती सब असग़री पर

तहक़ीक़—जाँच-पड़ताल; **क़याफ़ा**—सूरत शकल; **कशीदगी**—खिंचाव।

खुल गई थी। लेकिन असग़री ऐसी अहमक़ न थी कि जल्द बिगड़ बैठती। वो इस फ़िक्र में हुई कि इस मामले में अपनी तरफ़ से कुछ कहना-सुनना मुनासिब नहीं। आख़िर कभी-न-कभी बात खुलेगी। असग़री ने अपने दिल में कहा कि भला अज़मत रह तो सही। इंशा अल्ला ताला तुझको भी कैसा सीधा बनाती हूँ। अब यहाँ तक तेरे मग़ज़ चल गये हैं कि घर के घर में फ़साद डलवाती है। इंशा अल्ला ताला तुझको वहाँ मारूँ कि पानी न मिले और ऐसा तुझको उजाड़ूँ कि फिर इस मुहल्ले में आना नसीब न हो।"

मामा अज़मत की शामत सर पर सवार थी। तीसरा वार असग़री पर और सही किया।

शामत—दुर्दशा।

बाब चौदहवाँ
असग़री पर मामा का तीसरा वार

हज़ारीमल की तो आदत थी जब कभी मामा अज़मत को अपनी दुकान के सामने से आते-जाते देखता तो अदबदा-कर छेड़ता कि क्यों मामा हमारे हिसाब-किताब का भी कुछ फ़िक्र है और सातवें-आठवें घर पर तक़ाज़ा कहला भेजता। एक दिन हस्बे-मामूल मामा सौदे-सुलफ़ को बाहर जाती थी, हज़ारीमल ने टोका। मामा बोली—"अय लाला, यह क्या तुमने मुझसे आये दिन की छेड़ख़ानी मुक़र्रर की है। जब मुझको देखते हो तक़ाज़ा करते हो। जिनको देते हो उनसे माँगो, उन पर तक़ाज़ा करो। मैं बेचारी ग़रीब आदमी, टके की औक़ात मुझसे और महाजनों के लेन-देन से वास्ता ?"

हज़ारीमल ने कहा—"यह बात तुमने क्या कही कि मुझसे वास्ता नहीं ? दुकान से तो तुम ले जाती हो हाथ पहचानता है। हम तो तुम को जानते हैं और तुम्हारी साख पर देते हैं। हम घर वालों को क्या जानें।"

मामा ने कहा—"अय लाला, होश में आओ, ऐसे घर के

अदबदाकर—ज़रूर जान बूझ कर; **टके की औक़ात**—दो पैसे की हैसियत; **साख**—एतबार।

भोले, मेरी ऐसी क्या हैसियत तुमने देख ली ? मेरे पास न जायदाद, न दौलत और तुमने सैकड़ों रुपये आँख बन्द करके मुझको दिये। और अगर मुझको दिया है तो तुम को भी क़सम है जाओ मुझ से ले भी लेना। मेरे जो महल खड़े होंगे सरकार में अरज़ी लगाकर नीलाम करा लेना।''

मामा की ऐसी उखड़ी-उखड़ी बातें सुनकर हज़ारीमल बहुत सिटपिटाया और लगा मामा से मिलावट की बातें करने कि आज तुम किसी से लड़कर आई मालूम होती हो, बताओ तो क्या बात है ? बोबी साहब ने कुछ कहा या साहबज़ादे कुछ ख़फ़ा हुए ? यहाँ तो आओ बात तो सुनो।''

इधर तो मामा से यह कहा और उधर दुकान पर जो लड़का बैठता था एक पैसा उसके हाथ दिया कि दौड़कर दो गिलौरियाँ तू बनवाकर ला और देख ज़रा सा ज़र्दा भी अलग हथेली में लेता आइयो। जब मामा बैठ गई तो फिर हज़ारीमल ने हँसकर पूछा—''मालूम होता है आज ज़रूर किसी से लड़ी हो।'' मामा ने कहा—''ख़ुदा न करे क्यों लड़ने लगी। बात-पर-बात मैंने भी कह दी। रत्ती बराबर झूठा कहा हो तो मेरा कान पकड़ो।''

हज़ारीमल—''यह तो ठीक है। बहवार तो मालिक के साथ है पर तुम्हारे हाथों से होता है कि नहीं ? न हमारे रुक़्क़ा न चिट्ठी। तुम ने मालिक के नाम से जो माँगा सो दिया।''

मामा—''हाँ यूँ रहो, इससे मैं कब मुकरती हूँ ? जो ले

सिटपिटाया—घबराया; **गिलौरी**—पान का बीड़ा; **बहवार**—ब्यौहार।

गई हूँ हज़ारों में कह दूँ, लाखों में कह दूँ और हमारी बीवी भी (रोयें-रोयें सी दुआ निकलती है) बेचारी कभी तकरार नहीं करतीं।"

हज़ारीमल—"मामा, बेगम साहब तो हक़ीक़त में बड़ी अमीर हैं, वाह क्या बात।" फिर हज़ारीमल ने आहिस्ता से पूछा—"छोटी बहू साहब का क्या हाल है? कैसी हैं अपनी बड़ी बहन के ढंग पर हैं या और तरह का मिज़ाज है?"

मामा—"लाला कुछ न पूछो, बेटी तो अमीर घर की हैं, पर दिल की बड़ी तंग हैं। दमड़ी का सौदा भी जब तक चार मर्तबे फेर न लें पसंद नहीं आता। हाँ, ख़ुदा रखे हुनर, सलीक़ा तो दुनिया की बहू-बेटियों से बढ़-चढ़कर है। खाना उम्दा-से-उम्दा, सीने में दरज़ियों और मुग़लानियों को मात किया है। लेकिन लाला अमीरी की बात नहीं। अव्वल-अव्वल तो मुझ पर भी रोक-टोक शुरू की थी, सो लाला तुम जानते हो मेरा काम कैसा बेलाग होता है। आख़िर को थककर बैठ रहीं। बेगम साहब तो औलिया आदमी हैं और उन ही के दम-क़दम की बरकत है, घर चलता है। हम ग़रीब भी उन ही का दामन पकड़े हुए हैं। बहुतेरा लोगों ने बेगम साहब को भड़काया लेकिन ख़ुदा सलामत रखे उनके दिल पर मैल न आया और किसी तरह का कलाम उन्होंने मुँह पर न रखा।"

हज़ारीमल—"सुना है छोटी बहू साहब को बड़ा भारी जहेज़ मिला।"

मामा ने छूटते ही—"ख़ाक, बड़ी से भी उतरता हुआ।"

दामन—आँचल; **कलाम**—बात।

हज़ारीमल—"बड़ा ताज्जुब है, इनके ब्याह के वक़्त तो ख़ाँ साहब तहसीलदार थे, बड़ी बेटो से ज़्यादा देना लाज़िम था।"

मामा—"अय हय ! तहसीलदार का कुछ दोस नहीं। उस बेचारे ने तो बड़ी-बड़ी तैयारियाँ की थीं। यही छोटी-खोटी, मुँह बोली थी। अम्माँ-बाबा की ख़ैरख़्वाही के मारे कह-कहकर सब चीज़ें कम कराईं।"

हज़ारीमल—"अगर यही हाल है तो बड़ी बहन की तरह यह भी अलग घर करेंगी।"

मामा—"अलग घर करना कैसा, यह तो बड़े गुल खिलायेंगी। बड़ी बहू बदमिज़ाज थीं लेकिन दिल की साफ़ और यह ज़बान की मीठी और दिल की खोटी। कोई कैसा ही जान मारकर काम करे उनको ख़ातिर तले नहीं आता। बात भी कहेंगी तो तह की, मुँह पर कुछ दिल में कुछ। ना बाबा यह औरत एक दिन निबाह करने वाली नहीं। अब तो पहाड़ पर बाप के पास जाने की तैयारियाँ कर रही हैं।"

हज़ारीमल—"लाहौर से इन दिनों कोई ख़त आया ?"

मामा—"हर रोज़ इन्तज़ार रहता है। नहीं मालूम क्या सबब है, कोई ख़त नहीं आया। बीवी ख़र्च की राह देख रही हैं। रमज़ान सर पर आ रहा है। बल्कि परसों-अतरसों मुझसे कहती थीं हज़ारीमल से पचास रुपये और क़र्ज़ लाना।"

हज़ारीमल क़र्ज़ का नाम सुनकर चौंक पड़ा और कहा—"पिछला हिसाब चुका दें तो आगे को क्या इन्कार है ? बड़ी

लाज़िम—ज़रूरी; **ख़ातिर तले आना**—पसन्द आना।

बी देखना, बेगम साहब से अच्छी तरह पर समझाकर कह देना कि जहाँ से बन पड़े रुपये का फ़िक्र करें। अब मेरे साझी मेरे रोके नहीं रुकते। ऐसा न हो कल-कलाँ को मुझे बात देनी आ जाय।"

मामा—"तुम्हारा रुपया खुदा ही निकलवायेगा तो निकलेगा। बेगम साहब कहाँ से देंगी, बाल-बाल तो क़र्ज़दार हो रही हैं। मोदी अलग जान खाता है, बज़ाज़ जुदा गुल मचाता है।"

हज़ारीमल—"मुझको दूसरे लेनदारों से क्या वास्ता ? हमारी दुकान का हिसाब तो बेगम साहब को बेबाक़ करना ही पड़ेगा। मैं तो बेगम साहब की सरकार का बड़ा लिहाज़ करता हूँ मगर मेरा साझी छदामीलाल अब किसी तरह नहीं मानता। अगर वह यह हाल सुन पाये तो आज नालिश कर दे।"

मामा—"यह सब हाल बेगम साहब से कह तो मैं दूँगी लेकिन घर का ज़रा-ज़रा हाल मुझको मालूम है। नालिश करो, फ़रियाद करो, न रुपया है न देने की गुंजाइश। रुपया होता तो क़र्ज़ क्यों लिया जाता।"

इतनी बातों के बाद मामा अज़मत हज़ारीमल से रुख़सत हो सौदा-सुलफ़ लेकर घर में आई तो मुहम्मद कामिल की माँ ने पूछा—"मामा तू बाज़ार जाती है तो ऐसी बेफ़िक्र होकर जाती है कि खाना पकाने का कुछ ख़याल तुझको नहीं

बात देनी—याने साझी मुझे क़ायल करें; **मोदी**—बनिया; **बज़ाज़**—कपड़े बेचने वाला; **लेनदार**—कर्ज़ देने वालों से।

रहता ? देख तो कितना दिन चढ़ा है। अब किस वक़्त गोश्त चढ़ेगा, कब पकेगा ? कब खाना मिलेगा ?"

मामा—"मुझे हज़ारीमल के झगड़े में इतनी देर हो गई। वो जानहार हर रोज़ मुझको आते-जाते रोका करता है। आज मेरी जान जल गई और मैंने कहा कि क्या तूने मुझ-से रोज़ की छेड़खानी मुकर्रर की है। क्यों मरा जाता है ज़रा सब्र कर। लाहौर से ख़र्च आने दे तो तेरा अगला-पिछला सब हिसाब-किताब बेबाक़ हो जायगा। वो मुआ तो मेरे सर हो गया और भरे बाज़ार में लगा मुझको फज़ीहत करने।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"हज़ारीमल को क्या हो गया है, वो तो ऐसा न था। आख़िर बरसों से हमारा उसका लेन-देन है। सवेरे भी दिया है, देर करके भी दिया है, कभी उसने तकरार नहीं की।"

मामा—"कोई और महाजन दुकान में साझी हुआ है। उस मुये ने जल्दी मचा रखी है। जिस-जिस पर लेना था सबसे खड़े-खड़े वसूल कर लिया। जिसने नहीं दिया नालिश कर दी। हज़ारीमल ने कहा है कि बेगम साहब से बहुत-बहुत हाथ जोड़कर मेरी तरफ़ से कह देना कि मेरे बस की बात नहीं। जिस तरह हो सके दो-चार दिन में रुपये की राह निकाल दें वरना छदामीलाल ज़रूर नालिश कर देगा।"

इस ख़बर के सुनने से मुहम्मद कामिल की माँ को सख़्त तरद्दुद पैदा हुआ। अमीर बेगम उनकी छोटी बहन ख़ानम के बाज़ार में रहती थीं, वो ज़रा ख़ुशहाल थीं। मुहम्मद कामिल

जानहार—मरने जोगा; तरद्दुद—चिन्ता, फ़िक्र।

की माँ ने मामा अज़मत से कहा कि—"मामा, लाहौर से तो ख़त का जवाब तक नहीं आता, ख़र्च की क्या उम्मीद है। अगर सचमुच हज़ारीमल ने नालिश कर दी तो क्या होगा? मेरे पास तो इतना असासा भी नहीं कि बेचकर अदा कर दूंगी। और नालिश होने पर दुनिया में भी बेइज़्ज़ती है। नाम तो सारे शहर में बद होगा। डोली ले आओ, मैं अमीर बेगम के पास जाती हूँ। देखो अगर वहाँ कोई सूरत निकल आये।"

मामा—"बीवी, नालिश तो हुई धरी है। जिसने मुँह से कहा उसको करते क्या देर लगती है। और छोटी बेगम बेचारी के पास कहाँ से रुपया आया, वो तो इन दिनों ख़ुद हैरान हैं।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"आख़िर फिर कुछ करना तो पड़ेगा।"

मामा ने पास जाकर चुपके से कहा कि—"महीने भर के लिये तमीज़दार बहू अपने कड़े दे देतीं तो बात रह जाती। बिलफ़ेल उन कड़ों को गिरवी रखकर आधे-तिहाई हज़ारीमल के भुगत जाते। महीने भर में या तो मियाँ ख़र्च भेज देते या मैं किसी और महाजन से ले आती।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"अरी तू कोई दीवानी हुई है! ख़बरदार, ऐसी बात मुँह से भी मत निकालना। अगर रहने का मकान तक भी बिक जाये तो बला से, मुझको मंज़ूर है। लेकिन बहू से कहने का मुँह नहीं।"

मामा—"बीवी, मैंने तो इस ख़याल से कहा कि बहू हुई;

असासा—सामान असबाब; बिलफ़ैल—इस समय।

बेटी हुई, कुछ ग़ैर नहीं होतीं। और क्या ख़ुदा न करे, कुछ बेच डालने की नीयत है। महीने भर का वास्ता है, ख़ैर सन्दूक़चे में न पड़ी रही महाजन के पास रखी रही, जिसमें उसकी ख़ातिर जमा रहे।"

मूहम्मद कामिल की मां—"फिर भी बहू-बेटी में बड़ा फ़र्क़ होता है। और बहू भी नई ब्याही हुई कि अगर सच पूछो तो अभी अच्छी तरह उसकी घूँघट भी नहीं खुली। भला उससे कोई ऐसी बात कह सकता है। देखो ख़बरदार, फिर ज़बान से ऐसी बात निकालियो। ऐसा न हो, महमूदा के कान पड़ जाय और बहू से जा लगाये।"

मामा—"साहबज़ादी तो अभी खड़ी सुन रही थीं। मगर अभी उनको इन बातों की समझ नहीं।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"डोली ले आओ, मैं बहन तक जाऊँ तो सही। फिर जैसी सलाह ठहरेगी देखा जायगा।"

मुहम्मद कामिल की माँ तो सवार हो ख़ानम के बाज़ार सिधारीं और महमूदा ने सब हाल तमीज़दार बहू को जा सुनाया।"

नीयत—इरादा; **वास्ता**—मामला, काम; **सिधारीं**—रवाना हुई।

बाब पन्द्रहवाँ

ख़त असग़री की तरफ़ से, मामा की शरारतों के दफ़ैये का आग़ाज

असग़री को और कुछ तो न सूझी फ़ौरन अपने बड़े भाई ख़ैरअन्देशख़ाँ को यह ख़त लिखा:—

जनाब बिरादर साहब मुअज्ज़म मुकर्रम सलामत—

तसलीमात के बाद मतलब ज़रूरी अर्ज़ करती हूँ कि मुद्दत से मैंने अपना हाल आपको नहीं लिखा। इस वास्ते कि जो अ़रीज़ा जनाब वालिद की ख़िदमत में भेजती हूँ आपकी नज़र से भी ज़रूर गुज़रता होगा। अब एक ख़ास बात ऐसी पेश आई है कि आप ही की ख़िदमत में उसका अर्ज़ करना मुनासिब समझती हूँ। वो यह है कि जब से सुसराल आई किसी तरह की तकलीफ़ मुझको नहीं पहुँची। और बड़ी आपा को जिन बातों की शिकायत रहा करती थी, आप की दुआ से वो बातें मेरे साथ नहीं हैं। सब लोग मुझसे मुहब्बत करते हैं और मैं खुश रहती हूँ। लेकिन एक मामा अ़ज़मत के हाथों से वो ईज़ा है जो किसी बदमिज़ाज सास और बदज़बान ननद से

दफ़ैया—दूर करना या दफ़ा करना; **मुअज्ज़म**—भाई साहब सम्मान और इज्ज़त यानी तारीफ किये गये; **तसलीमात**—बहुत से सलाम; **मुद्दत**—अरसा; **अ़रीज़ा**—निवेदन पत्र; **वालिद**—पिता; **दुआ**—आशीर्वाद; **ईज़ा**—तकलीफ़।

भी न होती। यह औरत इस घर की पुरानी मामा है और अन्दर-बाहर का सब काम इसी के हाथों में है। इस औरत ने घर को लूटकर ख़ाक-सियाह कर दिया। अब इतना क़र्ज़ हो गया है कि इसके अदा होने का सामान नज़र नहीं आता। किसी तरह का बन्दोबस्त घर में नहीं। मैंने चन्द रोज़ मामूली कारोबारे-ख़ानादारी में दख़ल दिया था तो हर चीज़ में ग़बन, हर बात में फ़रेब पाया गया। मेरी रोक-टोक से मामा मेरी दुश्मन हो गई और उस दिन से हर रोज़ ताज़ा फ़साद खड़ा किये रहती है। अब तक हरचन्द कोई क़बाहत की बात पैदा नहीं हुई, लेकिन इस मामा का रहना मुझको सख़्त नागवार है। मगर उसका निकलना भी बहुत दुश्वार है। तमाम बाज़ार का क़र्ज़ उसी की मारफ़त है। मौक़ूफ़ी का नाम भी सुन पाये तो क़र्ज़ख़्वाहों को जा भड़काये। फिर क़र्ज़ का न हिसाब है न किताब, ज़बानी तुक्कों पर सब लेना-देना हो रहा है। मैं चाहती हूँ कि सब लोगों का हिसाब-ओ-किताब होकर लिखा-पढ़ी हो जाय और बक़दरे-मुनासिब हर एक की क़िस्त मुक़र्रर कर दी जाय और क़र्ज़ लेने का दस्तूर आयन्दा के वास्ते मौक़ूफ़ हो। मामा निकाल दी जाय। यक़ीन है कि जनाब वालिद साहब के साथ आप भी रमज़ान में तशरीफ़ लायेंगे। मैं चाहती हूँ कि आप महरबानी फ़रमाकर लाहौर होकर आइए और अब्बाजान को जिस तरह बन पड़े कम-से-कम दो हफ़्ते के वास्ते अपने साथ लिवा लाइए।

क़बाहत—बुराई; **नागवार**—नापसन्द; **दुश्वार**—मुश्किल; **भड़काये**—उभार दे; **तुक्कों**—बातों पर, असल में तुक्का सरकन्डे के तीर को कहते हैं जो लड़के इधर-उधर चलाते रहते हैं।

आप सब लोगों के सामने यह सब मामला बख़ूबी तय हो जायगा। मैं इस ख़त को सख़्त तशवीश की हालत में लिख रही हूँ। कोई महाजन आमादये-नालिश है। मामा ने सलाह दी है कि मेरे कड़े गिरो रखे जायँ। अम्माँजान रुपये के बन्दोबस्त के वास्ते इसी वक़्त ख़ालाजान के पास गई हैं—फ़क़त।

इधर तो असग़री ने भाई को ख़त लिखा और उधर अपनी ख़ाला से कहला भेजा कि मैं अकेली हूँ, बुआ तमाशाख़ानम को दो दिन के वास्ते भेज दीजिए। मैंने सुना है कि वो आपके यहाँ मेहमान आई हुई हैं। ग़र्ज़ शामो-शाम बी तमाशाख़ानम आ पहुँचीं। डोली से उतरते ही पुकारी—अल्ला बी असग़री! ऐसा भी कोई बेमुरव्वत न हो। मैंने ख़ालू अब्बा का ख़त तुमसे मँगवा भेजा था तुमने न दिया।"

असग़री ने कहा—"ओह! कौन माँगने आया?

तमाशाख़ानम बोली—"देखो, यही मामा अज़मत मौजूद हैं। क्यों बी इस जुमे को तुम हमारे घर गई थीं, मैंने तुमसे कह दिया था या नहीं?"

अज़मत बोली—"हां बी इन्होंने तो कहा था। मुझ कमबख़्त सत्तरी बहत्तरी को बात याद नहीं रहती, यहाँ आते-आते घर के धन्दे में भूल गई।"

असग़री ने आहिस्ता से कहा—"हाँ, तुमको तो लूटना

तशवीश—परेशानी; **आमादये**—नालिश करने को तैयार; **शामो-शाम**—शाम होते-होते; **सत्तरी बहत्तरी**—असल में सत्तर बहत्तर की उम्र हुई लेकिन मुहावरे में उम्र के कारण जिसकी इंद्रियाँ शिथिल हो गई हैं जिसको बात याद नहीं रहे। और सत्तर बहत्तर की उम्र में लोग ऐसे ही बदहवास हो भी जाते हैं।

और फ़साद डलवाना याद रहता है।" और तमाशा ख़ानम से कहा—"ख़त मौजूद है और एक और नई किताब भी आई है। बड़े मज़े की बातें उसमें हैं। वो भी तुम लेती जाना।"

असग़री ने मामा का सब हाल ज़र्रा-ज़र्रा तमाशाख़ानम से कहा। तमाशाख़ानम मिज़ाज की थीं बड़ी तेज़। उसी वक़्त जूती लेकर उठीं और मामा को मारने चलीं। असग़री ने हाथ पकड़कर बिठा लिया और कहा—"ख़ुदा के लिये आपा ऐसा ग़ज़ब मत करो। अभी जल्दी मत करो, सब बात बिगड़ जायगी।"

तमाशाख़ानम ने कहा—"तुम यों ही पसोपेश लगाकर अपना वक़र खोती हो। बुआ अगर मैं तुम्हारी जगह होती, ख़ुदा की क़सम मुरदार को मारे जूतियों के ऐसा सीधा बनाती कि उम्र भर याद रखती।"

असग़री ने कहा—"देखो इंशा अल्लाह इस नमक हराम पर मुफ़्त की मार पड़ेगी कोई दिन की देर है।"

इसके बाद तमाशाख़ानम ने पूछा—"तुम्हारी सास अपनी बहन के यहाँ किस ग़र्ज़ से गई हैं।"

असग़री ने कहा—"वो बेचारी भी इसी नामुराद मामा के हाथों से दरबदर मारी-मारी फिरती हैं। कोई महाजन है, उसका कुछ देना है। मामा ने आज आकर कहा था कि वो नालिश करने वाला है। उसी के रुपये की फ़िक्र में गई हैं।"

ग़ज़ब—ग़ज़ब का असली अर्थ तो ग़ुस्सा है लेकिन मुहावरे में ख़राबी की जगह बोला जाता है; **पसोपेश**—आगा पीछा; **वक़र**—अदब; **दर-बदर**—दरवाज़े दरवाज़े।

तमाशाख़ानम ने पूछा—"कौन सा महाजन नालिश करने वाला है।"

असग़री ने कहा—"नाम तो में नहीं जानती।"

तमाशाख़ानम ने मामा से पूछा—"अ़ज़मत कौनसा महाजन है।"

अ़ज़मत—"बीबी, हज़ारीमल।"

तमाशाख़ानम—"वही हज़ारीमल ना जिसकी दुकान जौहरी बाज़ार में है?"

अ़ज़मत—"हाँ बीबी हाँ, वही हज़ारीमल।"

यह सुनकर तमाशाख़ानम ने असग़री से कहा—"इससे तो हमारी सुसराल में भी लेन-देन है। भला क्या मुये की ताक़त है जो नालिश करेगा। मैं यहाँ से जाकर तुम्हारे भाई जान से कहूँगी। देखो तो कैसा ठीक बनाते हैं।"

दो दिन तमाशाख़ानम असग़री के पास रहीं। तीसरे दिन रुख़सत हुईं और चलते-चलते कह गईं कि—"बुआ असग़री तुमको मेरे सर की क़सम जब तुम्हारे सुसरे आयें और यह सब मामला मुक़दमा पेश हो मुझको ज़रूर बुलवाना और अ़ज़मत को तो बस मेरे हवाले कर देना।"

वहाँ मुहम्मद कामिल की माँ को उनकी बहन ने ठहरा लिया कि—"अय आपा, कभी-कभार तो तुम आई हो, भला एक हफ़्ता तो रहो।" लेकिन आदमी हर रोज़ यहाँ तमीज़दार बहू की ख़बर को आता था।

बाब सोलहवाँ

मामा की चौथी शरारत

मामा अज़मत ने बैठे-बिठाये एक बदज़ाती और की। उन दिनों लाट साहब की आमद थी। शहर की सफ़ाई के वास्ते हाकिम की तरफ़ से बहुत ताकीद हुई। हर मुहल्ले और हर कूचे में इश्तहार लगाये गए कि सब लोग अपने कूचे और गलियाँ साफ़ करें, दरवाज़ों पर सफ़ेदी करा लें, बदररौयें साफ़ रखें। अगर किसी जगह कूड़ा पड़ा मिलेगा तो जुरमाना किया जायगा। इसी मज़मून का एक इश्तहार उस मुहल्ले के फाटक पर भी लगाया गया। मामा अज़मत रात को जाकर मुहल्ले के फाटक से वो इश्तहार उखाड़ लाई और चुपके से अपने दरवाज़े पर लगा दिया। फिर अँधेरे से मुँह ख़ानम के बाज़ार में मुहम्मद कामिल की माँ से ख़बर करने दौड़ी गई। अभी मकान के किवाड़ भी नहीं खुले थे कि उसने जा आवाज़ दी। मुहम्मद कामिल की माँ ने आवाज़ पहचानी और कहा कि—"अरे दौड़ो, किवाड़ खोलो, अज़मत ऐसे नावक़्त क्यों भागी आई है !"

अज़मत सामने आई तो पूछा—"मामा ख़ैरियत है ?"

बदररौ—नाली; **नावक़्त**—बेवक़्त।

अज़मत बोली—"बीवी मकान पर इश्तहार इश्तहार क्या होता है (अय हय मुझ रण्डिया को तो सीधा नाम भी नहीं आता) लगा हुआ है। मालूम होता है हज़ारीमल ने नालिश कर दी है।"

मुहम्मद कामिल की माँ ने अपनी बहन से कहा—"लो बुआ, मैं तो जाती हूँ। जाऊँ हज़ारीमल को बुलाकर समझाऊँगी। ख़ुदा उसके दिल में रहम डाले।"

बहन बोली—"आपा मैं बहुत शरमिन्दा हूँ कि मुझसे रुपये का बन्दोबस्त न हो सका। लेकिन मेरे गले का तोड़ा मौजूद है, इसको लेती जाओ। गिरवी रखने से काम निकले तो ख़ैर वरना बेच डालना।"

मुहम्मद कामिल की माँ ने कहा—"ख़ैर, मैं तोड़ा लिये तो जाती हूँ, मगर उसका रुपया बहुत बढ़ गया है एक तोड़े से क्या होगा।"

बहन बोली—"आख़िर उन्होंने भी तो कहा है कि मैं किसी दूसरे महाजन से क़र्ज़ ला दूँगा। तुम बिस्मिल्ला करके सवार हो। वो आते हैं तो मैं उनको भी पीछे से भेजती हूँ।"

ग़र्ज़ मुहम्मद कामिल की माँ मकान पर पहुँची, दरवाज़े पर उतरी तो इश्तहार लगा देखा अफ़सोस की हालत में चुप आकर बैठ गई। सास की आमद सुनकर असग़री कोठे पर से उतरी, सलाम किया। सास को मग़मूम देखकर पूछा—"आज अम्माँजान आपका चेहरा बहुत उदास है।"

रंडिया—राँड या बेवा, हिक़ारत के तौर रंडिया कहा है; **मग़मूम**—ग़मग़ीन।

सास—"हाँ महाजन ने नालिश कर दी है। रुपये की सूरत कहीं से नहीं बन पड़ती। अमीर बेगम ने भी जवाब दे दिया और मकान पर इश्तहार लग चुका, देखिये क्या होता है।"

असग़री—"आप हरगिज़ इसका फ़िक्र न कीजिए। अगर हज़ारीमल नें नालिश कर दी है तो कुछ हर्ज नहीं तमाशाख़ानम की सुसराल में उसका लेन-देन है। तमाशा-ख़ानम ने मुझसे पक्का वायदा किया है कि मैं हज़ारीमल को समझा दूँगी और अगर नहीं मानेगा तो उसके रुपये की कुछ सबील हो जायगी। आप इतना सोच क्यों करती हैं? हज़ारीमल को अपनी तरफ़ से करना था कर चुका।"

सास—"कामिल होता तो मैं उसको हज़ारीमल तक भेजती।"

असग़री—"यूँ आपको इख़्तियार है। लेकिन मेरे नज़दीक महाजन से डरना किसी तरह मुनासिब नहीं वरना उसको आयंदा के वास्ते दिलेरी हो जायगी और आये दिन नालिश का डरावा दिखाया करेगा। सबसे बेहतर यह है कि इधर का इशारा न हो और बाहर से कोई दवाव उस पर पड़ जाये कि वो नालिश की पैरवी से बाज़ रहे।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"तमाशाख़ानम अभी लड़की है, कचहरी-दरबार की बातें क्या जाने। ऐसा न हो उनके भरोसे में काम बिगड़ जाय और मौक़ा हाथ से जाता रहे।"

असग़री—"तमाशाख़ानम बेशक लड़की हैं, मगर मैंने बात

सबील—रास्ता; **दिलेरी**—हिम्मत।

पक्की कर ली है और मुझको इत्मीनान है।"

ये बातें हो ही रही थीं कि मियाँ मुसल्लम ने दरवाज़े पर आवाज़ दी। असग़री ने कहा—"देखिये मुसल्लम आया है ज़रूर इस मामले में कुछ ख़बर लाया होगा। असग़री ने महमूदा को इशारा किया। महमूदा कोठरी में चली गई*। मुसल्लम को अन्दर बुलाया और पूछा—"मुसल्लम क्या ख़बर लाये।"

मुसल्लम ने कहा—"आपा ने तुमको सलाम कहा है और मिज़ाज का हाल पूछा है और कहा है कि हज़ारीमल को बुलवाया था, बहुत कुछ डरा-धमका दिया है। और उसने वादा कर लिया है कि नालिश न होगी।"

यह बात सुनकर मुहम्मद कामिल की माँ को किसी क़दर तसल्ली हुई। लेकिन असग़री हैरत में थी कि तमाशाख़ानम ने तो यह कहला भेजा है और हज़ारीमल नालिश कर बैठा है यह क्या बात है। और इश्तहार का मामला भी ग़ज़ब है। मैं घर में बैठी-की-बैठी ही रही, मुझको ख़बर नहीं। हाकिम का इश्तहार होता तो कोई चपरासी-प्यादा पुकारता, आवाज़ देता। मुहम्मद रुख़सत हुआ तो महमूदा से असग़री ने कहा—"जाओ दरवाज़े पर जो काग़ज़ लगा हुआ है उसको चुपके से उखाड़ लाओ।" महमूदा काग़ज़ उखाड़ लाई। असग़री ने पढ़ा तो सफ़ाई का हुक्म था, नालिश का कुछ मज़कूर न

मुसल्लम—तमाशाख़ानम का भाई; *क्योंकि महमूदा को पर्दे के दस्तूर के मुताबिक़ छिपना ज़रूरी था; **मज़कूर**—ज़िक्र।

था। समझ गई कि यह भी उस अज़मत की चालाकी है। सास पर तो यह हाल ज़ाहिर नहीं किया लेकिन उनका अच्छी तरह इत्मीनान कर दिया कि आप दिलजमई से बैठी रहिये, नालिश का हरगिज़ खटका नहीं।

दिलजमई—धीरज; खटका—डर।

बाब सतरहवाँ

असग़री ने किस हिकमत से अपने मियाँ को शबबरात में अनार-पटाख़े छोड़ने से बाज़ रखा।

सास ने कहा—"तुम्हारे कहने से नालिश की तरफ़ से तो दिलजमई हुई, लेकिन शबबरात और रमज़ान सर पर चला आता है। दोनों त्यौहारों में ख़र्च-ही-ख़र्च है। लाहौर से ख़त आना भी मौक़ूफ़ है। ख़र्च का फ़िक्र तो मेरा लहू ख़ुश्क किये डालता है।"

असग़री ने कहा—"रमज़ान के तो अभी बहुत दिन पड़े हैं। ख़ुदा सबब-उल-असबाब है, उस वक़्त तक ग़ैब से कोई सामान पैदा हो जायगा। हाँ शबबरात के चार ही दिन रह गये। सो शबबरात कोई ऐसा त्यौहार नहीं जिसमें बहुत ख़र्च दरकार हो।"

सास ने कहा—"मेरे घर तो साल-दर-साल शबबरात में बीस रुपये उठते हैं। पूछो यही अज़मत ख़र्च करने वाली

शबबरात—मुसलमानों में रोज़ों के महीने से दो हफ़्ते पहले शब-बरात का त्यौहार होता है जिसमें आतिशबाज़ी छोड़ी जाती है; **बाज़ रखना**—दूर रखना; **रमज़ान**—मुसलमानों के बरस का नौवाँ महीना, रोज़ों का महीना रमज़ान है; **सबब-उल-असबाब**—सबब या हेतु बनाकर खड़ा करने वाला; **ग़ैब से**—परोक्ष से।

मौजूद है।"

असग़री ने कहा—"ख़र्च करने का क्या अजब है, लेकिन एक ज़रूरत के वास्ते और एक बेज़रूरत। सो शबबरात में कोई ऐसी ज़रूरत नहीं जिस वास्ते इतना रुपया दरकार हो।"

सास ने कहा—"बुआ, पीर, पैग़म्बर, बड़े बुज़ुर्गों की फ़ातिहा मक़दम है। फिर लोगों के घर भेजना-भिजवाना ज़रूर है। लो कहने को ज़रा सी बात है, पाँच रुपये की एक रक़म तो असल ख़ैर से तुम्हारे मियाँ और बी महमूदा के अनार-पटाख़ों की है। मुहम्मद कामिल का ब्याह हो गया तो क्या है, ख़ुदा रखे उसके मिज़ाज में तो अभी तक बचपन की बातें चली जाती हैं। जब तक सौ अनार बीस गड्डी पटाख़े न ले चुकेगा मेरी जान खा जायगा और महमूदा भी रो-रोकर अपना बुरा हाल करेगी।"

असग़री—"अम्माँ जान, मुसलमानों में शबबरात की कुछ एक रस्म सी पड़ गई है वरना दीन में तो इसकी कुछ असल-वसल ही नहीं है। हमारे अब्बा को शबबरात की ऐसी चिढ़ है कि दूसरों के यहाँ का आया हुआ मीठा न आप खायें और न हम लोगों को खाने दें। अव्वल तो अब्बा शहर में जम-ही-जम होते हैं। लेकिन जिस बरस आपा का ब्याह हुआ

फ़ातिहा—क़ुरान के सूरये-अलहाद का नाम है इसको खाने वग़ैरह पर पढ़कर बुज़ुर्गों को सवाब या पुण्य पहुँचाया जाता है; **मक़दम**—सब कामों से पहले करने का; **मीठा**—हलवा; **जम**—शाब्दिक अर्थ तो यह है कि हमेशा होते हैं, मगर मतलब है नहीं होते। औरतें बदगुमानी के डर से उल्टी बात कहती हैं।

उसको शबबरात यहीं हुई थी। अम्मा भतेरा लड़ीं-झगड़ीं, मगर अब्बा ने कहा मैं तो यह बदात घर में होने देने का नहीं और यूँ ख़र्च को कहो तो मुझसे दस की जगह बीस लो और ग़रीबों को दो। पर शबबरात के नाम से तो मैं एक फूटी कौड़ी देने वाला नहीं।"

असग़री को सास—'तुम्हारे सुसरे का भी यही कहना है। शबबरात का हलुवा, ईद की सिवैयाँ, बीबी का कूँडा, सहनक, मन्नत, अुर्स, क़ब्रों की चादर, पंखा, बसंत, फूल वालों की सैर,

---

बदात (बदअ़त)—धर्म में जो नई बात लोगों ने निकाल खड़ी की हों; **शबबरात**—शबबरात को हलुवे पर और ईद को सिवैयों पर फ़ातिहा दिलवाते हैं। मौलवियों का कहना यह है कि मज़हब में किसी वक़्त और खाने की पाबंदी नहीं है। खुदा का देना जब कभी जो कुछ हो दे दिया जाय; **कूँडा**—मुहम्मद साहब की कन्या बीबी-फ़ातिमा के नाम की नियाज़ या फ़ातिहा जिसमें सच्चरित्र सुहागिनों को भोजन कराया जाता है। इसको बीबी का कूँडा या सहनक कहते हैं। बीबी की नियाज़ मर्द नहीं खाने पाते; **मन्नत**—मरे हुए लोगों से प्रार्थना करना; **अुर्स**—मरे हुए बुज़ुर्गों की बरसी या छहमाही को अुर्स कहते हैं; **चादर**—बुज़ुर्गों की क़ब्रों पर चादरें और फूलों के पंखे चढ़ाये जाते हैं; **बसंत**—जिन दिनों सरसों फूलती है यानी आती गरमियों बसंत का मेला होता है और बुज़ुर्गों की क़ब्रों पर बसंत के फूल और पंखे चढ़ाये जाते हैं; **फूल वालों की सैर**—दिल्ली से ग्यारह मील हज़रत कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी का मज़ार है। बरस के बरस बरसात में उनके मज़ार पर एक मेला होता है जिसको फूल वालों की सैर कहते हैं।

सुल्तानजी की सतरहवीं, सहरा, कंगना, मंढा, नौबत, नक़्क़ारा, ढोलक, साचक़, आराइश मौलवी तो सब ही चीज़ों को मना करते हैं। पर कमबख़्त दुनिया भी तो नहीं छोड़ी जाती। अब किसी के यहाँ से हिस्सा-बख़रा आये तो ख़्वाही न ख़्वाही लेना ही पड़ता है। और यह भी नहीं हो सकता जैसे हमसाई कहा करती हैं—लेना रवा, देने के नाम उल्टा तवा। फिर घर के मर्दों के नाम से यूँ तो कौन देता है बरसवें दिन त्यौहार के बहाने उनकी अरवाह को दो चपाती, कौड़ी भर मीठे का सवाब पहुँच जाता है तो इतने से भी क्या गये-गुज़रे हुए।"

असग़री—"ऐसा ही शबबरात का करना ज़रूरी है तो फ़ातिहा के वास्ते पाँच छह सेर का मीठा बहुत होगा। भेजना-भिजवाना तो इधर से आया उधर गया और महमूदा अब पटाख़ों के वास्ते ज़िद नहीं करेंगी। मैं उनको समझा लूँगी। ग़र्ज़

सतरहवीं—दिल्ली से तीन मील हज़रत सुल्तान निज़ामुद्दीन का मज़ार है उनका अुर्स सतरहवीं तारीख़ को पड़ता है इससे सतरहवीं मशहूर है; **सहरा**—फूलों का सहरा जो दूल्हे के सर पर बाँधते हैं और जो मुँह पर लटकता है; **कंगना**—सूत का कंगन जो दूल्हे की कलाई पर बाँधा जाता है; **मंढा**—ब्याह में शामियाना या मंडप; **साचक़**—दूल्हे की तरफ़ से वरी यानी दुलहन का जोड़ा मिठाई, मेंहदी वग़ैरह सामान जो ब्याह से पहले दुलहन को भेजा जाता है; **आराइश**—बरात के साथ जो टट्टियाँ वग़ैरह रहती हैं उसे आराइश कहते हैं। इसे फुलवाड़ी भी कहते हैं। **ख़्वाही न ख़्वाही**—चाहो या न चाहो, मजबूरन; **रवा**—जायज़; **अरवाह**—रूह का बहुवचन है जिसका अर्थ है आत्मा।

शबबरात तो मेरी तरफ़ आई गई हुई। इस वास्ते आप क़र्ज़ का फ़िक्र न कीजिये। किसी बात में भी कमी हो तो मुझ को उलाहना दीजियेगा।"

सास से तो ये बातें हुईं। लेकिन असग़री सोच में थी कि मियाँ को अनार पटाख़ों से किस तरह बाज़ रखूँगी। आख़िरकार इस हिकमत से असग़री ने मियाँ को समझाया कि बात भी कह गुज़री और मियाँ को नागवार भी न हुआ। मुहम्मद कामिल के सामने छेड़कर महमूदा से पूछा—"क्यों बुआ, तुमने शबबरात के वास्ते क्या तैयारी की ?"

महमूदा बोली—"भाई अनार पटाख़े लायेंगे तो हमको भी देंगे।"

अभी मुहम्मद कामिल कुछ कहने न पाया था कि असग़री ने कहा—"भाई तो ऐसी वाहियात चीज़ तुम्हारे वास्ते क्यों लाने लगे ? महमूदा अनार-पटाख़े में क्या मज़ा होता है।"

महमूदा—"भाभी जान, जब अनार-पटाख़े छूटते हैं तो कैसी बहार होती है ?"

असग़री—"मुहल्ले में सैकड़ों अनार छूटेंगे, कोठे पर से तुम भी देख लेना।"

महमूदा—"वाह, और हम न छोड़ें ?"

असग़री—"तुमको डर नहीं लगता ?"

महमूदा—"क्या मैं अपने हाथ से थोड़े ही छोड़ती हूँ।"

मेरी तरफ़—याने आपसे कोई वास्ता नहीं यह मेरे ज़िम्मे रहा।

असग़री—"फिर जिस तरह तुमने अपने अनार छूटते देखे वैसे ही मुहल्ले के। और महमूदा सुनो यह बुरा खेल है इसमें जल जाने का खौफ़ है। एक मर्तबा हमारे मुहल्ले में एक लड़के के हाथ में अनार फट गया था। दोनों आँखें फूट कर चौपट हो गईं। इसको देखना भी हो तो दूर से और महमूदा तुम अम्माँजान का हाल देखती हो उदास हैं या नहीं।"

महमूदा—"उदास तो हैं।"

असग़री—"कभी तुमने यह भी ग़ौर किया कि क्यों उदास हैं।"

महमूदा—"यह तो मालूम नहीं।"

असग़री—"वाह, इसी पर तुम कहती हो कि मैं अम्माँ को बहुत चाहती हूँ।"

महमूदा—"अच्छी भाभीजान अम्माँजान क्यों उदास हैं।"

असग़री—"ख़र्च की तंगी है। महाजन क़र्ज़ नहीं देता। इस सोच में हैं कि महमूदा अनारों के वास्ते ज़िद करेगी तो कहाँ से मँगवा कर दूँगी।"

महमूदा—"तो हम अनार नहीं मँगायेंगे।"

असग़री—"शाबाश! तुम बहुत ही अच्छी बेटी हो। और महमूदा को गले लगाकर प्यार किया।"

महमूदा—"अगले बरस जब ख़ुदा करेगा, अम्माँ का

नहीं छोड़ती की जगह थोड़े ही छोड़ती भी कहते हैं; **चौपट**—याने वो शख़्स बिल्कुल अन्धा हो गया।

हाथ फ़राग़त होगा, अब्बा ख़र्च भेजेंगे तो अब के बदले के अनार-पटाख़े भी हम तब ही छोड़ेंगे। क्यों न भाभीजान ?"

असग़री—"छोड़ तो लोगी मगर महमूदा अनार-पटाख़ों का छोड़ना गुनाह की बात है, अल्ला मियाँ बड़े नाराज़ होते हैं।"

महमूदा—"अय हय, फिर ये सब लोग जो इतनी सारी आतिशबाज़ी छोड़ते हैं।"

असग़री—"लोगों की भली चलाई। लोग झूठ नहीं बोलते ? चोरी नहीं करते, पराया हक़ नहीं मारते ?"

महमूदा—"फिर हमको अम्माँजान ने तो कभी मना नहीं किया ?"

असग़री—"इस ख़याल से कि तुम्हारा जी कुढ़ेगा।"

महमूदा—"भला इसमें गुनाह की क्या बात है ? किसी के लग न जाय ?"

असग़री—"महमूदा, अल्ला मियाँ के यहाँ चलकर रत्ती-रत्ती का हिसाब देना होगा। अनार-पटाख़े तो बड़े दामों की चीज़ हैं अगर कोई आदमी पानी भी बेसबब लुंढाता है उससे भी अल्ला मियाँ पूछेंगे—तूने हमारा पानी बेवजह लुंढाया क्यों ? इसी तरह पर वक़्त का, रुपये-पैसे का, खाने का, कपड़े का, तनदुरुस्ती का। ग़र्ज़ ख़ुदा ने जितनी नैमतें अपनी मेहरबानी से दी हैं सबका हिसाब देना पड़ेगा और जब तुम बताओगी हमने इतने पैसों के अनार-पटाख़े लिये। अल्ला मियाँ कहेंगे—तुमने यही पैसे किसी ग़रीब, मोहताज को क्यों न दिये। लोग भूखे

फ़राग़त—खुला होगा।

मरें और कौड़ी-कौड़ी को तरसें और तुम मेरी दी हुई दौलत को यों आग लगाओ। उस वक़्त महमूदा तुम क्या जवाब दोगी ? तुम अल्ला मियाँ से डरती नहीं ?"

महमूदा—"अय हय, भाभीजान अब क्या करूँ ?"

असग़री—"आगे को तोबा करो।"

महमूदा—"तो अल्ला मियाँ मेरी ख़ता माफ़ कर देंगे।"

असग़री—"बेशक माफ़ कर देंगे। वो तुमको अम्माँजान से बहुत ज़्यादा चाहते हैं।"

महमूदा—"अल्ला मियाँ मुझे इतना क्यों चाहते हैं ?"

असग़री—"इस वास्ते चाहते हैं कि उन्होंने तुमको बनाया है, पैदा किया है। तुम अपने पाले हुए बिल्ली के बच्चे को कैसा चाहती हो।"

महमूदा—"तो कैसे तोबा करूँ ?"

असग़री—"दिल से पक्का इरादा कर लो कि फिर ऐसा नहीं करोगी।"

महमूदा—"मैं अनार, पटाख़े मँगवाने की भी नहीं और कोई मुफ़्त भी देगा तो नहीं लूँगी।"

असग़री ने फिर महमूदा को प्यार किया। मुहम्मद कामिल चुप बैठा हुआ यह सब सुनता रहा। चूँकि माक़ूल बात थी उसके दिल ने क़बूल कर ली और उसी वक़्त नीचे उतरकर माँ के पास गया और कहा—"अम्माँ मैंने सुना है तुम शबबरात की सोच में बैठी हो। तो बी मेरा फ़िकर मत करो।

तोबा—किसी अनुचित कार्य को भविष्य में न करने की शपथ-पूर्वक प्रतिज्ञा। **माक़ूल**—उचित।

मुझको अनार, पटाख़े दरकार नहीं और महमूदा भी कहती है कि मैं नहीं मँगाऊँगी और हम दोनों ने तोबा कर ली है।"

ग़र्ज़ ख़र्च की एक रक़म तो यों कम हुई। फ़ातिहे के वास्ते दो रुपये में ख़ासा मीठा बन गया। भेजने के वास्ते असग़री ने ख़ुद एहतिमाम किया। जब बाहर से हिस्सा आया घर में न ठहरने दिया। देकर आदमी बाहर निकला और उसने कहा फ़लानी जगह पहुँचा दो। जिस-जिसको देना था सबको नाम-बनाम पहुँच गया और दो रुपये में अच्छी-ख़ासी शबबरात हो गई। अज़मत यह बन्दोबस्त देखकर जल ही तो गई। इस वास्ते कि उसकी बड़ी रक़म मारी गई। जितना बाहर से आता वो सब लेती और जो घर से जाता आधा उस में से निकालती और शबबरात का हलुवा जो ख़ुश्क कर रखती थी महीनों पंजीरी की तरह फाँकती।

पंजीरी—गेहूँ का दरदरा भुना हुआ आटा खांड मिला हुआ।

बाब अठारहवाँ

असग़री के बाप और सुसरे का आना, लोगों का हिसाब-किताब होना और आख़िरकार मामा अज़मत का रुसवा होकर निकाला जाना।

शबबरात के बाद असग़री के बाप की आमद शुरू हुई और नौ-दस दिन बात-की-बात में गुज़र गये। रमज़ान से चार दिन पहले दूरअंदेशख़ाँ साहब देहली में दाखि़ल हुए। असग़री ने पहले से अपने बाप की आमद सुन रखी थी और सास और मियाँ से ठहर गया था कि जिस दिन तहसीलदार साहब आयेंगे उसी दिन मैं उनसे मिलने जाऊँगी। जब असग़री को बाप के आने की ख़बर मालूम हुई फ़ौरन डोली मँगा जा पहुँची। बाप ने गले से लगा लिया और आबदीदा हुए। देर तक हाल पूछते बताते रहे और असग़री से कहा आपके हुक्म के मुताबिक ख़ैरअन्देशख़ाँ लाहौर गए हैं। इंशा अल्ला कल या परसों समधी साहब को लेकर दाख़िल होंगे। उनका एक ख़त भी मुझको राह में मिला था। समधी साहब को रुख़सत मिल गई है। ग़र्ज़ उस रात-भर और अगले दिन-भर असग़री मां के यहाँ रही और शाम के क़रीब बाप से कहा कि—"अगर इजाज़त दीजिये तो आज मैं चली जाऊँ।"

रुसवा—बदनाम; **आबदीदा**—आँखों में आँसू डबडबा आये।

बाप ने कहा—"अजी एक हफ़्ता तो रहो, हम समधिन को कहला भेजेंगे।"

असग़री ने कहा—"जैसा आप इरशाद फ़रमायें तामील करूँ। लेकिन अब्बाजान के आने से पहले घर में मेरा मौजूद रहना मसलहत मालूम होता है।"

बाप ने सोचकर कहा—"हाँ बात तो ठीक है।"

ग़र्ज़ असग़री बाप से रुख़सत हो मग़रिब से पहले घर आ मौजूद हुई। अगले दिन खाने के वक़्त मौलवी मुहम्मद फ़ाज़िल साहब, मुहम्मद कामिल के बाप भी आ पहुँचे। ये मौलवी साहब लाहौर के एक रईस की सरकार में मुख़्तार थे। पचास रुपये महीना तनख़ा मुक़र्रर थी और मकान और सवारी रईस के ज़िम्मे। ख़ैरअंदेशख़ाँ असग़री की तहरीर के मुवाफ़िक़ लाहौर गया और असग़री का ख़त मौलवी मुहम्मद फ़ाज़िल साहब को दिखाया। मौलवी साहब बहू का ख़त देखकर बाग़-बाग़ हो गए और यूँ शायद रुख़सत न भी लेते अब बहू के देखने के इश्तियाक़ में रईस से बहुत कह-सुनकर एक महीने की रुख़सत लेकर ख़ैरअंदेशख़ाँ के साथ हो लिये। चूँकि असग़री ब्याह के बाद सुसरे के सामने नहीं हुई थी, सुसरे को आते देखकर कोठे पर जा बैठी। मुहम्मद कामिल की माँ हैरत में थी ये क्योंकर आ गये। ग़र्ज़ खाने के बाद बातें शुरू हुईं। मौलवी साहब ने बीवी से कहा—"सुनो

इरशाद—हुक्म; **मसलहत**—मुनासिब। **मग़रिब**—सूर्यास्त से पहले पढ़ी जाने वाली नमाज़; **तहरीर**—लिखावट; **इश्तियाक़**—अटूट अभिलाषा या कामना।

साहब ! मुझको तो तुम्हारी छोटी बहू ने खींच बुलाया है।" और सब हाल ख़त का और खैरअंदेशखाँ के जाने का बीबी से बयान किया और कहा कि—"बहू को बुलाओ।"

सास कोठे पर गईं और कहा—"बेटी, चलो शर्म की क्या बात है, तुम तो उनकी गोदों में खेली हो।"

सास के कहने से असग़री उठकर साथ हो ली और सुसरे को झुककर सलाम किया और अदब से अलहदा बैठ गई। मौलवी साहब ने कहा—"सुनो भाई, हम तो सिर्फ़ तुम्हारे बुलायें हुए आये हैं। तुम्हारा ख़त देखकर हमारा जी बहुत ख़ुश हुआ। ख़ुदा तुम्हारी उम्र और नेकबख़्ती में बरकत दे। और हक़ीक़त में हमारे घर के अच्छे नसीब हैं जो तुम हमारे घर में आईं और अब मुझको यक़ीन हुआ कि घर के कुछ दिन फिरे। और इंशा अल्ला तुम्हारी मर्ज़ी और तुम्हारी राय के मुवाफ़िक़ सब इन्तज़ाम किया जायगा।"

ग़र्ज़ दो-चार दिन तो मौलवी साहब मिलने-मिलाने में रहे। फिर अव्वल के दो-चार रोज़ रोज़े के सबब घर के काम की तरफ़ मुतवज्जा न हुए। एक दिन बहू को बुलाकर पास बिठाया और मामा अज़मत से कहा—"मामा हमारे रहते सब हिसाब-किताब कर लो। जिस-जिसका लेना-देना है सब लिखा दो ताकि जिसको जितना मुनासिब हो दिया जाय और जो बाक़ी रह जाय उसकी क़िस्तबंदी कर दी जाय।"

मामा ने कहा—"एक का हिसाब हो तो ज़बानी भी याद रखा जाय। बज़ाज़, कसाई, कुँजड़ा, हलवाई सब ही का देना है और

नेकबख़्ती—सौभाग्य; मुतवज्जा—ध्यान देना।

हज़ारीमल का बड़ा भारी हिसाब अलग है। जिसको जितना देना हो मुझको दीजिये, ले जाकर आपके नाम जमा करा दूँ।"

मौलवी साहब तो सीधे-सादे आदमी थे, देने को आमादा हो गए। असग़री ने कहा—"यूँ अ़ला-उल-हिसाब देने से क्या फ़ायदा। पहले हर एक का क़र्ज़ा मालूम हो, तब उसको सोच-समझकर देना चाहिए।"

मामा—"खाने से फ़राग़त पाऊँ तो जाकर हर एक से पूछ आऊँगी।"

असग़री—"पूछ आने से क्या होगा? जिसका लेना हो यहाँ आकर हिसाब कर जाय।"

मामा—"बीवी आपने तो एक बात कह दी। अब मैं कहाँ-कहाँ बुलाती फिरूँ और वो लोग अपने काम-धन्दे से कब छुट्टी पाते हैं जो मेरे साथ चले आयँगे।"

असग़री—"मामा कोई रोज़-रोज़ का बुलाना नहीं है, एक दिन की बात है, जाकर बुला लाओ, शाम के खाने का कुछ बंदोबस्त हो जायगा। तुम आज यही काम करो। और लेन वाले तो देने का नाम सुनकर दौड़ेंगे। हज़ारीमल नालिश करने दो कोस कचहरी तो गया, यहाँ आते क्या उसके पाँव में मेंहदी लगी है? और दूर कौन है। कुँजड़ा, क़साई, बनिया, हलवाई सब इसी गली में हैं। सिर्फ़ बज़ाज़ और हज़ारीमल

अ़ला-उल-हिसाब—अ़ला-उल-हिसाब के ये मानी हैं कि यूँ ही बेहिसाब कुछ दे दिया, इस ख़याल से कि जब हिसाब होगा तो जो कुछ दिया है मुजरा हो जायगा। इसे हिसाब पेटे भी कहते हैं।

दूर हैं उनको कल पर रखो। यह फुटकल हिसाब आज तय हो जाय।"

मामा अज़मत की किसी तरह मर्ज़ी न थी कि हिसाब हो। लेकिन असग़री ने बातों में ऐसा दबाया कि कुछ जवाब न बन पड़ा। सबसे पहले हलवाई आया। पूछा गया—"लाला तुम्हारा क्या पाना है ?"

हलवाई—"तीस रुपये।"

पूछा गया—"क्या-क्या चीज़ तुम्हारे यहाँ से आई ? तीस रुपये तो बहुत ज़्यादा बताते हो।"

हलवाई—"साहब तीस रुपये भी कुछ बहुत होते हैं। एक रक़म दस सेर शक्कर तो इसी शबबरात में आई।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"अरे कैसी शक्कर ? अब के मर्तबा तो हमारे जो कुछ पका-पकाया बाज़ार से नक़्द आया।"

यह सुनकर मामा अज़मत का रंग फ़क़ हो गया और हलवाई से बोली कि—"वो दस सेर शक्कर तूने इनके हिसाब में क्यों लिख ली ? वो तो मैं दूसरे घर के वास्ते ले गई थी। और तुझको जता भी दिया था।"

हलवाई—"मुझसे तो तुमने किसी घर का नाम नहीं लिया। इसी सरकार के नाम से लाई हो। वरना मुझे क्या फ़ायदा था कि दूसरे की चीज़ इनके नाम लिखता और मुझसे तो और किसी सरकार से उचापत भी नहीं।"

ग़र्ज़ मामा खिसियानी बातें करने लगी। मौलवी साहब

फुटकल—परचूनी; **फ़क़**—यानी चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं।

ने कहा—"भला शक्कर की रक़म तो रहने दो और चीजें बताओ।"

ग़र्ज़ इसी तरह बहुत सी चीजें उसने बताईं जो उम्र भर घर में नहीं आई थीं। चार सेर बालूशाही मौलूद शरीफ़ के वास्ते और मज़ा यह कि यहाँ कभी किसी ने मौलूद की मज-लिस नहीं की। सिर्फ़ छह-सात रुपये तो सच निकले बाक़ी सब झूठ। मौलवी साहब का जी जल गया और बेतरह उनको ग़ुस्सा आया और पूछा—"क्यों री नमकहराम अज़मत, ऐसा ही दुनिया-भर का क़र्ज तूने इस घर पर कर रखा है और यों तूने घर को ख़ाक में मिलाया है ?"

हलवाई हो चुका तो कुँजड़ा आया। उसने कहा—"मियाँ मेरा तो मामूली हिसाब है दो आने रोज़ की तरकारी।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"अरे सेर भर तरकारी मेरे घर में आती है दो आने रोज़ को हुई ?"

कुँजड़ा—"हज़रत मेरी दुकान से मामा तीन सेर लाती है।"

मामा—"हाँ तीन सेर लाती हूँ—सेर भर तुम्हारे नाम से, सेर भर अपनी बेटी के वास्ते और सेर भर दूसरे घर के वास्ते। मैं क्या मुकरती हूँ ? यह मुआ सब तुम्हारे नाम बताता है।"

कुँजड़ा—"अरी बुढ़िया बेईमान ! हमेशा से तू इसी घर के हिसाब में तीन सेर लाती रही और जब रुपया मिला इसी

बालूशाही—बालूशाही को ख़ुरमा भी कहते हैं; **मौलूद**—पैग़म्बर साहब के जन्मदिन का जलसा; **मुकरना**—इन्कार करना।

घर से मिला।"

क़साई और बनिये का हिसाब हुआ तो उसमें भी हज़ारों फ़रेब निकले और साबित हुआ कि मामा इसी घर के सौदे में अपनी बेटी ख़ैरातन और दो-तीन हमसाइयों के घर पूरे करती थी। इसी घर के नाम सौदा लाती और दूसरी जगह बेच डालती। ग़र्ज़ शाम तक फुटकल हिसाब हुआ और अब बज़ाज़ और हज़ारीमल बाक़ी रहे। मौलवी साहब ने कहा—"अब नावक़्त हो गया है। आज मुल्तवी करो कल देखा जायगा।" लेकिन मौलवी साहब ने आहिस्ता से यह भी कहा कि—"ऐसा न हो अज़मत भाग जाये।"

असग़री—"घर-बार, लड़के-बच्चे छोड़कर कहाँ भाग जायगी। हाँ शायद ग़ैरतमन्द हो तो कुछ खा-पी ले। मगर ऐसी ग़ैरतमंद होती तो ऐसा काम क्यों करती। ताहम हिफ़ाज़त ज़रूर है। लेकिन फ़क़त इसी क़दर कि बाहर आती-जाती को कोई देखता रहे।"

मौलवी साहब के ख़िदमतग़ार जो साथ आये थे एक को चुपके से कह दिया कि मामा को आते-जाते देखते रहो। जब खाने से फ़ारिग़ हुई मामा चुपके से उठ बाहर चली। ख़िदमतगार दबे पाँव पीछे-पीछे साथ हुआ। मामा पहले तो अपने घर गई और वहाँ से कुछ बग़ल में मार तीर की तरह बज़ाज़ के मकान पर जाकर उसको आवाज़ दी। बज़ाज़ घबराकर बाहर निकला कि—"बड़ी बी तुम इस वक़्त कहाँ ?"

हमसाइयों—पड़ौसियों के; **ग़ैरतमन्द**—स्वाभिमानी; **बग़ल में मारना**—बग़ल में दबाना।

अज़मत—"मौलवी साहब आये हुए हैं, जिस-जिसका देना है सबका हिसाब होता है। कल तुम भी बुलाये जाओगे तो ऐसी बात मत करना जिससे मेरी फ़ज़ीहत हो।"

बज़ाज़—"हिसाब में तुम्हारी फ़ज़ीहत की क्या बात है ?"

मामा—"लाला, तुम जानते हो यह कमबख़्त लालच बहुत बुरा होता है। सरकार के हिसाब में मैं अपने वास्ते भी तुम्हारी दुकान से कभी-कभी लट्ठा, नैनसुख, दरेस ले गई हूँ।"

बज़ाज़—"क्या मालूम तुम अपने वास्ते क्या ले गईं ?"

मामा—"मुझको इस वक़्त हिसाब करने का तो होश नहीं। लेकिन दो-चार थान दरेस और लट्ठे नैनसुख के और दस गज़ ऊदा क़न्द मेरे हिसाब में निकलेगा। तू मेरे हाथ की चार चूड़ियाँ सोलह रुपये की हैं, घिसघिसाकर एक रुपया कम हो गया होगा, पन्द्रह रुपये मेरे नाम से कम कर देना और दो-चार रुपये और जो मेरे नाम निकलेंगे मैं देने को मौजूद हूँ।

बज़ाज़—"चूड़ियाँ तुम देती हो, ख़ैर मैं लिये लेता हूँ। रात का वक़्त है, खाता भी दुकान पर है बेदेखे क्या मालूम हो, क्या गया है और क्या पाना है।"

अज़मत—"इस वक़्त मेरी इज़्ज़त तुम्हारे हाथ है। जिस तरह हो सके बचाओ।

बज़ाज़ से रुख़सत हो सीधी हज़ारीमल के घर पहुँची। वो भी हैरान हुआ और बोला कि तुम इस वक़्त कहाँ ? उसके पाँव पड़कर रोकर कहने लगी कि—"मुझसे एक ख़ता हो गई है।"

हज़ारीमल—"वो क्या ?"

अज़मत—"तुम वादा करो कि माफ़ कर दोगे तो मैं कहूँ !"

हज़ारीमल—"बात तो कहो ।"

अज़मत—"चार महीने हुए लाहौर से ख़र्च आया था और मौलवी साहब ने सौ रुपये तुमको भेजे थे, वो मेरे पास ख़र्च हो गये । और सरकार में डर के मारे मैंने ज़ाहिर नहीं किया । अब मौलवी साहब आये हुए हैं तुमको हिसाब के वास्ते तलब करेंगे । मैं उस रुपये का ठिकाना लगा दूँगी, तुम इस रक़म को मत ज़ाहिर करना ।"

हज़ारीमल—"दो-चार रुपये की बात होती तो मैं छिपा भी लेता । इकट्ठे सौ रुपये तो मेरे किये छिप नहीं सकते ।"

मामा—"क्या सौ रुपये का भी मेरा ऐतबार नहीं ?"

हज़ारीमल—"साफ़ बात तो यह है कि तुम्हारा एक कौड़ी का भी ऐतबार नहीं । जिस घर में तुमने उम्र-भर परवरिश पाई उन ही के साथ तुमने यह सलूक किया तो दूसरे के साथ कब चूकने वाली हो ।"

अज़मत—"हाँ लाला । जब बुरा वक़्त सर पर आता है तो अपने दुश्मन हो जाते हैं । ख़ैर अगर तुमको ऐतबार नहीं तो लो ये मेरी बेटी की पोंचियाँ और जोशन रख लो ।"

हज़ारीमल—"हाँ यह मामले की बात है । लेकिन दिन हो तो माल परखा जाय, तब मालूम हो कितने का है । लेकिन

तलब करना—बुलाना; **ऐतबार**—विश्वास, भरोसा । **सलूक**—व्यवहार; **जोशन**—बाज़ूबन्द, भुजबन्द ।

अटकल से तो सब माल पचास-साठ का होगा।"

मामा अज़्मत—"अय हय, लाला ऐसा ग़ज़ब तो मत करो। अभी चार महीने हुए दोनों अदद नये बनवाये थे। सवा सौ की लागत के हैं।"

हज़ारीमल—"इसमें बुरा मानने की क्या बात है? तुम्हारी चीज़ सौ की हो या दो सौ की, कोई निकाले लेता है? तुलवाने से जितने की ठहरे मालूम हो जायगा।"

यह सब बन्दोबस्त करके मामा घर वापस आई और मौलवी साहब के ख़िदमतगार ने पाँव दबाने में यह सब हाल मौलवी साहब से बयान किया और मुहम्मद कामिल की माँ के ज़रिये से असग़री को भी मालूम हुआ। सुबह हुई तो बज़ाज़ और हज़ारीमल तलब हुए। हिसाब में कुछ हुज्जत होनें लगी। मामा चिढ़-चिढ़ कर बोलती थी। बज़ाज़ ने कहा—"तू बुढ़िया क्या टर-टर करती है उठा अपनी चूड़ियाँ। तू तो पन्द्रह रुपये की बताती थी बाज़ार में नौ रुपये की आँकते हैं।" फिर हज़ारीमल ने पोंचियाँ और जोशन सामने रख दिये और अज़्मत से कहा—"नहीं साहब, यह माल हमारे काम का नहीं।"

मौलवी साहब ने बज़ाज़ और हज़ारीमल से पूछा—"क्यों भाई, ये चीज़ें कैसी हैं?" तब दोनों ने रात की हिकायत बयान की और अज़्मत के मुँह पर गोया लाखों जूतियाँ पड़ रही थीं। जब हिसाब तय हो गया और मौलवी साहब ने देने को रुपया निकाला तो जितना वाजबी था आधा-

---

अटकल—अन्दाज़; **हुज्जत**—वाद-विवाद; **हिकायत**—वृत्तान्त।

आधा सबका दे दिया और कहा कि मैंने लाहौर से रुपया मँगाया है। दस-पाँच दिन में आता है तो बाक़ी भी दे दिया जायगा। सब लोगों ने पूछा और मामा की तरफ़ जो हमारा निकला वो हम किस से लें ? ये बातें हो ही रही थीं कि मुमल्लम मकतब से जाते हुए उधर आ निकला और ये बातें सुनता गया। वहाँ जाकर तमाशाख़ानम से कहा कि—"आज तो आपा असग़री के दरवाज़े पर बड़ी भीड़ जमा है। उनके सुसरे हिसाब कर रहे हैं।" तमाशाख़ानम सुनते के साथ डोली में चढ़ आ पहुँची। उतरी तो असग़री से गिला किया, "क्यों जो तुमने मुझको ख़बर न की तो क्या हुआ ?"

असग़री—"अभी तो हिसाब दर पेश है। यह बखेड़ा हो चुकता तो मैं तुमको ख़बर करती। ग़र्ज़ मौलवी साहब ने लोगों से कहा कि जो मामा से लेना है वो मामा से लो और अज़मत की तरफ़ मुतवज्जा होकर बोले—"हज़रत इनका रुपया अदा करो।"

अज़मत ने नीची आँखें करके कहा—"मेरे पास बेटी का ज़ेवर है, इसमें ये लोग अपना-अपना समझ-बूझ लें।" बेटी का तमाम ज़ेवर तो कुँजड़े, क़साई, बनिये, बज़ाज़ के हिसाब में आधे दामों पर लग गया। हज़ारीमल के सौ रुपयों के वास्ते रहने का ठीकरा गिरवी रखना पड़ा। लिखा-पढ़ी पक्के काग़ज़ पर होकर चार भले मानसों की गवाही हो गई। मौलवी साहब ने अज़मत से कहा—"बस अब आप ख़ैर से

गिला—शिकायत; **ठीकरा**—झोंपड़ा; **काग़ज़**—जिसको लोग इस्टाम कहते हैं।

सिधारिये, तुम ऐसे नमकहराम, दग़ाबाज़, बेईमान आदमी का मेरे घर में कुछ काम नहीं।"

असग़री—"इनमें नमकहरामी के अलावा एक सिफ़्त और भी थी। वो यह कि घर में फ़साद डलवाने की फ़िक्र में थीं। क्यों अज़मत वो कड़ाई की बात याद है जो महमूदा के भाई ने फ़रमाइश की थी और तूने मेरी तरफ़ से झूठ जाकर कह दिया था कि वह कहती हैं मेरे सर में दर्द है? बोल तो सही कब तूने मुझसे कहा था और कब मैंने दर्द सर का उज़्र किया था।"

अज़मत—"बीबी तुम कोठे पर क़ुरान पढ़ रही थीं। मैं कहने को ऊपर गई, तुमको पढ़ते देखकर उल्टी फिर आई।"

असग़री—"और दर्द सर की बात दिल से बनाई।"

अज़मत—"मैंने सोचा कि सुबह से अब तक जो तुम पढ़ रही हो अब कहाँ चूल्हे में सर खपाओगी।"

असग़री—"भला पहाड़ जाने की बात तूने किस ग़रज़ से कही थी? मैंने तुझ से सलाह की थी या तूने मुझको कहते सुना था?"

इसका कुछ जवाब अज़मत को न आया। फिर असग़री ने इश्तहार निकालकर मौलवी साहब के सामने डाल दिया और कहा—"देखिये यह बीबी अज़मत इन गुनों की हैं। ख़ुद तो मुहल्ले के फाटक से इश्तहार उखाड़ कर लाई और मकान पर लगाया और ख़ुद अम्माँजान से कहने को दौड़ी गई।"

गुनों की—गुन का मतलब हुनर है पर यहाँ ताने के तौर पर प्रयोग किया है।

असग़री ये बातें कह रही थी और मौलवी साहब का चेहरा सुर्ख़ हो-हो जाता था। इधर तमाशाख़ानम दाँत पीस रही थी। मौलवी साहब ने कहा—"तुम को निकाल देना काफ़ी नहीं, तू बड़ी बदज़ात औरत है।" यह कहकर अपने ख़िदमत-गार को आवाज़ दी और कहा—"बहादुर इस नापाक औरत को कोतवाली ले जा, रुक़्के में इसका सब हाल लिखे देते हैं।'

असग़री ने मौलवी साहब से कहा—"बस अब यह अपनी सज़ा को पहुँच गई, कोतवाली से इसको माफ़ रखिये। और मामा को इशारा किया कि—"चल दे।" बल्कि दरवाज़े तक मामा के साथ गई।

ग़र्ज़ मामा अज़मत अपने कौतकों के पीछे यहाँ से निकाली गई। घर पहुँची तो बेटी बला की तरह लिपटी—"मैं न कहती थी अम्माँ ऐसी लूट तो न मचाओ। सौ दिन चोर के तो एक दिन साह का, ऐसा न हो किसी दिन पकड़ी जाओ। तुम किसी की मानती थीं। ख़ूब हुआ, जैसा किया वैसा पाया। अब सुसराल में मेरा नाम तो बद मत करो। जहाँ तुम्हारा ख़ुदा ले जाय चली जाओ। मेरे घर में तुम्हारा काम नहीं, ज़ेवर को मैंने सब्र किया। तक़दीर में होगा फिर मिल रहेगा। इस तौर पर ख़ुदा-ख़ुदा करके असग़री ने अपने दुश्मन को निकाल पाया और घर को अज़ाब से नजात दी।

रुक़्क़ा—चिट्ठी; **कौतक**—बुरे कर्म; **साहका**—यह एक कहावत है, साह का अर्थ यहाँ साहूकार या महाजन है। मतलब यह कि सौ दिन चोर का ढब लगता है तो एक दिन साहूकार भी क़ाबू पा जाता है और चोर को पकड़ लेता है; **अज़ाब**—मुसीबत; **नजात**—मुक्ति, छुटकारा।

बाब उन्नीसवाँ
घर में दूसरी मामा रखने की सलाह

जब अज़मत का फ़ैसला हो गया तो असग़री ने बाप के पास जाने की फिर इजाज़त चाही और राज़ी-खुशी से रुख़सत हो माँ के घर आई। एक हफ़्ता बराबर यहाँ रही और जिस-जिस बात में बाप से सलाह लेनी थी इत्मीनान से पूछा गच्छा। पूछा—"अज़मत निकल गई ?"

असग़री—"सब आपके तुफ़ैल से बख़ैर अंजाम हुआ। न बड़े भाई लाहौर जाते, न अब्बाजान आते, न यह बरसों का हिसाब तय होता, न अज़मत निकलती।"

ख़ाँ साहब—"अब घर का इन्तज़ाम क्योंकर होगा ?"

असग़री—"मामा के निकलते ही मैं तो इधर चली आई, अब इन्तज़ाम क्या मुश्किल है। इसी अज़मत की ख़राबी थी, अब इंशा अल्ला मैं देखभाल कर लूँगी।"

ख़ाँ साहब—"और क्या-क्या बातें तुमने घर में ईजाद कीं ?"

असग़री—"अभी मैंने कुछ देखा भाला नहीं। शुरू से अज़मत का झगड़ा पेश आ गया। अब अलबत्ता इरादा है कि

इत्मीनान—शान्ति; **तुफ़ैल**—बदौलत; **बख़ैर**—अच्छी तरह।

हर एक बात को सोचूँ और इन्तज़ाम करूँ। और ख़ुदा ने चाहा आप को ख़त के ज़रिये से इत्तला देती रहूँगी।"

ख़ाँ साहब ने निकाह के बाद से असग़री का दस रुपया महीना मुक़र्रर कर दिया था। असग़री से पूछा—"अगर तुम को ख़र्च की तकलीफ़ रहती हो तो मैं कुछ रुपये तुमको और देता जाऊँ।"

असग़री—"वही दस रुपये मेरी ज़रूरत से ज़्यादा हैं। बल्कि आज तक का रुपया सब मेरे पास जमा है। ज़्यादा लेकर क्या करूँगी और जब ज़रूरत होगी तो मैं ख़ुद माँग लूँगी।"

ग़र्ज़ बाप से असग़री रुख़सत हो आई। सुसराल में आकर देखा कि सास चूल्हा फूँक रही हैं। असग़री ने हैरत से पूछा कि—"अयँ अब तक कोई मामा नहीं रखी गई?"

सास—"आने को तो कई औरतें आईं पर तनख़ा सुनकर हिम्मत नहीं पड़ती किसी को नौकर रखिये। अज़मत बुरी थी मगर आठ आने महीने पर पच्चीस बरस उसने नौकरी की। अब जो मामा आती है दो रुपये और खाने से कम का नाम नहीं लेती। मैंने तुम्हारे आने पर रखा था।"

असग़री—"मामा तो एक मेरी नज़र में भी है लेकिन तनख़ा वो भी ज़्यादा माँगती है। किफ़ायतनिसा की छोटी बहन दयानतनिसा पकाना सीना सब जानती है। और एक दफ़े किफ़ायतनिसा ने कहा भी था कि कोई अच्छा ठिकाना हो तो दयानतनिसा नौकरी करने को मौजूद है।"

इत्तला—सूचना; **निकाह**—ब्याह।

मुहम्मद कामिल की माँ—"वो क्या तनख़ा लेगी ?"

असग़री—"वो तो अपने मुँह से तीन रुपये और खाना माँगती है। लेकिन समझाने से शायद दो रुपये पर राज़ी हो जाय।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"दो रुपये और खाना देना हो तो दरवाज़े पर भोंदू भटियारे की बीवी चुनिया की माँ मिन्नतें करती है।"

असग़री—"चुनिया की माँ को तो मैं चार आने पर भी न रखूँ।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"अय क्यों ?"

असग़री—"पास का रहने वाला आदमी बुरा। आँख बची और जो चीज़ चाही घर में जाकर रख आई। और जब घर से घर मिला है तो हर घड़ी चुनिया की माँ अपने घर जायगी और शायद रात को भी अपने घर रहे।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"बख़्शू की बीवी ने अपनी बेटी ज़ुल्फ़न के वास्ते कई मर्तबे कहा है। ज़ुल्फ़न तो सैयद फ़ीरोज़ के बंगले रहती है।"

असग़री—"वही ज़ुल्फ़न ना जो खूब बनी ठनी रहती है।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"बनी-ठनी क्या रहती है, नई ब्याही हुई है, कपड़े-लत्ते का ज़रा शौक़ है।"

असग़री—"ऐसा आदमी भी नहीं रखना चाहिए।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"ख़ुद ज़ुल्फ़न की माँ नौकरी करने को राज़ी है।"

बनी ठनी—बनी संवरी।

असग़री—"उनके साथ एक दुमछल्ला छोटी बेटी का लगा हुआ है। वो एक दम माँ को नहीं छोड़ती। पस नाम तो एक आदमी का होगा और खायेंगे दो-दो।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"और तो कोई आदमी मेरे ख़याल में नहीं आता।"

असग़री—"देखो इसी दयानतनिसा को बुलाऊँगी।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"और तनख़ा का क्या होगा ?"

असग़री—"ईमानदार आदमी तो कम तनख़ा पर मिलना मुहाल है। इन लोगों को दो की जगह तीन देने गूं हैं, लेकिन अज़मत जैसी को आठ आने देकर घर लुटवाना मंजूर नहीं। वो कहावत है सच—गिराँ बहिकमत अरज़ाँ बख़िल्लत*।"

उस वक़्त का खाना तो सास बहुओं ने मिलकर पका-पकू लिया। खाने के बाद असग़री महमूदा को साथ ले कोठे पर चली गई। जब तक मौलवी साहब रहे असग़री ने कोठे पर से उतरना बहुत कम कर दिया था। सिर्फ़ सुबह-ओ-शाम नीचे उतरती थी। बल्कि महमूदा को भी मना कर दिया था कि हर वक़्त नीचे मत जाया करो। महमूदा तो लड़की थी उसने पूछा भी—"अच्छी भाभी जान क्यों ?" असग़री ने कहा—"बड़ों के सामने हर वक़्त नहीं चलते फिरते।"

दुमछल्ला—असल में दुमछल्ला उस धज्जी को कहते हैं जो पतंग में बाँधी जाती है; **पस**—इसलिये; **मुहाल**—असम्भव; **देने गूं**—मंजूर; *चीज़ मँहगी होती है किसी ख़ूबी से और सस्ती होती है किसी ख़राबी से।

बाब बीसवाँ
घर के ख़र्च का तअ़य्युन

खाने के बाद घर के हिसाब-किताब में मौलवी साहब से और बीबी से लड़ाई होने लगी। बीबी को शिकायत थी कि तुम ख़र्च बहुत थोड़ा देते हो। यहाँ शादी-ब्याह, बिरादरी का लेना-देना, आना-जाना, तीर-त्यौहार सब मुझको करना पड़ता है। मौलवी साहब कहते थे कि बीस रुपये महीना थोड़ा नहीं है, तुमको इन्तज़ाम का सलीक़ा नहीं। इसी सबब से घर में बेबरकती रहती है। इतने में मौलवी साहब ने महमूदा को आवाज़ दी। महमूदा आई तो कहा—"भाभी को बुलाकर लाओ।" असग़री ने तलब की ख़बर सुनी तो हैरान हुई कि इस वक़्त क्यों बुलाया। महमूदा से पूछा क्या हो रहा है? महमूदा ने कहा लड़ाई हो रही है। असग़री गई तो मौलवी साहब ने कहा—"क्यों बेटा, अब इन्तज़ाम कौन करे।"

असग़री ने कहा—"अम्माँजान करेंगी, जिस तरह अब तक करती थीं।"

मौलवी साहब ने कहा—"इनके इन्तज़ाम का नतीजा तो

तअ़य्युन—ठीक होना।

देख लिया। बीस रुपये महीना जिस घर में आता हो, उस घर की यही सूरत होती है कि न सलीक़े का कोई बरतन है न इज़्ज़त की कोई चीज़। अगर किसी वक़्त एक चमचा शरबत दरकार हो तो ख़ुदा ने चाहा उसका सामान भी घर में न निकलेगा।"

असग़री—"अम्माँजान का इसमें क्या क़सूर है? अज़मत नामुराद ने घर को ख़राब किया।"

मौलवी साहब—"इनमें इन्तज़ाम की अक़्ल होती तो अज़मत की क्या ताक़त थी। अज़मत नौकर थी या घर की मुख़्तार थी?"

असग़री—"पच्चीस बरस का पुराना आदमी जब लूटने पर कमर बाँधे तो उसके फ़रेब को कौन जान सकता है? ऐसे पुराने आदमी पर तो शुबहा भी नहीं हो सकता।"

मौलवी साहब—"तुमको आख़िर शुबहा हुआ या न हुआ?"

असग़री—"मुझको क्या शुबहा हुआ। उसी की शामत थी कि उसने नालिश का ज़िक्र छेड़कर सोती हुई भिड़ों को जगाया।"

इतने में सास बोलीं—"पचास में तुम अपने दम को तो तीस रुपये रखो और यहाँ कुन्बे के वास्ते बीस!"

मौलवी साहब—"घर का ख़र्च और बाहर का ख़र्च कहीं बराबर हो सकता है। तुमने मुझको अकेला समझ लिया, और ख़िदमतगार, सवारी, मकान, कपड़ा-लत्ता?"

सलीक़ा—तमीज, ढंग; **शामत**—दुर्भाग्य।

बीबी—"सवारी और मकान तो सरकार से मिलता है।"

मौलवी साहब—"घोड़ा मिला, दाना घास तो मुझको अपनी गिरह से खिलाना पड़ता है। चार रुपये का सईस और मकान की मरम्मत। फिर सरकार दरबार के मुआफ़िक हैसियत, देना-लेना, हज़ार बखेड़े हैं। नहीं मालूम मैं किस तरह गुज़रान करता हूँ।"

असग़री ने सास की तरफ़ मुख़ातिब होकर कहा—"अम्माँजान बीस रुपये में तकरार करने से क्या फ़ायदा? जितना मिलता है हज़ार शुक्र है। ख़ुदा अब्बाजान की कमाई में बरकत दे। यह भी हज़ारों हैं।"

सास—"बेटी मुझसे तो बीस में घर नहीं चलता।"

असग़री ने इशारे से सास को रोका और मौलवी साहब से कहा—"आप चाहें दो रुपये और कम दीजिये लेकिन जो कुछ दीजिये माह-ब-माह मिला करे। जब वक़्त पर पैसा पास नहीं होता तो लाचार क़र्ज़ लेना पड़ता है और क़र्ज़ से घर की रही-सही बरकत भी उड़ जाती है।"

मौलवी साहब—"हिन्दुस्तानी सरकारों में तनख़ा का दस्तूर-क़ायदा बहुत ख़राब है। कभी छठे महीने तक़सीम होती है, कभी बरसवें दिन मिलती है। इस सबब से ख़र्च का मामूल नहीं हो सकता। लेकिन हज़ारीमल से मैं कह जाऊँगा कि महीने के महीने तुमको बीस रुपये दे दिया

मुख़ातिब—किसी की तरफ़ कहने के लिए प्रवृत्त होने को मुख़ातिब होना कहते हैं। **माह-ब-माह**—महीने के महीने; **तक़सीम होना**—बँटना; **मामूल**—एक दस्तूर।

करेगा।"

असग़री—"महाजन बता जाइएगा तो वो आपसे सूद माँगेगा।"

मौलवी साहब—"नहीं सूद क्या लेगा। हमारी सरकार में भी उसका लेन देन है, वहाँ से हुक्म आ जायेगा।"

असग़री—"हाँ तो इसका मुज़ायका नहीं।"

ग़र्ज़ बीस रुपये तनख़ा ठहर गई। लेकिन मुहम्मद कामिल की माँ को नागवार हुआ और अलग जाकर असग़री से गिला किया। असग़री ने कहा—"घर तो बीस में इन्शा अल्ला मैं चला दूँगी इसका आप कुछ फ़िक्र न कीजिये और मौलवी साहब वाक़ई में तीस रुपये से कम में अपनी हैसियत दुरुस्त नहीं रख सकते। मुख़्तारी की नौकरी में अव्वल तो ऊपरी आमदनी की कोई सूरत नहीं और हो भी तो मौलवी साहब लेने क्यों लगे। पस गिनी बोटी, नपा शोरबा। मौलवी साहब ख़ुद तकलीफ़ में रहे और दो-चार रुपये घर में ज़्यादा भी आये तो मुनासिब नहीं। यह सुनकर सास चुप हो गई।

सूद—ब्याज; मुज़ायका—हर्ज; वाक़ई में—सचमुच में।

बाब इक्कीसवाँ

मामा अज़मत की जगह दयानतनिसा रखी गई। असग़री का इन्तज़ामे-ख़ानादारी।

असग़री ने दयानतनिसा को बुला भेजा और कह-सुनकर दो रुपये और खाने पर राज़ी कर लिया और जता दिया कि—"दयानतनिसा ख़बरदार! कोई बात ऐसी न हो कि तुम्हारे ऐतबार में फ़र्क़ आये। जिस तरह तुम्हारी बड़ी बहन हमारे घर रहती है उसी तरह तुम रहना।"

दयानतनिसा ने कहा—"बीबी ख़ुदा उस घड़ी को मौत दे कि पराये माल पर नज़र करूँ। ज़रूरत हो तो तुमसे माँगकर खा लूँ और न मिले तो भूखी बैठी रहूँ, पर बेहुक्म नौन तक चखना हराम समझती हूँ।"

ईद के अगले दिन मौलवी साहब तो लाहौर सिधारे और ज़रूरियात की सब चीज़ें असग़री ने इकट्ठी मँगवा लीं और आयंदा हमेशा फ़सल पर सस्ती देखकर इकट्ठी चीज़ें ले रखती थी। मिर्च, प्याज़, धनिया, अनाज, दालें, चावल, घी, खांड, लकड़ी, उपले, सुखाने की तरकारियाँ, हर चीज़ वक़्त

इन्तज़ामे-ख़ानादारी—गृहस्थी का इन्तज़ाम; नौन—नमक।

मुनासिब पर ख़रीद की जाती थी। मामा मिलाकर पाँच आदमी थे। दोनों वक़्त में सेर भर गोश्त आता था। इसमें दयानतनिसा दो तरह का कर लेती थीं। कभी आधे में तरकारी और आधा सादा। कभी आधे में कबाब सालन के अलावा दिन को एक वक़्त दाल। सातवें दिन पुलाव और मीठे चावलों का मामूल था। घर में दो-तीन क़िस्म की चटनी कोई चाशनीदार, कोई अर्क़-नाना की, कोई सिरके की। दो-चार क़िस्म का अचार मुरब्बा बना रखा था। इनके अलावा शरबत, अनार, लीमू की शिकंजबीन, शरबते-बनफ़शा, शरबते-नीलोफर, शरबते-फ़ालसा की एक एक बोतल बना ली। हर तरह का ज़रूरी सामान घर में मौजूद रहा करता था बाव-जूद इस सामान के पन्द्रह रुपये से ज़्यादा ख़र्च नहीं होता था। पाँच रुपये जो बचते थे उससे बड़े-बड़े पनसेरे और दस सेरे दो पतीले, एक सीनी, कुछ छोटे चमचे, दो लोटे, एक अदद चाय के लवाज़िम इस क़िस्म की चीज़ें ख़रीद हुईं। दो सन्दूक़ बनवाये गये, अलमारियाँ, एक बावरचीख़ाने में, एक असबाब की कोठरी में। बैठने के तख़्त पुराने थे, वो दुरुस्त हुये। दो पलंग तैयार हुये। ख़ुलासा यह कि असग़री ने इसी बीस रुपये में घर को वो जिला दी कि ज़ाहिर हाल में बड़ी रौनक़ मालूम होती थी। हर चीज़ में किफ़ायत और इन्तज़ाम को दख़ल दिया। अज़मत के वक़्तों में हमेशा

चाशनीदार—खटमिट्ठी; **अर्क़-नाना**—नाना अरबी में पोदीने को कहते हैं; **सीनी**—तश्तरी; **लवाज़िम**—ज़रूरी सामान; **जिला**—ओप, चमक; **ज़ाहिर हाल में**—प्रगट में; **किफ़ायत**—मितव्ययता, कमख़र्ची।

महमूदा के वास्ते तीन-चार पैसे रोज़ का सौदा बाज़ार से आता था। इस वास्ते कि कभी दस्तरख़्वान में एक टुकड़ा नहीं बचा। अब दोनों वक़्त दो-चार रोटियाँ दस्तरख़्वान में रहने लगीं। कभी भुनते में से दो बोटियाँ महमूदा के लिये निकाल रखीं, कभी एक चुटकी खांड निकाल दी, कभी मुरब्बे की एक फाँक दे दी। रोज़ का सौदा मौक़ूफ़ हुआ। किसी दिन कभी-कभार जो महमूदा का जी चाहा तो कुछ मँगवा लिया। उस घर से फ़क़ीर को उम्र-भर एक चुटकी आटा या आधी रोटी नहीं मिली थी। अब दोनों वक़्त दो-दो रोटियाँ फ़क़ीरों को भी दी जाने लगीं। घर में जो कुछ असबाब था अजब बदसलीक़गी से साग मूली की तरह पड़ा रहता था। अब हर एक चीज़ ठिकाने लगी। कपड़ों की गठरियाँ हैं तो कपड़े अच्छी तरह तह किये हुये तरतीब से बँधे हैं। अनाज पानी की कोठरी में हर एक शै एहतियात से ढकी हुई है। बरतन साफ़-सुथरे अपनी जगह रखे हैं। चीनी के अलग, तांबे के अलग। गोया घर एक कल थी जिसके कल-पुर्ज़े सब दुरुस्त और उस कल की कुंजी असग़री के हाथ में थी। जब कूक दिया कल अपने मामूल से चलने लगी। रफ़्ता-रफ़्ता दो-चार रुपये पस-अन्दाज़ होने लगे और असग़री उसको बतौर अमानत अलहदा जमा करती गई। जब से असग़री ने घर का एहतिमाम अपने हाथ में लिया क़र्ज़ लेना क़सम हो

बदसलीक़गी—कुढंग, फूहड़पन; **तरतीब**—व्यवस्था; **शै**—चीज़; **कूक देना**—घड़ी को चाबी देने को कूक देना कहते हैं; **पस-अन्दाज़ होना**—बचना; **अमानत**—थाती, धरोहर; **एहतिमाम**—इंतज़ाम।

गया। भूलकर भी दमड़ी-छदाम तक की चीज़ बाज़ार से उधार न आई। असग़री घर का सब हिसाब एक किताव में लिखा करती थी। जब कोई चीज़ हो चुकने पर आई और दयानतनिसा ने इत्तला की कि—बीवी घी दो दिन का और है। असग़री ने किताब निकालकर देखी कि किस तारीख़ को कितना घी आया था और कितने रोज़ के हिसाब से ख़र्च हुआ। अगर बेहिसाब हुआ तो दयानत से बाज़पुर्स की। मजाल न थी कि किसी चीज़ में फ़ज़ूलख़र्ची हो और बेहिसाब उठ जाय। पिसाई वाली की पिसाइयाँ और धोबन की धुलाइयाँ तक किताब में लिखी जाती थीं।

बाज़पुर्स करना—सबब पूछना।

बाब बाईसवाँ

असग़रीने अपने मियाँ से खेल-कूद छुड़ाकर उसको पढ़ने पर मुतवज्जा किया

जब हर एक चीज़ का मामूल बँध गया और इन्तज़ाम बैठ गया, असग़री दूसरे कामों की तरफ़ मुतवज्जा हुई। मुहम्मद कामिल पढ़ता-लिखता तो था लेकिन वैसी ही बेतदबीरी और बदशौक़ी से जिस तरह आज़ाद ख़ुद-मुख़्तार लड़के पढ़ा करते हैं। बाप तो बाहर रहते थे। मुहम्मद आक़िल गो बड़ा भाई था लेकिन दोनों भाइयों में सिर्फ ढाई बरस की बड़ाई-छुटाई थी। मुहम्मद कामिल पर उसका दबाव कम था, बल्कि नहीं था। बस मुहम्मद कामिल सुबह-ओ-शाम सबक़ भी पढ़ता था और हमउम्र लड़कों में गंजीफ़ा, शतरंज, चौसर भी खेला करता था। बाज़ मर्तबा खेल में मसरूफ़ होता तो पहर-पहर रात गये घर आता। असग़री को यह हाल मालूम तो था लेकिन मौक़ा ढूँढ़ती थी कि ऐसे ढब से कहना चाहिए कि नागवार ख़ातिर न हो। एक रोज़ मुहम्मद कामिल बहुत रात गये आया और शायद बाज़ी जीतकर आया था। ख़ुश था। आते

मुतवज्जा करना—ध्यान दिलाना; **बेतदबीरी**—बेढ़ंग, बेजुगत; **बद-शौक़ी**—अनिच्छा; **मसरूफ़**—व्यस्त।

के साथ खाना माँगा। दयानतनिसा सालन गरम करने दौड़ी। मुहम्मद कामिल समझा अभी पका रही है। पूछा—"मामा, अभी तक तुम्हारी हँडिया चूल्हे से नहीं उतरी।"

असग़री ने कहा—"कई दफ़ा उतर-उतर कर चढ़ चुकी है। ऐसे नावक़्त तुम खाना खाते हो कि खाना ठण्डा होकर मिट्टी हो जाता है। या तो ऐसा बन्दोबस्त करो कि सवेरे खा जाया करो या खाना बाहर मँगवा लिया करो। इधर तुम्हारे इन्तज़ार में अम्माँजान को हर रोज़ तकलीफ़ होती है।"

मुहम्मद कामिल—"अयँ, तुम लोग मेरे मुन्तज़िर रहते हो! मैं तो जानता था तुम खाना खा लिया करती होगी।"

असग़री—"ख़ुदा रखे, मरदों के होते औरतों को खाना ठूँस बैठना क्या मुनासिब है।"

मुहम्मद कामिल—"दो-चार रोज़ की बात हो तो गुज़र सकती है। आख़िर मेरी ही नारज़ामन्दी का ख़याल है। मैं ख़ुशी से इजाज़त देता हूँ तुम लोग खाना खा लिया करो।"

असग़री उस वक़्त तो चुप हो रही। कोठे पर मुहम्मद कामिल ने ख़ुद छेड़कर इसी बात को कहा। असग़री बोली—"ताज्जुब की बात है तुम अपने मामूल के ख़िलाफ़ नहीं कर सकते और हम लोगों से चाहते हो कि अपना मामूल तोड़ दें। तुम ही सवेरे चले आया करो।"

मुहम्मद कामिल—"खाने के बाद बाहर निकलने को जी नहीं चाहता और मुझको नींद देर कर आती है। घर में बेशग़ल पड़े-पड़े जी घबराता है। इस वास्ते मैं कसदन देर

मुन्तज़िर—इन्तजार में; बेशग़ल—बेकाम; क़सदन—जानकर।

करके आता हूँ कि खाने के बाद सो रहूँ।"

असग़री—"शग़ल तो अपने इख़्तियार में है। आदमी अपने वक़्त को ज़ब्त करे तो हज़ारों काम हैं। एक पढ़ने का शग़ल क्या कम है। मैं अपने बड़े भाई को देखा करती थी कि आधी-आधी रात तक किताब देखते और जिस दिन इत्तिफ़ाक़ से सो जाते तो बड़ा अफ़सोस किया करते थे। तुम पढ़ने में मेहनत कम करते हो इसी वास्ते बेशग़ली से तुम्हारा जी घबराता है।"

मुहम्मद कामिल—"और क्या मेहनत करूँ। दोनों वक़्त सबक़ पढ़ लेता हूँ।"

असग़री—"नहीं मालूम तुम कैसा पढ़ना पढ़ते हो। जिस दिन अज़मत का हिसाब-किताब होता था अब्बाजान तुमसे हिसाब पूछते थे और तुम बता नहीं सकते थे। मुझको शर्म आती थी।"

मुहम्मद कामिल—"हिसाब दूसरा फ़न है। मैं अरबी पढ़ता हूँ। इससे और हिसाब से क्या वास्ता?"

असग़री—"पढ़ना-लिखना इसी वास्ते होता है कि दुनिया का कोई काम अटका न रहे। बड़े भाई अरबी-फ़ारसी बहुत पढ़ गये हैं लेकिन नौकरी नहीं मिलती। अब्बा कहा करते हैं कि हिसाब-किताब और कचहरी का काम जब तक न सीखोगे नौकरी का खयाल मत करो। अब मालअंदेश मदरसे में पढ़ता है और हिसाब-किताब में बड़े भाई से ज़्यादा होशियार है। अब्बा उससे बहुत ख़ुश हैं और कहा करते हैं

इत्तिफ़ाक़—संयोग; **फ़न**—हुनर।

दो बरस मदरसे में और पढ़ो फिर तुमको कहीं-न-कहीं नौकरी करा दूँगा।"

मुहम्मद कामिल--"मदरसे में कम उम्र आदमी को दाखि़ल करते हैं। मेरी उम्र ज़्यादा है।"

असग़री—"मदरसे में दाखि़ल होने पर क्या मुनहसर है। यूँ शहर में क्या सिखाने वाले नहीं हैं। जितना वक़्त तुम खेल में ज़ाया करते हो इसी में सर्फ़ किया करो।"

मुहम्मद कामिल—"खेल क्या मैं दिन-रात खेलता हूँ ? कभी घड़ी-दो-घड़ी बैठ गया।"

असग़री—"खेलना अफ़्यून की-सी आदत है। थोड़े से शुरू होकर बढ़ती जाती है। यहाँ तक कि लत पड़ जाती है। और फिर उसका छोड़ना मुश्किल होता है। अव्वल तो ये खेल गुनाह हैं। इसके अलावा आदमी को दूसरे कमाल हासिल करने से रोकते हैं। काम-काज के आदमी कभी नहीं खेलते। निकम्मे लोग अलबत्ता इसी तरह दिन काटते हैं। इन खेलों में जैसा बाज़ी जीतने से जी ख़ुश होता है, हारने से रंज भी बहुत होता है। और जिस तरह वो ख़ुशी बेअसल होती है यह रंज भी नाहक़ का होता है। और अकसर खेलते-खेलते आपस में मुफ़्त की तकरार हो जाती है। मेरी सलाह मानो तो इन खेलों को बिल्कुल मौक़ूफ़ करो। लोग तुम्हारे मुँह पर तो कुछ नहीं कहते लेकिन पीछे हँसते हैं। परसों-अतरसों की बात है कि तुमको कोई मर्दुआ बुलाने आया था। मामा ने

मुनहसर—अवलम्बित; **अफ़्यून**—अफ़ीम; **लत**—बुरी आदत को लत कहते हैं; **कमाल**—प्रवीणता; **बेअसल**—बेबुनियाद; **नाहक़**—बेकार का।

अन्दर से जवाब दिया कि बाहर सिधार गये हैं। उस मर्दुए ने ताने के तौर पर अपने साथ वाले से कहा मियाँ, मास्टर हुसैनी के मकान पर चलो, वहाँ शतरंज के जमघटे में मिलेंगे। अब्बाजान का शहर में बड़ा नाम है। लोग उनके मौतक़िद हैं। ऐसी जगह जाने से नाम बद होता है। और मैंने अब्बाजान को अफ़सोस करते सुना है कि हाय हमारी तकदीर! दोनों लड़कों में कोई भी ऐसा न हुआ कि उसको देखकर जी ख़ुश होता। आ़क़िल को कुछ लिखाया-पढ़ाया था अब वो भी अपनी नौकरी के पीछे ऐसा पड़ा है कि लिखा-पढ़ा भी भूल गया। ये छोटे साहब हैं, इनको खेलकूद से फ़ुरसत नहीं। बल्कि हमारे अब्बाजान को भी किसी ने इसकी ख़बर कर दी। मुझसे पूछते थे। मैंने उस वक़्त बात को टाल दिया।"

असग़री की नसीहत ने मुहम्मद कामिल पर बहुत उम्दा असर किया और उसने खेलना बिल्कुल छोड़ दिया। और पहले की निस्बत अरबी पर भी ज़्यादा मेहनत करने लगा, और एक मुदर्रिस से मदरसे के बाहर हिसाब-किताब वग़ैरह भी सीखना शुरू कर दिया। ख़ुदा ने वक़्त में बड़ी बरकत दी है। इसको इन्तज़ाम के साथ सर्फ़ करने से चन्द रोज़ में मुहम्मद कामिल की इस्तअ़दादे-अरबी भी दुरुस्त हो गई और हिसाब और रियाज़ी की भी किताबें निकल गईं।

मौतक़िद—ऐतक़ाद या श्रद्धा करने वाले; **निस्बत**—अपेक्षा; **मुदर्रिस**—शिक्षक; **इस्तअ़दादे-अरबी**—अरबी की योग्यता; **रियाज़ी**—रियाज़ी भी एक तरह का हिसाब है; **निकल जाना**—नज़र से निकल गईं।

बाब तेईसवाँ

असग़री ने लड़कियों का मकतब बिठाया

मुहम्मद कामिल तो इधर मसरूफ़ रहा। असग़री ने इसी अरसे में एक और कारख़ाना जारी किया। उस मुहल्ले में हकीम रूह अल्लाख़ाँ बड़े नामी-गरामी आदमी थे। हकीम साहब ख़ुद तो सरकार महाराजा पटियाला में दीवान थे लेकिन घरबार, लड़के-बच्चे सब इसी मुहल्ले में थे। मकान, महलात, नौकर-चाकर बड़ा कारख़ाना था और यह घर शहर के ऊँचे घरों में गिना जाता था। ऊँची जगह नाते-रिश्ते, ऊँचे लोगों से राह-ओ-रस्म। हकीम साहब के छोटे भाई फ़तहउल्लाख़ाँ बहुत मुद्दत तक वालिये-इन्दौर की सरकार में मुख़्तारे-कुल रहे और जब उस सरकार में मुन्शी अम्मूजान को बड़ा दख़ल हुआ मसलहते-वक़्त समझकर किनाराकश हो गए। लेकिन लाखों रुपया घर में था नौकरी की कुछ परवा न थी। हज़ारों रुपये की अमलाक शहर में ख़रीद कर ली थी। सैकड़ों रुपया माहवार किराये का चला आता था, बड़ी शान से रहते थे।

मकतब—पाठशाला; **नामी-गरामी**—प्रतिष्ठित और लोकप्रिय; **राह-ओ-रस्म**—मेलजोल; **वालिये-इंदौर**—इंदौर के राजा; **मसलहते-वक़्त**—समय की नेक सलाह; **किनाराकश**—अलहदा; **अमलाक**—मिल्कियत।

ड्योढ़ी पर सिपाहियों का गारद, अन्दर-बाहर तीस-चालीस आदमी नौकर, घोड़ा, हाथी, पालकी, बग्गी सवारी को मौजूद। फ़तहउल्लाखाँ की दो बेटियाँ थीं, जमालआरा और हुस्नआरा। जमालआरा नवाब इस्फ़ंदयारख़ाँ के बेटे से ब्याही गई थी। लेकिन ऐसी नामुवाफ़िक़त हुई कि आख़िरकार क़ता ताल्लुक़ हो गया। कुछ ख़ुदा-न-ख़ास्ता तलाक़ नहीं हुई थी लेकिन किसी तरह का वास्ता बाक़ी नहीं रहा था। जहेज़ का असबाब तक फिर आया था। हुस्नआरा की निस्बत नवाब झज्जर के ख़ानदान में हुई थी। इन लड़कियों की ख़ाला शाहज़मानी-बेगम उसी मुहल्ले में रहती थीं जिसमें असग़री का मैका था। उस मुहल्ले में तो असग़री की लियाक़त का शोर था। शाहजमानी बेग़म भी असग़री के हाल से ख़ूब वाक़िफ़ थीं। शादी-ब्याह में कई मर्तबा उसको देखा था। शाहज़मानी बेगम अपनी छोटी बहन हुस्नआरा की माँ से मिलने के लिए आईं। दुनिया का दस्तूर है कि कोई फ़र्द-बशर रंज से ख़ाली नहीं और यह अमर कुछ मिन जानिबे अल्लाह है। अगर हर तरफ़ से ख़ुशी-ही-ख़ुशी हो तो इंसान ख़ुदा को भूलकर भी याद न करे और न अपने तईं बन्दा समझे। शाहज़मानी की छोटी बहन सुल्ताना बेगम को दुनिया के सब ऐश मयस्सर

गारद—अँग्रेजी के गार्ड का बिगड़ा हुआ रूप है; **नामुवाफ़िक़त**—बिगाड़; **क़ता ताल्लुक़**—सम्बन्ध टूट गया; **निस्बत**—सम्बन्ध; **वाक़िफ़**—परिचित; **फ़र्द-बशर**—एक व्यक्ति भी; **अमर**—बात; **मिन जानिबे-अल्लाह**—ख़ुदा की तरफ़ से, उसके हुक्म से; **ऐश**—आराम; **मयस्सर**—हासिल।

थे। लेकिन लड़कियों की तरफ़ से रंजीदा ख़ातिर रहा करती थीं। इधर जमालआरा ब्याह-बरात हो हुआ कर उजड़ी हुई घर बैठी थीं, उधर हुस्नआरा के मिज़ाज की उफ़्ताद ऐसी बुरी पड़ी थी कि अपने घर ही में सबसे बिगाड़ था। न माँ का लिहाज़, न आपा का अदब, न बाप का डर। नौकर हैं कि आप नालां हैं, लौंडियाँ हैं कि अलग पनाह माँगती हैं। ग़र्ज़ हुस्नआरा सारे घर को सर पर उठाये रहती थी। शाहज़मानी बेगम के आने से चाहिए कि बड़ी ख़ाला समझकर हुस्नआरा घड़ी-दो-घड़ी को चुप होकर बैठ जाती। क्या ज़िक्र! शाहज़मानी को पालकी से उतरे देर न हुई थी कि लगातार दो-तीन फ़रियादें आईं। नरगिस रोती हुई आई कि बेग़म साहब देखिये छोटी साहबज़ादी ने मेरी नई ओढ़नी लीर-लीर कर डाली, अब मुझे कौन बनाकर देगा। सूसन ने फ़रियाद मचाई कि बेगम साहब छोटी साहबज़ादी ने मेरे कल्ले में चकता भर लिया। गुलाब बिलबिला उठी—हाय मेरा कान ख़ूनाख़ून हो गया। दाई चिल्लाई कि देखिये मेरी लड़की कमबख़्त के ऐसे ज़ोर से लकड़ी मारी कि बाज़ू में बद्धी पड़ गई। बावरची-ख़ाने से मामा ने दुहाई दी—अच्छी ख़ुदा के लिए कोई इनको

रंजीदा ख़ातिर—उदास; **उफ़्ताद**—ढंग; **नालां**—रो रहे हैं; **सर पर**—याने बड़ा ऊधम मचाती थी; **फ़रियाद**—शिकायत; **नरगिस**—यहाँ नरगिस घर की लौंडी का नाम है। असल में नरगिस आँख की शकल का फूल होता है; **लीर-लीर**—धज्जी-धज्जी; **सूसन**—यहाँ लौंडी का नाम है यों यह भी एक फूल का नाम है; **चकता**—काट खाया; **बद्धी**—निशान।

समझाना सालन की पतीलियों में मुट्ठियाँ भर-भरकर राख झोंक रही हैं। शाहज़मानी बेगम ने आवाज़ दी—"हुस्ना यहाँ आओ।"

ख़ाला की आवाज़ पहचान बारे हुस्नआरा चली तो आई लेकिन न सलाम न दुआ। हाथों में राख पाँव में कीचड़। उसी हालत में दौड़ ख़ाला से लिपट गई। ख़ाला ने कहा—"हुस्ना तुम बहुत शोख़ी करने लगी हो।"

हुस्नआरा ने कहा—"इस सुंबल चुड़ैल ने फ़रियाद की होगी।" यह कहकर ख़ाला की गोद से निकल लपककर सुंबल का सर खसोट लिया। भतेरा ख़ाला ईं ईं करती रहीं, एक न सुनी।

शाहज़मानी बेगम अपनी बहन की तरफ़ मुख़ातिब होकर बोलीं—"बुआ सुल्ताना, इस लड़की के लिए तो ख़ुदा के वास्ते कोई उस्तानी रखो।"

सुल्ताना बेगम—"बाजी अम्मां, क्या करूँ। महीनों से उस्तानी की तलाश में हूँ, कहीं नहीं मिलती।"

शाहज़मानी बेगम—"ओह बुआ, तुम्हारी भी वही कहावत है, ढिंढोरा शहर में, बच्चा बग़ल में। खुद तुम्हारे मुहल्ले में मौलवी मुहम्मद फ़ाज़िल की छोटी बहू लाख उस्तानियों की एक उस्तानी है।"

सुल्ताना—"मुझको आज तक इत्तिला नहीं। देखो मैं अभी आदमी भेजती हूँ।" यह कहकर अपने घर की दारोग़ा को बुलाया कि मानीजी कोई मौलवी साहब इस मुहल्ले में

बारे—आख़िर; शोख़ी—उद्दंडता; इत्तिला—खबर।

रहते हैं। बाजी अम्माँ कहती हैं उनकी छोटी बहू बहुत पढ़ी-लिखी हैं। देखो अगर उस्तानीगिरी की नौकरी करें तो उनको लिवा लाओ। खाना, कपड़ा और दस रुपये महीना, पान जर्दे का ख़र्च हम देने को हाज़िर हैं। और जब लड़की पहला सिपारा ख़त्म करेगी और अदब-क़ायदा सीख जायेगी तो तनख़ा के अलावा उस्तानीजी को हम यूँ भी ख़ुश कर देंगे।"

मानीजी मौलवी साहब के घर आईं। मुहम्मद कामिल की माँ से साहब-सलामत हुई। पूछा—"अच्छी बी, मौलवी साहब की बीबी तुम्हीं हो।"

दयानतनिसा—"हाँ यही हैं, आओ बैठो, कहाँ से आईं ?"

मानीजी—"तुम्हारी छोटी बहू कहाँ हैं ?"

मुहम्मद कामिल की माँ—"कोठे पर हैं ?"

मानीजी—"मैं उनके पास ऊपर जाऊँ ?"

दयानतनिसा—"आप अपना पता निशान बताइये, बहू साहब यहीं आ जायेंगी।"

मानीजी—"मैं हकीम साहब के घर से आई हूँ।"

मुहम्मद कामिल की माँ ने नाम-बनाम सब छोटे-बड़ों की खैर ओ-आफ़ियत पूछी और मानी से कहा—"तमीज़दार बहू के नीचे उतरने का वक़्त आ गया था क्योंकि अ़सर की नमाज़ पढ़कर असग़री नीचे उतर आती थी और मग़रिब और अ़शा दोनों नमाज़ें नीचे पढ़ा करती थीं। असग़री को मानीजी ने

खैर-ओ-आफ़ियत—कुशल क्षेम; **अ़सर की नमाज़**—चार घड़ी दिन रहे की नमाज़; **मग़रिब**—वह नमाज़ जो सूरज के डूबते ही पढ़ी जाती है; **अ़शा**—अ़शा की नमाज़ चार घड़ी रात गये की नमाज़ होती है।

देखा तो उस्तानीगिरी की नौकरी के वास्ते कहते हुए ताम्मुल किया। बातों-ही-बातों में इतना कहा कि—"बेगम साहब को अपनी छोटी लड़की का तालीम कराना मंजूर है। बड़ी बेगम साहब ने आपका ज़िक्र किया तो बेगम साहब ने मुझको भेजा।"

असग़री—"दोनों बेगम साहबों को मेरी तरफ़ से बहुत-बहुत सलाम कहना और यह कहना जो कुछ बुरा-भला मुझको आता है मुझको किसी से उज्र नहीं। इसी वास्ते इन्सान पढ़ता-लिखता है कि दूसरे को फ़ायदा पहुँचाये। और बड़ी बेगम साहब को मालूम होगा कि मैं अपने मैके में कितनी लड़कियों को पढ़ाती थी। और मेरा जी बहुत चाहता है कि बेगम साहब की लड़की को पढ़ाऊँ। लेकिन क्या करूँ न तो बेगम साहब लड़की को यहाँ भेजेंगी और न उनके घर मेरा जाना हो सकता है।"

मानीजी ने तनख़ा का नाम साफ़ तो न लिया। लेकिन दबी ज़बान से इतना कहा कि बेगम साहब हर तरह से ख़र्च-पात की भी ज़िम्मेदारी करने को मौजूद हैं।

असग़री—"यह सब उनकी मेहरबानी है। उनकी रिया-सत को यही बात ज़ेबा है। लेकिन उनके ज़ेरे-साया हम ग़रीब भी पड़े हैं तो खुदा नंगा-भूखा नहीं रखता। बिन दामों की लौंडी बनकर ख़िदमत करने को तो मैं हाज़िर हूँ और अगर

ताम्मुल—संकोच; **तालीम**—शिक्षा; **उज्र**—आपत्ति; **रियासत**—अमीरी; **ज़ेबा**—योग्य; **ज़ेरे-साया**—शाब्दिक अर्थ उनकी छाँव है। मत-लब यह कि उनके पड़ौस में।

तनख़ादार उस्तानी दरकार हो तो शहर में बहुत मिलेंगी।"

इसके बाद मानीजी ने असग़री का हाल पूछा। और जब सुना कि तहसीलदार की बेटी है और मौलवी मुहम्मद फ़ाज़िल साहब भी पचास रुपये माहवार के नौकर हैं तो मानी को नदामत हुई कि नौकरी का इशारा नाहक़ किया। लेकिन असग़री की गुफ़्तगू सुनकर मानी लट्टू हो गई। हरचंद नवाबी कारख़ाने देखे हुए थी मगर असग़री की शुस्ता तक़रीर सुनकर दंग हो गई और माज़रत की कि बी मुझको माफ़ करना।

असग़री—"क्यों तुम मुझको काँटों में घसीटती हो*। अव्वल तो नौकरी और नौकरी भी हकीम साहब के घर की। कुछ ऐब नहीं, गुनाह नहीं। और फिर नावाक़फ़ियत के सबब अगर तुमने पूछा तो क्या मुज़ायक़ा।"

ग़र्ज़ मानीजी रुख़सत हुईं और वहाँ जाकर कहा कि—"बेगम साहब उस्तानी तो वाक़ई में लाख उस्तानियों की एक उस्तानी हैं। जिसके पास बैठने से आदमी बन जाय, पास बैठने से इन्सानियत हासिल करे, साया पड़ जाने से सलीक़ा सीखे, हवा लग जाने से अदब पकड़े, लेकिन नौकरी करने वाली नहीं। तहसीलदार की बेटी है, रईस लाहौर के मुख़्तार की बहू। घर में मामा नौकर है, दालान में चाँदनी बिछी है, सुजनी गाव-तकिया लगा है। अच्छी ख़ुश-गुज़रान ज़िन्दगी

नदामत—शर्मिंदगी; **शुस्ता**—शाब्दिक अर्थ है धोई हुई यानी साफ़। लाक्षणिक अर्थ सुसंस्कृत; **माज़रत करना**—माफ़ी माँगना; *क्यों मुझे गुनहगार करती हो मुझको माफ़ी माँगने से तकलीफ़ होती है; **सुजनी**—चादर; **गाव-तकिया**—मसनद।

भला उनको नौकरी की क्या परवा है।"

शाहज़मानी बोली—"सच है बुआ सुल्ताना। तुमने मानीजी को भेजा तो था लेकिन मुझको यक़ीन न था कि वो नौकरी करेंगी।"

मानीजी—"लेकिन वो तो ऐसी अच्छी आदमी हैं कि मुफ़्त पढ़ाने को ख़ुशी से राज़ी हैं। सुल्ताना ने पूछा—"क्या यहाँ आकर।"

मानीजी—"भला बेगम साहब जो नौकरी की परवा नहीं करता वो यहाँ क्यों आने लगा।"

सुल्ताना—"क्या फिर लड़की वहाँ जाया करेगी ?"

शाहज़मानी—"इसमें क़बाहत की क्या बात है ? दो क़दम पर तो घर है। और मौलवी साहब को तुमने ऐसा क्या समझा। भाई अली नक़ीख़ां की सगी फूफ़ीज़ाद बहन के बेटे हैं।

सुल्ताना—"हाँ, तो एक हिसाब से हमारी बिरादरी हैं।"

शाहज़मानी—"लो ख़ुदा न करे, कुछ ऐसे वैसे हैं। पहले उनका काम ख़ूब बना हुआ था। जब से रईस बिगड़ा बेचारे ग़रीब हो गये हैं। फिर भी मामा हमेशा रही। ड्यौढ़ी पर भी एक-दो आदमी रहते हैं।"

सुल्ताना—"ख़ैर, हुस्नआरा वहीं चली जाया करेगी।"

अगले दिन शाहज़मानी बेगम और सुल्ताना बेगम दोनों बहनें हुस्नआरा को लेकर असग़री के घर आईं। बावजूद कि असग़री के यहाँ ग़रीबी सामान था लेकिन उसके इन्तज़ाम

क़बाहत—बुराई।

और सलीक़े के सबब बेगमों की वो मदारात हुई कि हर तरह की चीज़ वहीं बैठे-बैठे मौजूद हो गई। दो-चार तरह का इत्र, चौघड़ा, इलायची, चिकनी डली, चाय, बात की बात में सब मौजूद हो गया। ख़ूब-ख़ूब मज़े की गिलौरियाँ तैयार हो गईं। दोनों बहनों ने असग़री से कहा कि मेहरबानी करके इसको दिल से पढ़ा दीजिये।"

असग़री—"अव्वल तो ख़ुद मुझको क्या आता है। मगर जो दो-चार हर्फ़ बुज़ुर्गों की इनायत से आते हैं, इन्शा अल्ला उनके बताने में अपने मक़दूर भर दरेग़ न करूँगी।"

चलते हुए सुल्ताना बेगम एक अशरफ़ी असग़री को देने लगीं।

असग़री—"इसकी कुछ ज़रूरत नहीं। भला यह क्योंकर हो सकता है कि मैं पढ़वाई आप से लूँ।"

सुल्तान—"इस्तग़फ़र अल्ला पढ़वाई! हमारा मुँह है! बिस्मिल्ला की मिठाई है।"

असग़री—"शुरू में तबर्रुक के तौर पर मिठाई बाँट दिया करते हैं, सो अशरफ़ी क्या होगी? बच्चों का मुँह मीठा करने को सेर-आध सेर मिठाई काफ़ी है।" यह कहकर दयानतनिसा

मदारात—ख़ातिरदारी, आवभगत; **चौघड़ा**—पान इलायची रखने का डिब्बा जिसमें चार ख़ाने बने होते हैं; **डली**—सुपारी को डली भी कहते हैं; **इनायत**—दया; **मक़दूर**—शक्ति, सामर्थ्य; **दरेग़**—कमी; **इस्तग़फ़र**—मैं ख़ुदा से माफ़ी चाहती हूँ। जब किसी बात से इन्कार करना होता है यानी हमारा यह मतलब न था तो ऐसे मौक़े पर इस्तग़फ़र अल्ला कहते हैं कि अगर किया हो तो ख़ुदा माफ़ करे; **तबर्रुक**—प्रसाद।

को तरफ़ इशारा किया। वो कोठरी में से एक क़ाब भर कर नुक्तियाँ निकाल लाई। असग़री ने ख़ुद फ़ातिहा पढ़कर पहले हुस्नआरा को दी और भरी क़ाब दयानतनिसा को उठा दी कि सब बच्चों को बाँट दो। सुल्ताना ने कहा—"अच्छा तुमने मुझ को शर्मिन्दा किया।"

असग़री—"हम बेचारे ग़रीब किस लायक़ हैं। लेकिन यहाँ जो कुछ है वो भी आपका है। अलबत्ता मेरा देना यही है कि हुस्नआरा बेगम को पढ़ा दूँ सो ख़ुदा वो दिन करे कि मैं आपसे सुर्ख़रू हूँ।"

ग़र्ज़ दुनियासाज़ी की बातें हो-हुआ कर शाहज़मानी बेगम और सुल्ताना बेगम चली गईं और हुस्नआरा को असग़री के हवाले कर गईं।

क़ाब—थाल; नुक्तियाँ—मोतीचूर के लड्डू के दानों को नुक्ती कहते हैं; सुर्ख़रू—सम्मानित; दुनियासाज़ी—शिष्टाचार।

बाब चौबीसवाँ

असग़री का इन्तज़ामे-मकतबी

असग़री ने जिस तर्ज़ पर हुस्नआरा को तालीम किया उसकी एक किताब जुदा बनाई जायगी। अगर यहाँ वो सब हाल लिखा जाता तो यह किताब बहुत बढ़ जाती। इस मुक़ाम पर इतना ही मतलब है कि हुस्नआरा के बैठते ही मुहल्ले का मुहल्ला टूट पड़ा। जिसको देखो अपनी लड़की को लिये चला आता है। लेकिन असग़री ने शरीफ़ज़ादियों को चुन लिया और बाक़ियों को हिकमते-अमली से टाल दिया कि मैं आये दिन अपनी माँ के घर जाती रहती हूँ, पढ़ना-पढ़ाना जब तक जमकर न हो बेफ़ायदा है। फिर भी बीस लड़कियाँ बैठती थीं। लेकिन असग़री को किसी लड़की से लेने-लिवाने की क़सम थी। बल्कि एक दो-रुपया उसका अपना लड़कियों पर ख़र्च हो जाता था। सुबह से दोपहर तक पढ़ना होता था और फिर खाने के वास्ते चार घड़ी की छुट्टी। इसके बाद लिखना और पहर दिन रहे से सीना। सीने का काम गुंजा-

---

इन्तज़ामे-मकतबी—पाठशाला का इन्तज़ाम; **तर्ज़**—ढंग; **मुक़ाम**—स्थान; **शरीफ़ ज़ादी**—रईसों की लड़की; **हिकमते-अमली**—व्यावहारिक चाल या बहाना।

इशी था इस वास्ते कि न सिर्फ़ सीना सिखाया जाता था बल्कि हर तरह की जाली काढ़ना, हर एक तरह की सिलाई, हर एक तरह की क़ता। मसाला बनाना, और टाँकना। अव्वल-अव्वल तो इसका सामान जमा करने में असग़री के दस रुपये ख़र्च हुए। लेकिन फिर तो इसी काम से बचत होने लगी। जो काम लड़कियाँ बनातीं दयानत उसको चुपके से बाज़ार में लगा आती। इस तौर पर रफ़्ता-रफ़्ता मकतब की एक बड़ी रक़म जमा हो गई। जो लड़की ग़रीब होती इसी रक़म से उसके कपड़े बनाये जाते, किताब मोल ले ली जाती। लड़कियों के पानी पिलाने और पंखा झलने के वास्ते ख़ास एक औरत नौकर थी और मकतब की रक़म से उसको तनख़्वा मिलती थी। लड़कियों का यह हाल था कि और उस्तानियों के पास जाते हुए उनका दम फ़ना होता था लेकिन असग़री की शागिर्दें उस पर आशिक़ थीं। अभी सोकर नहीं उठीं कि लड़कियाँ ख़ुद-बख़ुद आनी शुरू हुईं और पहर रात गये तक जमा रहती थीं और मुश्किल से जाती थीं। इस वास्ते कि असग़री सबके साथ दिल से मुहब्बत करती थी और पढ़ाने का तरीक़ा ऐसा अच्छा रखा था कि बातों-बातों में तालीम होती थी। न यह कि सुबह से रीं-रीं का चरख़ा जो चला तो दिन छिपते तक बन्द नहीं होता। जिस तरह असग़री को उसके बाप ने पढ़ाया था उसी तरह असग़री अपनी शागिर्दों को पढ़ाती थी। पस ये लड़कियाँ शागिर्द की शागिर्द और सहेली की-सहेली थीं। जब किसी लड़की का ब्याह हुआ मकतब की

क़ता—कटाई; लगा आना—बेच आना; रीं-रीं—रोना; शागिर्द—शिष्य।

रक़म से उसको थोड़ा बहुत ज़ेवर चढ़ाया जाता था। अगर असग़री अपने मकतब को बढ़ाना चाहती तो तमाम शहर के मकतब उजड़ जाते। सैकड़ों औरतें अपनी लड़कियों के वास्ते ख़ुशामद करती थीं और ख़ुद लड़कियाँ दौड़-दौड़कर आती थीं। इस वास्ते कि और मकतबों में दिन-भर की क़ैद, उस्तानियों की सख़्ती, पढ़ना कम, मार खाना काम करना बहुत। दिन-भर में पढ़ें तो सिर्फ़ दो हर्फ़। सुबह-ओ-शाम तो मामूली मार। और जहाँ चुप की और उस्तानीजी की नज़र पड़ गई आफ़त आई। और काम पूछो तो सुबह आते के साथ घर में झाड़ू दी, उस्तानीजी और उस्तादजी और दस-बारह ख़लीफ़ा-जी बल्कि पड़ौसियों तक के बिछौने तह किये और चार-चार पाँच-पाँच ने मिलकर कमबख़्त भारी बोझल चारपाइयाँ उठाईं। फिर दो-चार की जल्द शामत आई तो सिपारा लेकर बैठीं। मुँह से आवाज़ निकली और उस्तानीजी ने बनैठी फेंकनी शुरू की। और दो-चार जो किसी अच्छे का मुँह देखकर उठी थीं काम-धन्धे में लग गईं। किसी ने उस्तानीजी के लड़के को गोद में लिया। बोझ के मारे कूला टूटा जाता है लेकिन मार के डर से गरदन पर बला सवार है और वक़्त टालती फिरती हैं। पिटती हुई लड़कियों की आवाज़ कान में चली आ रही है। दिल है कि अन्दर-ही-अन्दर सहमा जाता

ख़लीफ़ाजी—उस्तानी के बेटे-बेटियाँ; **बनैठी**—एक लम्बी लकड़ी के दोनों सिरों पर बड़े-बड़े लट्टू लगे होते हैं। लकड़ी को बीच से पकड़कर घुमाते हैं। यहाँ मतलब है मारना शुरू किया; **कूला**—कमर की दोनों तरफ़ की हड्डी को कूला या कूल्हा कहते हैं; **सहमा**—डरा जाता है।

है। इस अज़ाब से यह मुसीबत ग़नीमत मालूम होती है किसी ने रात के जूठे बरतन मांजने शुरू किये। गट्टे पड़-पड़ गये हैं और कन्धे रह-रह जाते हैं लेकिन छोटी बहन पिट रही है और चिल्ला रही है—"अच्छी उस्तानीजी मैं मर गई! अच्छी मैं तुम पर वारी गई! अच्छी ख़ुदा के लिये! अच्छी रसूल के लिये! अच्छी मैं ख़लीफ़ाजी की लौंडी हो गई! हाय रे, हाय रे, हाय रे, ओइ अम्माँ, ओई आपा। और आपा हैं कि झाँय-झाँय जल्दी-जल्दी बरतन माँज रही हैं! इन कामों से फ़राग़त पाई तो मसाला पीसने, आटा गूँधने, आग सुलगाने, गोश्त बघारने का वक़्त आया। फिर दोपहर को उस्तानीजी हैं कि सो रही हैं और मासूम बच्चे पंखा झल रहे हैं और दिल-ही-दिल में दुआयें माँग रहे हैं—इलाही ऐसी सो दें कि फिर न उठें। ग़र्ज़ और मकतबों में यह मुसीबत रहती है। असग़री के यहाँ न मार न धाड़। बड़ा डरावा यह था कि—"सुनो बुआ! तुम सबक़ याद नहीं करतीं। तुम्हारे सबब हमारे मकतब का नाम बदनाम होता है। मैं तुम्हारी अम्माँजान को बुलाकर कह दूँगी कि बी तुम्हारी लड़की यहाँ नहीं पढ़ती इसको तुम किसी दूसरी उस्तानी के पास बिठाओ।" इतना कहा कि लड़की का दम फ़ना हुआ। फिर सबक़ है कि नोके-ज़बान याद है। या जिसने सबक़ याद नहीं किया उससे कहा गया कि बुआ आज तुमने सबक़ याद नहीं किया और लड़कियाँ तो दोपहर को

गट्टा—खाल कड़ी होकर निशान पड़ जाते हैं, उसे गट्टा कहते हैं; **मासूम**—भोले, बेगुनाह; **दम फ़ना हुआ**—डर के मारे होश ग़ायब हुए; **नोके-ज़बान**—ज़बान की नोक।

सीयेंगी और तुम पढ़ना। यह सुनना था कि उसने जल्दी-जल्दी सबक़ हिफ़्ज़ किया। मकतब में महमूदा और हुस्नआरा ख़लीफ़ा थीं। न यहाँ झाड़ू देनी है, न बिछौने उठाने हैं, न चारपाइयाँ ढोनी हैं, न बरतन माँजने हैं, न ख़लीफ़ा को लादे फिरना है। बल्कि ख़ुद लड़कियों पर एक औरत नौकर थी। मुहब्बत और आराम। पढ़ना, लिखना, सीना तीन काम। ख़ूब शौक़ से लड़कियाँ तालीम पाती थीं। इस मुक़ाम पर मकतब की एक हिकायत लिखी जाती है जिससे असग़री का तर्ज़-तालीम मुख़्तसर तौर पर मालूम हो जायगा।

हिफ्ज़—याद; हिकायत—वृतान्त; तर्ज़-तालीम—पढ़ाने का ढंग।

बाब पच्चीसवाँ

इन्तज़ामे-मकतब के मुतल्लिक़ एक दिलचस्प हिकायत

सफ़ीहन एक औरत थी और फ़ज़ीलत उसकी बेटी कोई दस बरस की होगी। उस फ़ज़ीलत को ख़ुद-बख़ुद पढ़ने-लिखने और सीने-पिरोने का शौक़ था। सफ़ीहन यह चाहती थी कि फ़ज़ीलत तमाम घर में झाड़ू दे, लीपे-पोते, बरतन माँजे। ऐसे कामों में फ़ज़ीलत का दिल न लगता। माँ के कहने-सुनने से कर तो देती मगर वही बेदिली से। सफ़ीहन जो एक दिन फ़ज़ीलत पर नाख़ुश हुई तो साथ ले जाकर असग़री के मकतब में बिठा आई और कहा कि उस्तानीजी यह लड़की बड़ी निकम्मी है। जिस काम को कहती हूँ टका सा जवाब दे देती है। इसको ऐसा अदब दो कि घर के काम पर जी लगे। असग़री ने जो देखा तो फ़ज़ीलत को अपने ढब का पाया। इधर फ़ज़ीलत को अपनी मर्ज़ी की उस्तानी मिली। नूर के

मुतल्लिक़—बारे में; **सफ़ीहन**—सफ़ीहन का शाब्दिक अर्थ मूर्ख है और जिस औरत का यह नाम है उसकी बातों से मालूम होता है कि वह थी भी कुछ मूर्ख। लेकिन असल में उसका नाम सफ़िया रखा होगा जिसका अर्थ है चुना हुआ; **टका सा जवाब**—जवाब क्या है मानो दो पैसे हैं झट निकालकर हवाले किये; **नूर का तड़का**—बड़े सवेरे।

तड़के आती तो दोपहर को खाना खाने जाती। खाना-खाया और फिर भागी, पानी मकतब में आकर पीती और तीसरे पहर की आई-आई कहीं चार घड़ी रात गये जाती। कभी-कभी सफ़ीहन उसकी ख़बर लेने मकतब में आई तो कई दफ़ा उसको लड़कियों के साथ गुड़ियाँ खेलते देखा, दो-चार दफ़ा हंडकुल्हिया पकाते। एक दिन चार घड़ी रात गई होगी फ़ज़ीलत को जाने में देर हुई। सफ़ीहन उसको लेने आई तो क्या देखती है कि महमूदा कहानियाँ कह रही है और मकतब की सब लड़कियाँ घेरे हुए हैं। और खुद उस्तानीजी भी लड़कियों में बैठी हुई कहानियाँ सुन रही हैं। तब तो सफ़ीहन का जी जलकर ख़ाक हो गया और बोली कि—"वाह उस्तानी-जी, अच्छा तुमने लड़कियों का नास मार रखा है। जब कभी मैं फ़ज़ीलत को देखने आई कभी मैंने उसको पढ़ते न पाया। मकतब क्या है अच्छा खेल-ख़ाना है। तब ही तो लड़कियाँ दौड़-दौड़कर आती हैं।"

सफ़ीहन की बात सभी लड़कियों को नागवार हुई और ख़सूसन उसकी बेटी फ़ज़ीलत को। मगर उस्तानीजी के अदब से किसी ने कुछ जवाब न दिया। आख़िर ख़ुद उस्तानीजी ने कहा कि बुआ अगर तुम्हारी मर्ज़ी के मुवाफ़िक़ तुम्हारी लड़की की तालीम नहीं होती तो तुम को इख़्तियार है अपनी लड़की को उठा ले जाओ। मगर मकतब पर नाहक़ का

हंडकुल्हिया—लड़कियाँ हँडिया की बजाय कुल्हियों में खाना-पकाना सीखती हैं इसे हंडकुल्हिया कहते हैं; **नास मारना**—सत्यानाश करना; **खेल-खाना**—खेल घर; **ख़सूसन**—ख़ासतौर से।

इल्ज़ाम मत लगाओ। भला मैं तुम से पूछती हूँ कि फ़ज़ीलत ने माई जी के मकतब में कितने दिनों पढ़ा।"

सफ़ीहन ने कहा—"मीरांजी के चढ़े चाँद इसको बिठाया था।............मदार भर पढ़ा, ख़्वाजा मुईनुद्दीन भर पढ़ती रही। माह रजब से तुम्हारे यहाँ है।"

इल्ज़ाम—दोष; **माई जी**—यह भी कोई उस्तानी हैं; **मीरांजी**—मुसलमानों में अरबी महीनों का रिवाज है—१. मुहर्रम, २. सफ़र, ३. रबी-उल-अव्वल, ४. रबी उस्सानी, ५. जमादी-उल-अव्वल, ६. जमादी उस्सानी, ७. रजब, ८. शाबान, ९. रमज़ान, १०. शवाल, ११. ज़ीक़ाद, १२. ज़ीउलहज; मगर औरतों के गिनने के और ही नाम हैं। १. मुहर्रम, २. तेरह तेज़ी, ३. बारह वफ़ात, ४. मीरांजी, ५. मदार, ६. ख़्वाजा मुईनुद्दीन, ७. रजब, ८. शबबरात, ९. रमज़ान, १०. ईद, ११. ख़ाली, १२. बक़रीद। इनमें से १, ८ और ९ मर्द औरत दोनों में प्रयुक्त हैं। इसी तरह ८, १० और ११। लेकिन जनसाधारण मे बाक़ी महीने सिर्फ़ औरतों के हैं। तेरह तेजी का संभव है तेरह तेजी इसलिए नाम पड़ा कि इस महीने में जनाब पैग़म्बरे-ख़ुदा बीमार थे और तेरह दिन बड़े ज़ोर का बुख़ार रहा। बारह वफ़ात का मतलब है कि इस महीने के शुरू के बारह दिनों में हज़रत पैग़म्बर साहब ने वफ़ात पाई यानी परलोक सिधारे, ठीक दिन नहीं मालूम है। ४, ५ और ६ इन महीनों में उन बुज़ुर्गों के उर्स यानी बरसी होती है जिनके नाम से ये महीने हैं। मीरांजी से मुराद है हज़रत ग़ौस-उल-आज़म जिनकी ग्यारहवीं मशहूर है और मदार से हज़रत शाह बदीअ़उद्दीन जिनका मज़ार पानीपत में है और दूसरी जगह भी बताते हैं। हज़रत ख़्वाजा मुईनुद्दीन का मज़ार अजमेर शरीफ़ में है। मुसलमानों का बड़ा पुण्य-तीर्थ है। ग्यारहवें महीने का नाम ख़ाली इसलिये पड़ा कि इस महीने में कोई त्यौहार नहीं है।

असग़री ने पूछा—"माईजी के यहाँ फ़ज़ीलत ने क्या पढ़ा ?"

सफ़ीहन ने कहा—"तीन महीने में वलमहसनात का सिपारा और आधा ला यहुब्ब अल्लाह।"

असग़री ने कहा—"तीन महीने में डेढ़ सिपारा तो महीने में आधा सिपारा हुआ। यहाँ तुम्हारी फ़ज़ीलत माह रजब से है और अब ख़ाली का चाँद चढ़ा है चार महीने हुए, व या अब्रय्यु नफ़्सी का सिपारा कल ख़त्म हुआ। यानी साढ़े सात सिपारे पढ़े। हिसाब से महीने पीछे एक सिपारे के क़रीब होता है। माईजी के मकतब से दूना और जब फ़ज़ीलत यहाँ आई तो काली लकीर तक उसको खींचनी नहीं आती थी। अब नाम लिख लेती है और बिसात के मुवाफ़िक़ हरफ़ भी बुरे नहीं होते। बीस तक भी पूरी गिनती नहीं जानती थी, अब पन्द्रह का पहाड़ा याद करती है। सीने में पतीची तक सीधी सिलाई नहीं आती थी, अब इसके हाथ की बख़ियाँ देखो। लाइयो अक़लिया! ज़रा बकुचिया, फ़ज़ीलत ने जो कुर्ती में बख़िया किया है। ज़रा इनको दिखाना। और फ़ज़ीलत के हाथ की केकरी, मुरमुरा, बूटियाँ, लहरिया, छड़िया, खाना तोड़, देखत भूली, ख़ाका, तारशुमार, चम्बेली का जाल, तिरपन बेल, बुरा भला जैसा कुछ हो तो वो भी उठाती लाओ।"

वलमहसनात, ला यहुब्ब नफ़्सी—ये क़ुरान के अध्यायों के नाम हैं। **बिसात**—यानी उसकी उम्र के मुताबिक, सामर्थ्य। **पतीजी**—सीधी सिलाई; **बख़िया**—सादी सिलाई जिसे बाद में तुरपा जाता है बख़िया कहलाती है; **केकरी**—ये सब कढ़ाई की क़िस्में हैं।

फ़ज़ीलत बोली—"उस्तानीजी में जाकर ले आऊँ।" फ़ज़ीलत दौड़ी-दौड़ी जा अपना कशीदा उठा लाई। सफ़ीहन एक बात के दस-दस जवाब सुनकर हक्का-बक्का होकर रह गई। असग़री ने कहा—"बोलो बुआ, कुछ इन्साफ़ भी है? चार महीने में तुम्हारी लड़की और क्या सीख लेती।"

सफ़ीहन तो ऐसी शर्मिंदा हुई कि घड़ों पानी पड़ गया। अब उस्तानीजी से आँख सामने नहीं कर सकती थी। सफ़ीहन कमबख़्त के आने से महमूदा की मज़े की कहानी तो रह गई। सब लड़कियाँ लगीं उसकी तरफ़ घूर-घूर कर देखने। सफ़ीहन ने कहा—"उस्तानीजी, मुझको इसकी क्या ख़बर थी। फ़ज़ीलत दिन-भर तो यहाँ रहती है। रात को ऐसी देर करके जाती है कि खाना खाया और सोई। मुझको इससे पूछने-गच्छने का इत्तिफ़ाक़ होता नहीं। दो-चार मर्तबे मैं जो इधर को आ निकली तो कभी गुड़ियाँ खेलते पाया, कभी हंडकुल्हिया पकाते, कभी कहानियाँ सुनते। इससे मुझको ख़याल हुआ कि यह अपना वक़्त खेल-कूद में खोती है। अब तो मेरे मुँह से बात निकल गई माफ़ कीजिये।

असग़री—"बेशक, तुम्हारा शुबहा बेजा नहीं था। लेकिन मैं खेल-ही-खेल में इनको काम की बातें सिखाती हूँ। हंडकुल्हिया में लड़कियाँ हर एक तरह के खाने की तरकीब सीखती हैं। मसाले का अंदाज़ा, नमक की अटकल, ज़ायक़े

कशीदा—काढ़ा हुआ काम; **हक्का-बक्का**—आश्चर्यचकित, हैरान; **घड़ों पानी पड़ना**—शर्मिंदा होना; **कमबख़्त**—बदनसीब; **ज़ायक़ा**—स्वाद।

की शनाख्त, बू-बास की पहचान इनको आती है। क्यों फ़ज़ीलत परसों जुमा था तुम लड़कियों ने मिलकर कितना ज़र्दा पकाया था। उसकी तरकीब और सब हिसाब-किताब तो हम को सुनाओ।"

फ़ज़ीलत ने कहा—"हिसाब तो महमूदा बेगम ने अपनी किताब पर लिख रखा है, लेकिन तरकीब तो मैंने बमुजिब आपके फ़रमाने के खूब ध्यान लगाकर देख ली है और अच्छी तरह समझ में आ गई है। सेर भर चावल थे। पहले उनको लगन में भिगो दिया। शायद धेले की हर सिंगार की डंडियाँ मँगवाई थीं, पैसे भर मिली थीं। उनको कोई डेढ़-सेर पानी में जोश दिया। जब उबाल आ गया और रंग कट गया तो छानकर अर्क़ में चावल निचोड़ कर डाल दिये। चावल जब अधकचरे हो गये और एक कनी रही तो चावलों को कपड़े पर फैला दिया कि जितना पानी है सब निकल जाय। फिर आधपाव घी देगची में लोंगों का बघार देकर कड़कड़ाया और चावल डाल दिये। ऊपर से चावलों के हमवज़न खांड डाल दी और अटकल से इतना पानी डाल दिया कि चावलों की जो एक कनी बाक़ी रही थी गल जाय। फिर कोई एक छटाँक किशमिश घी में कड़कड़ाकर जब फूल गई, चावलों में डाल दी और ऊपर-तले अंगारे रखकर दम दे दिया।"

असग़री—"तरकीब तो दुरुस्त है लेकिन चावलों को जो मैंने देखा तो बैठ गये थे। मालूम होता है कि तुमने

शनाख्त—पहचान; **ज़र्दा**—केसरी मीठे चावल; **लगन**—एक प्रकार की थाली; **जोश**—उबाल; **हमवज़न**—बराबर वजन।

कपड़े पर फैलाकर ठंडे पानी से उनको धोया नहीं। फिर असग़री सफ़ीहन की तरफ़ मुख़ातिब होकर बोली कि—क्यों बुआ, ज़र्दा तो तुम्हारी लड़की ने ठीक पकाया? यह सब हंडकुल्हिया की बदौलत। बुआ महमूदा तुम अपने ज़र्दे का हिसाब तो सुनाओ।"

महमूदा जा हिसाब की किताब उठा लाई और कहा—"उस्तानीजी, छह सेर चावल, सेर भर पौने तीन आने के और एक पैसे की डंडियाँ और लौंगें। दो सेर का घी है, पौन पाव मँगवाया। आध पाव बघारते वक़्त डाला और छटाँक-भर किशमिश कड़कड़ाकर दम देते वक़्त। डेढ़ आने का घी हुआ और चौसेरी खांड सेर भर चार आने की। एक पैसे की किशमिश। कुल पौने ग्यारह आने के पैसे ख़र्च हुए। दस लड़कियों का साझा था। पौने दो आने तो मेरे थे और फ़ज़ीलत एक, अक़लिया दो, हुस्नआरा तीन, उम्मतुल्ला चार, आलिया पाँच, सलमती छह, अुम्मउन्नबीन सात, शकीला जमीला दोनों बहनें नौ, सब का एक आना।"

असग़री–"महमूदा, तुमने धोका खाया।"

महमूदा ने सोचा तो कहा—"हां उस्तानीजी, चावलों में कौड़ियाँ बचीं वो नामुराद बनिये ने हज़म कीं। अय हय डंडियाँ और लौंगें ही कौड़ियों में आ जातीं तो एक पैसा बचता। दयानत जा तो बनिये से कौड़ियाँ माँगकर ला।"

असग़री–"अयँ अयँ क्या करती हो। कौड़ियों का मामला, परसों की बात। अब कुछ मत कहो। तुम्हारी ग़लती की सज़ा है कि इतना नुक़सान सहो।" असग़री हुस्नआरा को

तरफ़ मुख़ातिब होकर बोली—"ज़र्दे की तरकीब और लागत तो मालूम हुई, भला देगचा भरा सेर भर ज़र्दा तुम सबने क्या किया ?"

हुस्नआरा—"मँझोली दो रकाबियाँ चोटीदार भर कर अल्ला के नाम की मस्जिद में भेज दीं। बाक़ी में तेरह तश्तरियाँ भरी गईं। मकतब में हम सब पच्चीस लड़कियाँ हैं। दो-दो में एक-एक तश्तरी आई। तेरहवीं तश्तरी में मैं अकेली थी।"

असग़री—"क्या तुमने दुहरा हिस्सा लिया ?"

हुस्नआरा—"नहीं तो। मेरी तश्तरी आधी ही थी, सबसे पूछ लीजिये।"

असग़री—"फिर तुम बिरादरी से अलग क्यों रहीं ?"

हुस्नआरा तो चुप हुई। उम्मतुल्ला ने कहा—"उस्तानीजी, इनको सबके साथ खाते घिन आती है।"

हुस्नआरा—"नहीं उस्तानीजी, घिन की बात नहीं। मैं दस्तरख़ान पर सब लड़कियों से पीछे आई इससे अकेली रह गई। आप महमूदा बेगम से दरयाफ़्त कर लीजिये।"

उम्मतुल्ला—"क्यों, तुम अभी थोड़ी देर हुई मेरा झूठा पानी पीने पर लड़ नहीं चुकीं।"

हुस्नआरा—"मैं लड़ी थी या सिर्फ़ इतनी बात कही थी कि जितनी प्यास हुआ करे उसी क़दर पानी लिया करो। गिलास में झूठा पानी छोड़ देना ऐब है।"

मँझोली—दरम्यानी, न ज्यादा बड़ी न छोटी; **चोटीदार**—किनारे ऊपर को निकले हुए।

फिर असग़री ने महमूदा से पूछा—"वो रिसाला ख़्वाने-नैमत जो मैंने तुमको दिया था उसमें के तुम सब खाने पकाकर देख चुकीं या अभी नहीं।"

महमूदा ने थोड़ी देर ताम्मुल करके कहा—"मैं अपनी दानिस्त में सब पकवा चुकी हूँ बल्कि कई-कई बार नौबत आ चुकी है। जितनी बड़ी लड़कियाँ हैं मामूली रोज़मर्रा के खानों की तरकीब सबको मालूम है। इसके अलावा भी हर क़िस्म के कबाब, सीख़ के पसन्दों के शामी, गोलियों के कोफ़्ते, मामूली पुलाव, कोरमा पुलाव, कच्ची बिरयानी, नूर महली, ज़र्दा, मुतंजन, समोसे, मीठे सलौने, क़लमी बड़े, दही बड़े सुहाल, सेव, घी की तली दाल, कचौड़ियाँ, पापड़ बूरानी, फीरीनी, हलवा सोहन पपड़ी का, नरम इन्दरसे की गोलियाँ, सब चीज़ें बार-बार पक चुकी हैं और सब लड़कियों ने पकते देखी बल्कि अपने हाथों पकाई हैं। और यह तो आपको मालूम है कि हमारे मकतब में हंडकुल्हिया का तो नाम है जो चीज़ पकती है ख़ास एक कुन्बे के लायक़ पकती है और हुस्नआरा को तो चटनियों और मुरब्बों से बहुत शौक़ है। ये चीज़ें इनके सिवाय और लड़कियाँ ज़रा कम जानती हैं।"

इसके बाद असग़री ने सफ़ीहन से कहा कि—"बुआ अब तुमको यहाँ की हंडकुल्हिया का फ़ायदा तो मालूम हो गया होगा। रात ज़्यादा हो गई, बाज़ लड़कियों के घर दूर हैं,

---

रिसाला—छोटी-सी किताब को रिसाला कहते हैं; ख़्वाने-नैमत उस किताब का नाम है यानी रंग-बिरंग की नैमतें याने भोजन; **दानिस्त**—जानकारी।

अगर कल आओ तो गुड़ियों की सैर तुमको दिखायें और शाम तक रहो तो कहानियाँ भी तुमको सुनवायें।"

सब लोग रुख़सत हुए। सफ़ीहन चलते-चलते असग़री के आगे हाथ जोड़कर कहने लगी कि—"उस्तानीजी लिल्लाह मेरा क़सूर माफ़ कीजिएगा।"

अगले रोज़ जो सफ़ीहन आई तो लड़कियों के काढ़े हुए कशीदे, लड़कियों के बुने हुये गोटे, लड़कियों के मोड़े हुये गोखरू, लड़कियों की बनाई हुई तूइयाँ, और चंपा, लड़कियों के क़ता किये हुए मरदाने और ज़नाने कपड़े, असग़री ने सब दिखाए। जिनके देखने से सफ़ीहन को निहायत अचम्भा हुआ। इसके बाद लड़कियों की गुड़ियों के घर दिखाए। उन घरों में ख़ानादारी का सब लवाज़मा, फ़र्श फ़रोश, गाव तकिये, उगालदान, चिलमची, आफ़ताबा, पिटारी, पर्दा, चिलमन, छतगीरी, पंखा, मसहरी, पलंग, हर तरह के बरतन, हर तरह का सामाने-आराइश अपने-अपने ठिकाने से रखा हुआ था और गुड़ियाँ ऐसी सजी हुई थीं कि ऐन में शादी के घर में मेहमान जमा हैं। जब गुड़ियों के घरों को देख चुकी तो असग़री ने सफ़ीहन को कहा कि—"लड़कियों के सब खेलों में मुझको गुड़ियों का खेल बहुत पसन्द है। इसके ज़रिए से

लिल्लाह—खुदा के लिए; **गोखरू**—तुई, चंपा वग़ैरह गोटे के तरह-तरह के फूल होते हैं जो हाथ से मोड़कर बनाये जाते हैं; **अचम्भा**—आश्चर्य; **लवाज़मा**—सामान; **चिलमची**—हाथ-मुँह धोने का बरतन; **आफ़ताबा**—ढकनेदार लोटा; **पिटारी**—बड़ा पानदान; **छतगीरी**—छत पर टाँगा जाने वाला चँदोवा; **सामाने-आराइश**—सजावट का सामान; **ऐन में**—हूबहू।

लड़कियाँ सोना-पिरोना, कपड़ों की कता और घर का बन्दोबस्त, हर तरह की तक़रीबात, छठी, दूध छुटाई, खीर चटाई, बिस्मिल्ला, रोज़ा, मँगनी, ईदी, साँवनी मुहर्रम की कुफ्लियाँ और गोटा तीर-त्यौहार, साचक, बरात, बहूड़ा ब्याह, चाले-चौथी की राह-ओ-रस्म से वाक़फ़ियत हासिल करती हैं। बुआ सफ़ोहन, तुम्हारी लड़की तो अभी थोड़े दिनों से आती है, जो लड़कियाँ मेरे मकतब में बहुत दिनों से हैं जैसे यह बैठी उम्मुन्नबीन या मेरी ननद महमूदा या हुस्नआरा, तोबा-तोबा करके कहती हूँ कि अगर इनको किसी बड़े भरे-पूरे घर का इन्तज़ाम इस वक्त सौंप दिया जाय तो इन्शा अल्ला ऐसा करेंगी जैसे कोई बड़ी मश्शाक़ और तजुर्बेकार करती हैं। मैं तो सिर्फ़ पढ़ने पर ताकीद नहीं करती। पढ़ने के अलावा इनको दुनिया के काम का भी बनाती हूँ जो चन्द रोज़ बाद इनके सर पड़ेगा।"

यह कहकर असग़री ने हुस्नआरा को बुलाया और कहा कि—"बुआ, तुम्हारी गुड़िया का घर तो ख़ूब आरास्ता है सिर्फ़ एक कसर है कि तुम्हारी गुड़ियों के पास रंगीन जोड़े नज़र नहीं आते। क्या तुमको रंगना नहीं आता ?"

तकरीबात—ऐसा शुभ अवसर जब बहुत से लोग जमा हों; **छठी**—मुण्डन; **दूध छुटाई खीर चटाई**—दूध छुड़ाने के बाद बच्चों को खीर चटाई जाती है उसकी खुशी; **बिस्मिल्ला**—पढ़ना शुरू करने की ख़ुशी को बिस्मिल्ला कहते हैं; **साँवनी**—साँवन के महीने में एक समधियाने से दूसरे समधियाने में जो इंदरसे की गोलियाँ फेनियाँ वगैरह जाती हैं; **कुफ्लियाँ**—खीर की कुफिलयाँ; **तजुर्बेकार**—प्रवीण; **आरास्ता**—सजा हुआ।

हुस्नआरा—"रंग तो मुझको महमूदा बेगम ने बहुत से सिखा दिए हैं, यूँ ही आलकसी के मारे नहीं रँगे।"

असग़री—"भला बताओ तो।"

हुस्नआरा—"उस्तानीजी, बरसात के रंग सुर्ख़, नारंगी, गुलेअनार, गुलेशफ़्तालू, सरदई, धानी, ऊदा; जाड़े के गेंदई, जोगिया, उन्नाबी, काही, तेलिया, काकरेज़ी, स्याह, नीला, गुलाबी, ज़ाफ़रानी, कोकयी, करंजुई, और गरमी के प्याज़ी, आबी, चंपई, कपासी, बादामी, काफ़री, दूधिया, ख़शख़ाशी, फ़ालसई, मलागीरी, सिन्दूरिया। रंग तो और बहुत हैं मगर मैंने वही बयान किये जो अकसर पहने जाते हैं।"

असग़री—"रंगों के नाम तो तुमने बहुत से गिनवा दिये, भला यह तो बताओ कि यह सब रंग तुमको रँगने भी आते हैं।"

हुस्नआरा—"मैंने उन्हीं रंगों का नाम लिया है जो मुझ को खुद रँगने आते हैं।"

असग़री—"भला बताओ तो सरदई क्योंकर रंगते हैं?"

हुस्नआरा—"काही क़ंद अच्छे गहरे रंग की आध गज़ मँगवाई और पानी को खूब जोश करके फिटकरी की डली और ऊपर से क़ंद का टुकड़ा डाल कर हिला दिया। फिटकरी की तासीर से क़ंद का रंग कट जायगा, बस उसमें कपड़ा रंग लिया।"

असग़री—"भला क़ंद न मिले।"

हुस्नआरा—"तो टेसू के फूलों को जोश करके फिटकरी पीसकर मिला दी सरदई हो जायगा। लेकिन हलका कपासी

आलकसी—आलस्य; **काही**—घास के रंग की।

होगा। अच्छा सरदई बे क़ंद के नहीं रंगा जाता और अगर क़ंद की जगह बनात का रंग काटा जाय तो वो उम्दा रंग आता है कि सुबहान अल्लाह। लेकिन इन दिनों मजंटन ऐसा चला है कि सब रंगों को मात किया है। कपड़े तो कपड़े, मिठाई, खाने का गोटा, मजंटन में निहायत खुश रंग रंगा जाता है। बड़ी आपा जान ने मजंटन के रंग का ज़र्दा पकाकर भेजा था। ज़ाफ़रान से बेहतर रंग था।"

असग़रीख़ानम ने घबराकर पूछा—"हुस्नआरा कहीं तुमने वो मजंटन के रंगे हुए चावल खाये तो नहीं।"

हुस्नआरा—"मैंने खाये तो नहीं लेकिन उस्तानीजी क्यों? कुछ बुरी बात है?"

असग़रीख़ानम—"अय हय, मजंटन में संखिया पड़ती है। ख़बरदार मजंटन की कोई चीज़ ज़बान पर मत रखना।"

हुस्नआरा—"मैंने तो मजंटन का रंगा हुआ गोटा मुहर्रम में बहुत खाया है।"

असग़रीख़ानम—"क्या हुआ, रमक़ बराबर मजंटन में तो भतेरा गोटा रंगा जाता है, इस सबब से तुमको कुछ नुक़सान न हुआ, लेकिन याद रखो कि उसमें ज़हर है।"

हुस्नआरा—"मजंटन की रंगी हुई मिठाई लोग मनों मँगवाते हैं।"

असग़रीख़ानम—"बहुत बुरा करते हैं, जहर जब अपनी मिक़दार पर पहुँच जायगा, ज़रूर असर करेगा।"

शाम हुई तो लड़कियाँ अपने-अपने कशीदे और किताबें रख

रमक़—ज़रा सा; भतेरा—बहुतेरा; मिक़दार—परिमाण।

मामूल के मुताबिक खेलने और कहानियाँ और पहेलियाँ कहने-सुनने को आ बैठीं। असग़री ने सफ़ीहन से कहा कि—"यहाँ चिड़े-चिड़ियाँ की कहानियाँ नहीं होतीं। कहानियों की एक बहुत उम्दा किताब है मुंतख़िब-उलहिकायात। जिसमें बड़ी अच्छी-अच्छी कहानियाँ हैं और हर एक कहानी से एक नसीहत की बात निकाली है। उस किताब की ज़बान भी बहुत शुस्ता है। अब ये लड़कियाँ उसी किताब की कहानियों से जी बहलायेंगी। कहानियाँ कहने से इनकी तक़रीर साफ़ होती है, अदायें-मतलब की इस्तेदाद बढ़ती जाती है और जब कभी मुझको फ़ुरसत होती है तो मैं कहानियों के बीच-बीच में इनसे उलझती जाती हूँ और जैसी इनकी समझ है ये मेरी बात का जवाब देती हैं। अगर नादुरुस्त होता है मैं बता देती हूँ। पहेलियों के बूझने से इनकी अक़्ल को तरक्क़ी और इनके ज़हन को तेज़ी होती है। लेकिन तुम इनमें बैठकर सैर देखो। मुझको तो आलिया की माँ ने बुला भेजा है उनके बच्चे का जी अच्छा नहीं। बहुत-बहुत मिन्नतें कहला भेजी हैं। न जाऊँगी तो बुरा मानेंगी

मामूल—दस्तूर; **चिड़ियाँ**—चिड़े-चिड़िया की कहानी यह है कि एक थी चिड़िया और एक था चिड़ा। दोनों ने मिलकर खिचड़ी पकाई, चिड़ा गया घी लेने। चिड़िया खा पी, दरवाज़ा भेड़ कर पड़ रही। चिड़े ने आकर पुकारा—"चिड़िया-चिड़िया दरवाज़ा खोल।" चिड़िया ने कहा—दुर मुये मेरी आँखें दुखती हैं। चिड़ा दरवाज़ा तोड़ कर अन्दर गया। दोनों में खूब लड़ाई हुई चूं चूं चूं चूं; **मुंतख़िब-उलहिकायात**—कहानियों का चुना हुआ संग्रह; **शुस्ता**—सुसंस्कृत; **तक़रीर**—भाषण-शक्ति; **अदाये-मतलब**—बयान, वर्णन; **इस्तेदाद**—निपुणता; **नादुरुस्त**—ग़लत, अशुद्ध; **ज़हन**—दिमाग; **मिन्नतें**—खुशामद और आजिज़ी।

और मेरा जी भी नहीं मानता।"

सफ़ीहन—"हाँ मैंने भी सुना है कि उनके लड़के ने कई दिन से दूध नहीं पीया। बेचारी बहुत हिरासां हो रही हैं। अय हय खुदा करे निगोड़ा जीता रहे, बड़ी अल्ला आमीन का बच्चा है। दस बरस में फड़क-फड़क कर खुदा ने यह सूरत दिखाई है। आलिया के ऊपर यही तो एक बच्चा हुआ है। उस्तानीजी तुमको इलाज के वास्ते बुलाया होगा।"

असग़री—"इलाज-विलाज तो मुझको कुछ भी नहीं आता। एक मर्तबा पहले इसी लड़के को प्यास हो गई थी मैंने जहर मोहरा, बंसलोचन, गुलाब का जीरा, छोटी इलायची ज़ीरे की गिरी, कबाबचीनी, खुरफ़ा इस तरह की दो-चार दवायें बता दी थीं। खुदा का करना लड़का अच्छा हो गया।"

सफ़ीहन—"उस्तानीजी, तुम तो माशा अल्लाह अच्छी ख़ासी हकीम भी हो।"

असग़री—"अजी अल्ला-अल्ला करो। हकीमों का तो बहुत बड़ा दर्जा है मैं बेचारी क्या हकीमी करूँगी। पर बात यह है कि हमारे मैके में दवा-दरमन का बहुत ख़याल है। जब मैं छोटी थी जो दवा आती मैं ही उसको छानती बनाती और ख़याल रखती। इस तरह पर सुनी-सुनाई दो-चार दवाएँ याद हैं, जिनको ज़रूरत हुई बता दी। और बच्चों का इलाज

हिरासां—निराश; **निगोड़ा**—शाब्दिक अर्थ है लंगड़ा, अपाहिज लेकिन यहाँ मुराद है दया का पात्र जैसे बेचारा; **आमीन**—अल्ला आमीन का बच्चा याने अल्ला पीर मनाये का बच्चा; **फड़क-फड़ककर**—बड़ी तमन्ना के बाद; **खुरफ़ा**—कुलफ़ा।

तो औरतें ही कर-करा लिया करती हैं। जब ऐसी ही मुश्किल आ पड़ती है तो हकीम के पास ले जाते हैं।"

सफ़ीहन—"उस्तानीजी, तुमने मेहरबानी करके मुझको अपने मकतब का सब इन्तज़ाम तो दिखाया लिल्लाह ज़रा दम-के-दम ठहर जाओ तो मैं देख लूँ कि लड़कियाँ क्योंकर कहानियाँ कहती हैं और कहानियों में क्योंकर तुम तालीम करती हो।"

असग़री—"बुआ, मुझको तो देर होती है पर ख़ैर तुम्हारी ख़ातिर है। अच्छा लड़कियों आज किसकी बारी है?"

महमूदा—"बारी तो उम्मतुल्ला की है, लेकिन फ़ज़ीलत से कहलाइये।"

असग़री—"अच्छा फ़ज़ीलत, जिस किताब में से तुम्हारा जी चाहे जल्दी से कोई बहुत छोटी-सी कहानी कहो।"

फ़ज़ीलत ने कहानी शुरू की कि एक था बादशाह।

असग़री—"बादशाह किसको कहते हैं?"

फ़ज़ीलत—"जैसे देहली में बहादुरशाह थे।"

असग़री—"यह तो तुमने ऐसी बात कही कि जो देहली और बहादुरशाह को जानता हो वही समझे।"

फ़ज़ीलत—"बादशाह कहते हैं हाकिम को।"

असग़री—"तो कोतवाल थानेदार भी हाकिम हैं।"

फ़ज़ीलत—"नहीं, कोतवाल थानेदार तो बादशाह नहीं हैं, ये तो बादशाह के नौकर हैं।"

असग़री—"क्यों, क्या कोतवाल हाकिम नहीं है।"

लिल्लाह—ईश्वर के लिए; **हाकिम**—शासक।

फ़ज़ीलत—"हाकिम तो है लेकिन बादशाह सबसे बड़ा हाकिम होता है और सब पर हुक्म चलाता है।"

असग़री—"हमारा बादशाह कौन है ?"

फ़ज़ीलत—"जब से बहादुरशाह को अंग्रेज़ पकड़कर काले पानी ले गये तब से तो कोई बादशाह नहीं।"

यह सुनकर सब लड़कियाँ हँस पड़ीं।

असग़री—"फ़ज़ीलत तुम बड़ी नादान हो। तुमने ख़ुद कहा कि जो सबसे बड़ा हाकिम हो और सब पर हुक्म चलाये वो बादशाह होता है और यह भी जानती हो कि बहादुरशाह को अंग्रेज़ पकड़ कर काले पानी ले गये, तो अंग्रेज बादशाह हुए या न हुए ?"

फ़ज़ीलत—"हाँ, हुए तो सही।"

असग़री—"अच्छा अब बताओ हमारा कौन बादशाह है ?"

फ़ज़ीलत—"अंग्रेज।"

असग़री—"क्या अंग्रेज़ किसी ख़ास शख्स का नाम है ?"

फ़ज़ीलत—'नहीं, सैकड़ों, हज़ारों अंग्रेज़ हैं।"

असग़री—"क्या सब अंग्रेज़ बादशाह हैं ?"

फ़ज़ीलत—"और क्या।"

यह सुनकर फिर लड़कियाँ हँसीं।

असग़री ने हुस्नआरा की तरफ़ इशारा किया कि तुम जवाब दो।

हुस्नआरा—"उस्तानीजी, हमारा बादशाह मलिका विक्टोरिया है।"

असग़री—'मर्द है या औरत ?"

हुस्नआरा—"औरत है।"

असग़री—"कहाँ रहती है?"

हुस्नआरा—"लन्दन में।"

असग़री—"लन्दन कहाँ है?"

हुस्नआरा—अंग्रेजों की विलायत में एक बहुत बड़ा शहर है।"

असग़री—"कितनी दूर होगा?"

हुस्नआरा—"मैंने एक किताब में चार हज़ार कोस लिखा देखा हैं।"

असग़री—"कोस कितना लम्बा होता है?"

हुस्नआरा—"उस्तानीजी सुल्तान निज़ामुद्दीन को तीन कोस कहते हैं।"

यह सुनकर महमूदा हँसी और कहा कि—"१७६० गज़ का होता है।"

असग़री ने महमूदा से पूछा कि—"इस मर्तबा जो मैं कुतुब साहब को गई थी और तुम भी मेरे साथ थीं। तुमने भी देखा था कि यहाँ से जातियों को बायें हाथ फ़ासले से सड़क पर पत्थर गड़े थे और उन पत्थरों पर कुछ लिखा हुआ था। भला वो पत्थर कैसे थे।"

महमूदा अटकल से यही समझी थी कि कोसों के पत्थर थे, आधे कोस का मील होता है, हर मील पर पत्थर गड़ा है, इसमें यही लिखा होता है कि यहाँ से देहली इस क़दर मील है और कुतुब साहब इतने मील। इसके बाद असग़री

विलायत—देश; **जातियों को**—जाते वक़्त।

फिर हुस्नआरा की तरफ़ मुख़ातिब हुई और पूछा—"हाँ बुआ, लन्दन किस तरफ़ है ?"

हुस्नआरा—"उत्तर में है।"

असग़री—"वो मुल्क गर्म है या सर्द ?"

हुस्नआरा—"यह तो मैं नहीं जानती।"

महमूदा—"बड़ा सर्द है। जितना उत्तर को जाओ गर्मी कम है और जितना दक्खिन को चलो गरमी ज़्यादा होती जाती है।"

सफ़ीहन—"अच्छी उस्तानी जी, औरत बादशाह है ?"

असग़री—"इसमें ताज्जुब की क्या बात है ?"

सफ़ीहन—"ताज्जुब की बात क्यों नहीं ? औरत ज़ात क्या करती होगी ?"

असग़री—"जो मर्द बादशाह करते हैं वही औरत करती है। मुल्क का बन्दोबस्त, रैयत का पालन।"

सफ़ीहन—"औरत तो क्या ख़ाक करती होगी। करते सब-कुछ अंग्रेज़ होंगे, बराये नाम औरत को बादशाह बना रखा होगा।"

असग़री—"ये सब अंग्रेज़ मलिका के नौकर हैं। हर एक का काम अलग हैं। हर एक का इख़्तियार जुदा है। अपने-अपने काम पर सब मुस्तैद रहते हैं। और जब मर्द बादशाह होते हैं तब भी अकेला बादशाह सारी दुनिया को उठाकर अपने सर पर नहीं रख लिया करता। नौकर-चाकर ही सब काम किया करते हैं।"

बराये नाम—नाम के लिए; **मलिका**—रानी।

सफ़ीहन—"मेरा जी तो क़बूल नहीं करता कि औरत ज़ात बादशाहत कर सके।"

असग़री—"तुमने भोपाल की बेगम का भी नाम सुना है।"

सफ़ीहन—"क्यों, सुना क्यों नहीं ख़ुद मेरे सुसरे भोपाल में नौकर हैं।"

असग़री—"बस इसी तरह समझ लो, भोपाल ज़रा सा मुल्क है और मलिका विक्टोरिया के पास बड़ी सल्तनत है। जिस तरह भोपाल की बेगम अपने छोटे मुल्क का बन्दोबस्त करती हैं, मलिका विक्टोरिया अपनी बड़ी सल्तनत का इन्तज़ाम करती हैं। भोपाल छोटी सरकार है, नौकर-चाकर कम हैं और थोड़ी तनख़ा पाते हैं। मलिका विक्टोरिया की सरकार आलीजाह सरकार है, बड़े कारख़ाने, लाखों नौकर, तनख़ाहें बेश क़रार।"

सफ़ीहन—"अच्छी, मलिका का कोई मियाँ है ?"

असग़री—"हाँ, मगर मौत पर किसी का ज़ोर नहीं चलता। चाँद को भी ख़ुदा ने दाग़ लगा दिया है। कई बरस हुए मलिका बेवा हो गईं।"

सफ़ीहन—"मलिका की औलाद है ?"

असग़री—"हाँ, ख़ुदा रखे बेटे, पोते, बेटियाँ, नवासियाँ सब-कुछ है।"

सफ़ीहन—"अच्छी, मलिका इस मुल्क में क्यों नहीं आतीं।"

सल्तनत—राज्य; **आलीजाह**—ऊँचे दर्जे की; **बेश क़रार**—ऊँची-ऊँची; **बेवा**—विधवा।

असग़री—"वहाँ भी बड़ा मुल्क है, वहाँ के कामों से फ़ुरसत नहीं मिलती और बादशाहों का जगह से हिलना क्या आसान बात है। लेकिन इन दिनों मलिका का मँझला बेटा आने वाला है। बड़ी तैयारियाँ हो रही हैं, मैंने अख़बार में देखा है।"

सफ़ीहन—"अच्छी, मलिका को हज़ारों कोस दूर बैठे यहाँ की ख़बर होती होगी?"

असग़री—क्यों नहीं? ज़रा-ज़रा ख़बर होती है। डाक और तार बरक़ी पर रात-दिन ख़बरें आती-जाती हैं। हज़ारों अख़बार विलायत जाते हैं।"

सफ़ीहन—"मलिका क्योंकर देखें?"

असग़री—"क्योंकर बताऊँ, लेकिन उनकी तसवीर अलबत्ता देख सकती हो।"

सफ़ीहन—"ख़ैर, तसवीर ही देख लेते।"

असग़री—"बुआ, तुम भी तमाशे की बातें करती हो, क्या तुमने रुपया नहीं देखा?"

सफ़ीहन—"क्यों नहीं देखा।"

असग़री—"औरत का चेहरा जो बना है वो मलिका की तसवीर है। ख़तों के टिकटों पर मलिका की तसवीर है और मेरे पास मलिका की एक बड़ी उम्दा तसवीर और है। मेरे अब्बा को किसी अंग्रेज़ ने दी थी। वो उन्होंने मेरे पास भेज दी थी। महमूदा, ज़रा मेरा संदूक़चा तो उठा लाओ।"

संदूक़चे में से असग़री ने तसवीर निकाल कर दिखाई

तार बरक़ी—बिजली का तार।

और सब लड़कियों ने निहायत शौक़ से मलिका की तसवीर को देखा।

सफ़ीहन—"क्या अच्छी तसवीर है। ऐन में मलिका खड़ी हैं, बस बोलने की देर है।

असग़री—"बेशक यह तसवीर हूबहू मलिका की है। रुपये के चेहरे से मिलाकर देखो कितना फ़र्क़ है। यह तसवीर हाथ की बनाई हुई नहीं है। एक आईना होता है उसको कुछ मसाला लगा कर सामने रख देते हैं। ख़ुदबख़ुद जैसे-का-तैसा अक्स उतर आता है।"

सफ़ीहन—"मलिका की सूरत तो बहुत ही पाकीज़ा है।"

असग़री—"अब सूरत की पाकीज़गी को क्या देखती हो। एक तो उम्र, दूसरा बेवगी का रंज और सबसे बढ़कर मुल्कदारी के तरद्दुदात। पर हाँ मैंने मलिका की उस वक़्त की तसवीर देखी थी जब उनका नया-नया ब्याह हुआ था। बिला मुबालग़ा ऐसा मालूम होता था जैसे चौदवीं रात का चाँद।"

सफ़ीहन—"क्यों उस्तानी जी, जब मलिका के बेटे हैं तो बाप के मरने पर बड़ा बेटा तख़्त पर क्यों न बैठा?"

असग़री—"यह तख़्त मलिका के शौहर का नहीं है बल्कि मलिका ने अपने चचा से पाया है और मलिका ने तख़्तनशीन होने के बहुत दिनों बाद अपना ब्याह किया।"

ऐन में—साक्षात; **अक्स**—प्रतिबिम्ब; **पाकीज़ा**—सुन्दर, निर्दोष; **मुल्कदारी**—राज्य; **तरद्दुदात**—चिन्ताएँ; **बिला मुबालग़ा**—बिना अतिशयोक्ति के; **तख़्तनशीन**—राजगद्दी पर बैठना।

सफ़ीहन—"हाँ तो यों कहो मलिका के शौहर बादशाह न थे।"

असग़री—"नहीं नहीं, मगर वो शाही ख़ानदान से थे।"

सफ़ीहन—"मुझे तो रह-रह कर यही ख़याल आता है कि औरत से मुल्क का बन्दोबस्त क्या होता होगा।"

असग़री—"तुम कैसी लग़्व और लायानी बातें करती हो। तुमने मलिका को अपनी जैसी या मेरी जैसी औरत समझ रखा है इससे तुमको ताज्जुब होता है। लेकिन बीवी बन्नो, ख़ुदा जिनके रुतबे बड़े करता है वैसा ही हौसला और वैसी ही अक़्ल भी उनको देता है। न सब मर्द यकसाँ न सब औरतें यकसाँ। और हमको इसका क्या सोच पड़ गया कि मलिका अपनी अक़्ल से भी मुल्क का बन्दोबस्त करती है जैसा कि वाक़ई है या करते सब कुछ वज़ीर और सलाहकार हैं और मलिका सिर्फ़ बराये नाम हैं जैसा कि तुम शुबहा करती हो। हमको तो इतना बस करता है कि मलिका की अमलदारी में (ख़ुदा उनको सलामत रखे) अमन-चैन से बैठे हैं। किसी तरह का ज़ोर नहीं, भेंट नहीं बेगार नहीं, लूट नहीं खसोट नहीं, मार नहीं धाड़ नहीं, लड़ाई नहीं झगड़ा नहीं। तुमको इस अमलदारी की जब क़दर आये कि किसी दूसरी अमलदारी में जाकर रहो। और गई तो मैं भी नहीं और ख़ुदा न ले जाये, लेकिन तारीख़ की किताबों में देखती हूँ, अख़बार पढ़ती हूँ, बाज़ ज़ालिम बादशाह ने लोगों को ऐसा

लग़्व—बेहूदा; लायानी—बेमानी व्यर्थ; भेंट—नज़र; बेगार—मुफ़्त की टहल।

सताया है कि उनके हालात देखकर कलेजा थर-थर काँपने लगता है और अब भी दुनिया में सभी तरह के बादशाह हैं। लेकिन ख़ल्के-अल्लाह को जैसा कुछ आराम हमारी मलिका विक्टोरिया की अमलदारी में है रूये-ज़मीन पर कहीं नहीं। यह सच है कि मलिका हमारे मुल्क में रहती होतीं तो हम लोगों को उनकी ज़ात से बहुत फ़ायदे पहुँचते। फिर भी मैंने तहक़ीक़ सुना है कि जब यहाँ की रिआया की ज़रा-सी तकलीफ़ भी सुन पाती हैं तो उनका दिल बेचैन हो जाता है और मलिका की रहमदिली और ख़ुदातरसी की हिकायतें कभी-कभी अख़बार में नज़र से गुज़री हैं उनसे मालूम होता है कि बेशक उनको हम लोगों की परदाख़्त का बहुत बड़ा ख़याल है और मैं समझती हूँ कि हो-न-हो मलिका ने अपने बेटे को भी इसी ग़रज़ से भेजा है कि अपनी आँखों से रैयत का हाल देखो और मुझको आकर कहो।"

सफ़ीहन—"मलिका के बेटे कब तक आने वाले हैं ?"

असग़री—"अभी रवानगी की तारीख़ मुक़र्रर नहीं हुई मगर आना ठहर चुका है। मैं समझती हूँ असल ख़ैर से शायद डेढ़-दो महीने में दाख़िल हो जायेंगे।"

सफ़ीहन—"यहाँ दिल्ली में भी आयेंगे ?"

असग़री—"ज़रूर, तमाम हिन्दुस्तान में फिरेंगे। दिल्ली तो बड़ा मशहूर शहर है, सैकड़ों बरस तक मुसलमानों का

ख़ल्के-अल्लाह—ईश्वर की सृष्टि; **रूये-ज़मीन**—धरती; **तहक़ीक़**—हक़ीक़त में; **हिकायत**—वर्णन, वृत्तान्त; **परदाख़्त**—परवरिश; **मुक़र्रर**—स्थिर।

दार-उल-सल्तनत रहा है। ऐसा नहीं हो सकता कि यहाँ न आयें।"

सफ़ीहन—"हमको क्या, हमारी तरफ़ से आयें न आयें दोनों बराबर। हम उनको देख तो सकते ही नहीं।"

असग़री—"और देख भी सकतीं तो क्या करतीं ? आने दो मैं उनकी तसवीर भी तुमको दिखा दूँगी।"

सफ़ीहन—"उस्तानीजी, अगर मलिका के बेटे की तसवीर तुम्हारे पास है तो अभी दिखा दो न।"

असग़री—"मेरे पास है भी नहीं और मैंने देखी भी नहीं, मगर अब्बा कलकत्ते के दरबार में जाने वाले हैं। उन्होंने मुझ को लिखा है कि बन पड़ा तो तमाम शाही ख़ानदान के लोगों की तसवीरें तुम्हारे लिए लाऊँगा।"

सफ़ीहन—"हुस्नआरा ने लन्दन को चार हज़ार कोस बताया तो कहीं बरसों में यहाँ से वहाँ तक आते-जाते होंगे।"

असग़री—"नहीं समन्दर-समन्दर एक महीने में बाफ़राग़त पहुँच जाते हैं।"

सफ़ीहन—"अय हय समन्दर होकर जाना पड़ता है। नोज अंग्रेज़ों के भी कैसे दिल हैं, उनको समन्दर से डर नहीं लगता मेरे तो समन्दर का नाम सुनने से रोंगटे खड़े होते हैं।

असग़रीख़ानम—"समन्दर से डरने की क्या बात है ? मज़े में जहाज़ पर बैठ लिए अच्छा-खासा ख़ानये-रवाँ बन गया।"

दार-उल-सल्तनत—राजधानी; **बाफ़राग़त**—आराम से; **ख़ानये-रवाँ**—चलता हुआ घर।

सफ़ीहन—"अय हय उस्तानीजी डूबने का कैसा बड़ा खटका है ? लो पार साल की बात है नवाब कुतुबुद्दीन ख़ाँ के साथ मेरी ख़लिया सास हज को गई थीं। कुछ ऐसी घड़ी की गईं कि फिर लौटकर आना नसीब नहीं हुआ।"

असग़रीख़ानम—"हाँ इत्तिफ़ाक़ की बात है जहाज कभी कभी डूब भी जाते हैं और अगर ख़ुदा-न-ख़ास्ता आये दिन डूबा करें तो सफ़रे-दरिया का कोई नाम न ले। अब तो दरिया का रास्ता ख़ुश्की की सड़कों से ज़्यादा आबाद हो रहा है। हज़ारों-लाखों जहाज़ रात-दिन आते-जाते रहते हैं। अंग्रेज़ और उनके बीवी बच्चे और कुल अंग्रेज़ी असबाब सब जहाज़ की राह यहाँ आता है।"

सफ़ीहन—अंग्रेज़ों की औरतों का क्या ज़िक्र और हमारी उनकी क्या रीस ? वो तो बाहर पड़ी फिरतियाँ हैं। सुनती हूँ नन्हे-नन्हे बच्चों को विलायत भेज देती हैं और उनका दिल नहीं कुढ़ता। नहीं मालूम किस क़िस्म की मायें हैं, क्योंकर उनके दिल को सब्र आता है। फिर बाहर की फिरने वालियाँ और पत्थर के कलेजे उनको एक समन्दर क्या, हवा-पर उड़ना भी मुश्किल नहीं।"

असग़रीख़ानम—"बाहर के फिरने की जो तुमने कही तो उनके मुल्क में पर्दे का दस्तूर नहीं। ग़दर के दिनों में हम लोग एक गाँव में भाग कर गये थे वहाँ भी पर्दे का दस्तूर न था। सब की बहू-बेटियाँ बाहर निकलतियाँ थीं। लेकिन मैं तो चार महीने वहाँ रही बाहर की फिरने वालियों में वो

रीस—बराबरी।

लिहाज देखा कि खुदा हम सब पर्दे वालियों को नसीब करे। और बच्चों को विलायत भेज देने से तुम क्योंकर समझीं कि औलाद की मुहब्बत नहीं ? अलबत्ता उन लोगों की मुहब्बत अक़्ल के साथ है। यहाँ की माओं की तरह बावली मुहब्बत नहीं कि औलाद को पढ़ने से रोकें, हुनर हासिल करने से बाज़ रखें। नाम को तो मुहब्बत और हक़ीक़त में औलाद के हक़ में काँटे बोतियाँ हैं। औलाद को नाहमवार उठाती जाती हैं और मुहब्बत का नाम बदनाम करती हैं।"

यहाँ पहुँचकर सब ने सुकूत किया और फ़ज़ीलत ने अपनी कहानी फिर शुरू की और उस बादशाह के कोई बेटा न था अकेली एक बेटी थी। बादशाह ने यह समझकर कि मेरे बाद यही लड़की वारिसे-सल्तनत होगी उस लड़की को खूब पढ़ाया और लिखाया और मुल्कदारी का क़ानून-क़ायदा सब उसको अच्छी तरह सिखाया। और अपने जीते-जी उसी को मुल्क का काम सौंप दिया। फ़ज़ीलत यहाँ तक पहुँची थी कि असग़री-ख़ानम ने कहा—बुआ तुम तो झप-झप कहानी कहती जाती हो और मेरे दिल में पूछने को हज़ारों बातें भरी हैं पर क्या करूँ दिन तो हो चुकने पर आया और मुझको आलियाँ के घर जाना ज़रूर है। शाम के वक़्त किसी के घर अयादत को जाना भी मना है, मैं तो अब नहीं ठहर सकती। तुम लड़कियाँ आपस में कहो सुनो।" और सफ़ीहन से कहा—"बुआ

बाज़ रखना—दूर रखना; नाहमवार—उद्दण्ड; सुकूत—ख़ामोशी; वारिसे सल्तनत—राज्य का उत्तराधिकारी; अयादत—बीमार की ख़बर पूछने को अयादत और बीमारपुरसी कहते हैं।

ग्रल्लाबेली, मैं तो जाती हूँ। तुम्हारा दिल चाहे तो तुम बैठो रहो या कल फिर ग्रा जाना। यहाँ तो रोज़ ही यही हुग्रा करता है।"

ग़र्ज़ ग्रसग़रीख़ानम तो ग्रालिया के घर रवाना हुई ग्रौर सफ़ीहन तो ऐसी रीझी कि फिर रात तक लड़कियों में बैठी रह गईं। ग्रसग़रीख़ानम के पीछे महमूदा ग्रौर हुस्नग्रारा ने कहानी के बीच-बीच में ख़ूब-ख़ूब मज़े की बातें निकालीं।

इस बयान से ग्रसग़री के मकतब का इन्तज़ाम ग्रौर उसकी तालीम ग्रौर तलक़ीन का तरीक़ा बख़ूबी ज़ाहिर है। ग्रसग़री बेशक हुस्नग्रारा को बहुत चाहती थी ग्रौर उससे ज़्यादा ग्रपनी ननद महमूदा को। हुस्नग्रारा को इस ख़ूबी से पढ़ाया कि दो ही बरस में ग्रच्छी ख़ासी तरह बेतकल्लुफ़ उर्दू लिख-पढ़ लेती थी। न ग्रगली सी बदमिज़ाजी बाक़ी रही न पहला सा चिड़-चिड़ापन। बड़ी ग़रीब, लिखी-पढ़ी, हुनरमन्द, होशियार, नेक, प्यारी बेटी बन गई। जमालग्रारा का बरसों का उजड़ा हुग्रा घर ग्रसग़री की बदौलत ख़ुदा ने फिर ग्राबाद किया। लेकिन यह तमाम क़िस्सा दूसरी किताब में लिखा जाएगा। ख़ुलासा यह है कि हकीम जी का तमाम घर छोटे-बड़े ग्रसग़री के पाँव धो-धोकर पीते थे। सुलताना बेगम ने लाख-लाख जतन किए कि ग्रसग़री कुछ ले मगर उस ख़ुदा की बन्दी ने ग्रपनी ग्रान न तोड़ी। जब हुस्नग्रारा का ब्याह होने लगा तो बड़े हकीम साहब ने मौलवी मुहम्मद फ़ाज़िल का दबाव डालकर ग्रसग़री को हज़ार रुपये के जड़ाऊ कड़े दिये ग्रौर कहा सुनो—तुम मेरी

ग्रल्लाबेली—ख़ुदा हाफ़िज़, ईश्वर रक्षा करे; **तलक़ीन**—शिक्षा।

पोतियों और नवासियों के बराबर हो। मैं तुमको उस्तानी-गीरी की रू से नहीं देता बल्कि अपना बच्चा समझकर देता हूँ और न लोगी तो मुझको सख़्त मलाल होगा। उधर मौलवी साहब ने समझाया तो असग़री ने कड़े ले लिये।

रू से—हैसियत से; मलाल—रंज।

बाब छब्बीसवाँ

असग़री अपने मियाँ को नौकरी के रस्ते लगाती है

इधर तो असग़री अपने मकतब में मसरूफ़ थी उधर मुहम्मद कामिल बेरोज़गारी से घबराता था। एक दिन असग़री से कहने लगा–"अब मेरा जी बहुत घबराता है। अगर तुम्हारी सलाह हो तो मैं तहसीलदार साहब के पास पहाड़ पर चला जाऊँ और उनके ज़रिये से नौकरी तलाश करूँ।"

असग़री ने थोड़ी देर ताम्मुल करके कहा कि—"नौकरी करनी तो बहुत ज़रूर है। इस वास्ते कि तुम देखते हो कैसी तंगी से घर में गुज़र होती है। अब्बाजान अब बुड्ढे हुए। मुनासिब यह है कि वो घर बैठें और तुम कमाकर उनकी ख़िदमत करो। अलावा इसके महमूदा बड़ी होती जाती है। मैं उसकी मँगनी की फ़िक्र में हूँ और ख़ुदा रास लाये तो इरादा यह है कि बहुत ऊँची जगह उसका ब्याह हो। और मैं तदबीर कर रही हूँ इन्शा अल्लाह इसी बरस उसकी बात ठहरी जाती है। लेकिन इसके वास्ते बड़ा सामान दरकार होगा और इस वक़्त तक किसी क़िस्म की कोई चीज़ मौजूद नहीं। भाई जान

मसरूफ़—व्यस्त; **मँगनी**—सगाई; **रास लाना या आना**—भाग्य अनुकूल होना; **तदबीर**—प्रयत्न; **इन्शा अल्लाह**—ईश्वर ने चाहा तो।

अव्वल तो अलग हैं और फिर ऐसी थोड़ी नौकरी में उनकी अपनी बसर औक़ात नहीं हो सकती, दूसरे को कहाँ से दे सकते हैं। बस सिवाय इसके कि तुम नौकरी करो और कोई सूरत नहीं। लेकिन पहाड़ पर जाने की मेरी सलाह नहीं। अब्बा तो तुम्हारे वास्ते कोशिश करेंगे और ग़ालिब है कि जल्दतर तुमको अच्छी नौंकरी मिल भी जायेगी। लेकिन किसी का सहारा पकड़कर नौकरी करना ठीक सी बात नहीं। बला से थोड़ी हो पर अपने क़ुव्वते-बाज़ू से हो, गो अब्बा कोई ग़ैर नहीं हैं। रिश्ते में भी तुमसे उनका हाथ ऊँचा है उनसे लेना क्या माँगना भी ऐब नहीं। फिर ख़ुदा किसी का अहसान-मन्द न करे, सदा को आँख झुक जाती है। उन्होंने मुँह पर न कहा तो कुनबे में अल्लाह रखे सौ आदमी हैं रू दर रू न कहेंगे कि देखो सुसरे के सहारे से नौकर हुए।"

मुहम्मद कामिल—"फिर क्या करूँ? लाहौर चला जाऊँ?"

असग़री—"लाहौर में क्या धरा है? रईस की सरकार ख़ुद तबाह है। अब्बाजान को भी नहीं मालूम पहले का लिहाज मान कर वो किस तरह पचास रुपया देता है, नये आदमी की गुंजाइश उसकी सरकार में कहाँ।"

मुहम्मद कामिल—"और बहुत सरकारें हैं।"

असग़री—"जब से अंग्रेज़ी अमलदारी हुई सब रईस इसी तरह तबाह हैं। पिछले नाम-नमूद को निबाहते हैं। इससे

बसर—गुज़रान; **ग़ालिब**—सम्भव; **गो**—यद्यपि; **रू दर रू**—मुँह पर; **नाम-नमूद**—ज़ाहिरी टीपटाप, शिष्टाचार।

दस पाँच सूरतें उनके यहाँ लगी लिपटी रहती हैं सो भी क्या ख़ाक। बरसों तनख़ा नहीं मिलती।"

मुहम्मद कामिल—"फिर क्या इलाज ?"

असग़री—"अंग्रेज़ी नौकरी तलाश करो।"

मुहम्मद कामिल—"अंग्रेजी नौकरी तो बेसअ़ी-सिफ़ारिश के नहीं मिलती। हज़ारों लाखों आदमी मुझसे बेहतर बेहतर मारे-मारे पड़े फिरते हैं, कोई नहीं पूछता।"

असग़री—"हाँ सच है। लेकिन जब आदमी किसी बात का इरादा करे तो ख़ुदा पर तवक्कुल करके नाउम्मीदी का तसव्वुर ज़ेहन में न आने दे। माना कि हज़ारों नौकरी की जुस्त-ओ-जू में लाहासिल फिरते हैं लेकिन जो नौकर हैं वो भी तो तुम ही जैसे आदमी हैं। और सौ बात की एक बात तो यह है कि नौकरी तक़दीर से मिलती है। बड़े-बड़े लायक़ देखते के देखते रह जाते हैं और ख़ुदा को देना मंजूर होता है तो न वसीला है न लियाक़त छप्पर फाड़कर देता है। घर से बुलाकर नौकर रख लेते हैं।"

मुहम्मद कामिल—"तो ग़र्ज़ यह है घर बैठा रहूँ।"

असग़री—"यह हरगिज़ मेरा मतलब नहीं। जहाँ तक अपने से हो सके ज़रूर कोशिश करनी चाहिये।"

मुहम्मद कामिल—"यही तो मुश्किल है कि क्या कोशिश करूँ।"

सूरतें—आदमी; **बेसअ़ी**—बिना प्रयत्न; **तवक्कुल**—भरोसा; **नाउम्मीदी**—निराशा; **तसव्वुर**—ख़याल; **ज़ेहन**—दिमाग़; **जुस्त-ओ-जू**—तलाश; **लाहासिल**—बेकार; **वसीला**—ज़रिया; **लियाक़त**—योग्यता।

असग़री—"जो लोग नौकरीपेशा हैं उनसे मुलाक़ात पैदा करो उनसे मुहब्बत बढ़ाओ, उनके ज़रिये से तुमको नौकरी की ख़बर लगती रहेगी और उन ही के ज़रिये से तुम किसी हाकिम तक भी पहुँच जाओगे।"

मुहम्मद कामिल ने यही किया कि नौकरीपेशा लोगों से मुलाक़ात करनी शुरू की, यहाँ तक सरिश्तेदार, तहसीलदार ऐसे लोगों में भी आने-जाने लगा। रोज़ के आने-जाने से सबको मालूम हुआ कि इनको भी नौकरी की जुस्तजू है। यहाँ तक कि बन्दा अलीबेग जो कचहरी में इज़हारनवीस थे मुहम्मद कामिल से कहा मियाँ नौकरी की तलाश है तो मेरे साथ कचहरी चला करो। चन्दे उम्मीदवारी करो, सरिश्ते के काम से वाक़फ़ियत बहम पहुँचाओ हाकिमों को सूरत दिखाओ, इसी तरह क़भी-न-कभी ढब भी लग जायेगा। मुहम्मद कामिल कचहरी जाने और बन्दा अली बेग के साथ काम करने लगा। यहाँ तक कि हाकिम से दस्तख़त करा लाता। हाकिम लोग उसको जानने-पहचानने लगे। इसी असना में छोटे-छोटे ओहदेदारों की दो-चार एवज़ियाँ भी मुहम्मद कामिल को मिल गईं। किसी अमले को रुख़सत की ज़रूरत हुई वो आधी-

---

मुलाक़ात—मेल जोल; **सरिश्तेदार**—दफ़्तर के अहलकार; **इज़हारनवीस**—समन लिखने वाला; **चन्दे**—कुछ दिन; **उम्मीदवारी**—प्रतीक्षा; **सरिश्ता**—कचहरी, दफ्तर; **वाक़फ़ियत**—जानकारी; **बहम पहुंचाना**—प्राप्त करना; **ढब लगाना**—रस्ता लगना; **असना में**—दौरान में; **एवज़ी**—किसी के बदले उसके स्थान पर काम करने को एवज़ी कहते हैं; **अमला**—कर्मचारी; **रुख़सत**—छुट्टी।

तिहाई तनख़ा पर उसको एवज़ी दे गया। यहाँ तक कि इत्तिफ़ाक़ से एक दस रुपये का रोज़नामचानवीस तीन महीने की रुख़सत पर गया था। तीन महीने बाद उसने इस्तीफ़ा भेज दिया और मौलवी मुहम्मद कामिल साहब उसकी जगह मुस्तक़िल हो गये। कभी-कभी असग़री से नौकरी का तज़किरा आता तो मुहम्मद कामिल हिक़ारत के साथ कहा करता था कि क्या वाहियात नौकरी है, दिन भर पीसना और दस रुपल्ली। न ऊपर से कुछ पैदा है न आइन्दा को तरक़्क़ी की उम्मीद। मैं तो इसको छोड़ दूँगा। असग़री हमेशा ऐसे ख़यालात पर मलामत करती कि सख़्त दरजे की नाशुकरी तुम करते हो। वो दिन भूल गये कि उम्मीदवारी भी नसीब न थी या अब बरसरे कार हो तो क़द्र नहीं करते। घर-के-घर में दस रुपये क्या कम हैं। अपने बड़े भाई को देखो कि कई बरस तक सौदागर के यहाँ दस रुपये की नौकरी करते रहे और जब तुम नौकरी में ऐसे दिल बरदाश्ता हो तो तुम से काम भी क्या ख़ाक होगा। आख़िर को नौकरी ख़ुद छूट जायेगी। और इसी तरह से थोड़े से बहुत भी होता है। हमारे अब्बा पहले आठ रुपये महीने के नक़लनवीस थे, अब ख़ुदा के फ़ज़्ल से तहसीलदार हैं और ख़ुदा ने चाहा तो और भी

इत्तिफ़ाक़ से—संयोग से; **रोज़नामचानवीस**—रोज़ की डायरी लिखने वाला; **इस्तीफ़ा**—त्याग पत्र; **मुस्तक़िल**—स्थायी; **हिक़ारत**—उपेक्षा; **वाहियात**—व्यर्थ; **आइन्दा को**—भविष्य को; **मलामत**—भर्त्सना; **नाशुकरी**—अकृतज्ञता; **बरसरे-कार**—काम पर हो; **दिल बरदाश्ता**—दिल उचाट होना; **फ़ज़्ल**—कृपा।

बढ़ेंगे। ऊपर की आमदनी पर कभी भूलकर भी नज़र मत करना, हराम के माल में हरगिज़ बरकत नहीं होती। तक़दीर से बढ़कर मिल नहीं सकता। फिर आदमी नियत को डावाँडोल क्यों करे। अगर इससे ज़्यादा मिलने वाला है तो ख़ुदा हलाल से भी दे सकता है।

हलाल—ईमानदारी की कमाई।

बाब सत्ताईसवाँ

असग़री के समझाने से मुहम्मद कामिल परदेस को निकला और तरक़्क़ी पाई।

ग़र्ज़ असग़री हमेशा मुहम्मद कामिल को समझाती रहती थी। यहाँ तक कि जिस हाकिम के पास मुहम्मद कामिल नौकर था उसकी बदली स्यालकोट को हुई। यह हाकिम मुहम्मद कामिल पर बहुत मेहरबानी करता था। दिन को कचहरी में यह हाल मालूम हुआ, शाम को मुहम्मद कामिल घर आया तो बहुत अफ़सुर्दा ख़ातिर था। असग़री ने पूछा—"ख़ैरियत है! आज क्यों उदास हो?"

मुहम्मद कामिल—"क्या बताऊँ, जेम्स साहब की बदली स्यालकोट को हो गई। वही तो एक मेहरबाने-हाल थे, अब कचहरी में रहने का मुतलक़ मज़ा नहीं।"

असग़री ने बहुत देर तक सकूत किया, फिर कहा कि—"बेशक जेम्स साहब का बदल जाना अफ़सोस की बात है। लेकिन न इस क़दर कि जितना तुमको है। दूसरा जो उनकी जगह आयेगा ख़ुदा उसके दिल में भी रहम डाल देगा। आदमी

अफ़सुर्दा ख़ातिर—रंजीदा, उदास; **मेहरबाने-हाल**—(हमारे) हाल पर मेहरबानी करने वाले; **मुतलक़**—बिलकुल; **सकूत**—ख़ामोशी।

को आदमी पर भरोसा नहीं रखना चाहिए।" फिर असग़री ने पूछा—"जेम्स साहब कब जायेंगे ?"

मुहम्मद कामिल—"कल शाम को डाक में सवार हो जायेंगे।"

असग़री—"तुम उनके बंगले पर नहीं गये ?"

मुहम्मद कामिल—"अब क्या जाना ?"

असग़री—"वाह यही तो मिलने का वक़्त है, कुछ न होगा तो कोई चिट्ठी पुर्जा तुम को दे जायेंगे। और फिर ज़रा दिल में सोचो, ऐसे वक़्त अपने मुरब्बी अपने, मुहसिन से आँखें चुराना बड़ी बेमुरव्वती की बात है।"

मुहम्मद कामिल—"जो मैंने कहा कि अब क्या जाना, सो रंज के मारे मेरे मुँह से निकल गया, वरना मुमकिन नहीं कि मैं और जेम्स साहब से न मिलूँ। अच्छा सुबह को ज़रूर जाऊँगा।"

बहुत सबेरे कपड़े पहन मुहम्मद कामिल जेम्स साहब के बंगले पर गया। जेम्स साहब ने कहा—"मुहम्मद कामिल हम अब स्यालकोट जाता है और हम तुम से बहुत राजी था। तुम चाहे तो हमारे साथ स्यालकोट चले हम तुम को वहाँ नौकरी देगा, नहीं अपने पास से पन्द्रह रुपये देगा।"

मुहम्मद कामिल ने सोचकर कहा—"इसका जवाब मैं हुज़ूर को फिर हाज़िर होकर दूँगा। अपनी वालिदा से पूछ लूँ।"

मुरब्बी—संरक्षक; **मुहसिन**—एहसान करने वाला; **आँखें चुराना**—सामने न होना; **बेमुरव्वती**—अशिष्टता; **वालिदा**—माँ।

ग़र्ज़ मुहम्मद कामिल घर लौटकर आया तो ज़िक्र किया कि जेम्स साहब मुझको साथ लिये जाते हैं। मुहम्मद कामिल की माँ ने तो सुनते ही गुल मचाया। असग़री भी सन्नाटे में हो गई। आख़िर मुहम्मद कामिल ने पूछा कि—"साहबो, बताओ मैं जाकर क्या जवाब दूँ?"

मुहम्मद कामिल की माँ बोलीं—"जवाब क्या देना है, अब क्या वो तेरे लिये बैठा रहेगा या तेरे लिये सिपाही भेज रहा है।"

मुहम्मद कामिल—"नहीं बी, मैं उससे वादा कर आया हूँ। अपने जी में कहेगा हिन्दुस्तानी कैसे ख़ुदमतलबी होते हैं, चलते वक़्त हम से झूठ बोला।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"अच्छा तो जाकर कह आओ कि साहब मेरा जाना नहीं हो सकता।"

मुहम्मद कामिल ने असग़री से पूछा—"क्यों साहब तुम्हारी क्या सलाह है?"

असग़री—"सलाह और होती है और दिल की ख़्वाहिश और होती है। दिल की ख़्वाहिश तो यह थी कि तुम यहाँ रहो। घर का इन्तज़ाम सिर्फ़ तुम्हारे दम से है। आख़िर घर में कोई मर्द भी चाहिये। और सलाह पूछो तो जाना मुनासिब है। जब एक हाकिम ख़ुद बे कहे तुमको साथ लिये जाता है तो ज़रूर अपनी जगह पहुँचकर बहुत सलूक करेगा।"

मुहम्मद कामिल—"पाँच रुपये के वास्ते क्या दो सौ कोस का सफ़र। मेरा दिल तो जाने को नहीं चाहता, वो

गुल—शोर; ख़्वाहिश—इच्छा; सलूक—व्यवहार, बर्ताव।

मसल है घर की आधी और बाहर की सारी।"

असग़री—"यूँ तुम को इख़्तियार है, लेकिन ऐसा मौक़ा तक़दीर से मिला है, फिर हाथ न आयेगा। और सफ़र कौन नहीं करता। हमारे अब्बा, तुम्हारे अब्बा, देखो उन लोगों ने उमरें सफ़र में तीर कर दीं। और बिलफ़ैल पाँच सन लिये गए पीछे देखोगे कितने पाँच हैं। और अगर नहीं जाते तो फिर दस रुपये से बेदिली मत ज़ाहिर करना।"

मुहम्मद कामिल—"तो यहाँ की नौकरी को इस्तीफ़ा दे जाऊँ। और फ़र्ज़ किया वहाँ कुछ सूरत न हुई तो इधर से भी गया और उधर से भी गया।"

असग़री—"अव्वल तो यह फ़र्ज़ करना कि वहाँ कुछ सूरत न निकले ख़िलाफ़े-अक़्ल है। जेम्स साहब इतना बड़ा हाकिम और तुम को काम देना चाहे और सूरत न निकले। मेरी समझ में तो नहीं आता। और फिर इस्तीफ़ा क्यों दो, महीने दो महीने की रुख़सत लो।"

मुहम्मद कामिल—"हाँ रुख़सत मंजूर हुई पड़ी है।"

असग़री—"मंजूर होने को क्या हुआ। इसी जेम्स साहब से कहो छुट्टी लिख देगा।"

ग़र्ज़ असग़री ने ज़बरदस्ती जोतकर मुहम्मद कामिल को जाने पर राज़ी किया। अपने पास से पचास रुपये नक़द दिये और छह जोड़े नये कपड़े बनवा दिये। दयानत के बेटे रफ़ीक़ को साथ कर दिया। मौलवी मुहम्मद कामिल स्यालकोट

मसल—कहावत; **अब्बा**—पिता; **तीर करना**—बिताना; **बिलफ़ैल**—इस समय; **पाँच सन**—पाँच रुपये की तरक्की; **जोतकर**—ढकेलकर, ज़बरदस्ती।

तशरीफ़ ले गये। इधर असग़री ने मौलवी मुहम्मद फ़ाज़िल साहब को तमाम हाल ख़त में लिखा और यह भी लिख दिया कि जेम्स साहब स्यालकोट जाते हुए ज़रूर लाहौर होते हुए जायेंगे। अगर ऐसा हो सके कि आप वहाँ उनसे मुलाकात करके उनकी सिफ़ारिश कुछ रईस से करा दें तो बहुत मुफ़ीद होगा। मौलवी साहब ने जेम्स साहब की जुस्तजू की और रईस के कुछ देहात ज़िला स्यालकोट में भी थे। मौलवी साहब ने रईस की तरफ़ से साहब की दावत की और रईस के बाग़ में ठहराया। खाने के बाद साहब और रईस दोनों बैठे हुए बातें कर रहे थे कि मौलवी साहब ने जेम्स साहब से कहा—"देहली की रियाया को आप की मुफ़ारक़त का बहुत क़ल्क़ है। अगरचे आप सिर्फ़ दो ही बरस देहली में हाकिम रहे, लेकिन आपके इंसाफ़, आपकी शुरफ़ापरवरी से वहाँ के लोग बहुत ख़ुश थे। एक बन्दाज़ादा भी आपकी ख़िदमत में हाज़िर था। उसके लिखने से सब हाल मालूम होता रहता था।"

साहब ने पूछा—"क्या कोई आपका लड़का भी मेरी कचहरी में था?"

मौलवी साहब ने कहा—"मुहम्मद कामिल।"

साहब ने कहा—"वो तो हमारे साथ आया है, वो आपका बेटा है?"

मौलवी साहब ने कहा—"आपका ग़ुलाम है।"

मुफ़ीद—फ़ायदेमंद; **देहात**—गाँव; **रियाया**—प्रजा; **मुफ़ारक़त**—जुदाई; **क़ल्क़**—रंज; **शुरफ़ापरवरी**—शरीफ़ों की परवरिश; **बंदाज़ादा**—मेरा लड़का।

रईस ने इस तक़रीब में साहब से कहा कि मौलवी साहब हमारी रियासत के क़दीम-उल-ख़िदमत हैं और हमको हर तरह से इनकी परदाख़्त मरकूज़े-ख़ातिर रहती है। लेकिन आप तो जानते हैं अब गुंजाइश नहीं। पस अगर आप इनके बेटे की परवरिश फ़रमायेंगे तो हम आपके ममनून होंगे।''

जेम्स साहब पहले से मुहम्मद कामिल के हाल पर मुल्तफ़ित था ऐसे वक़्त मुनासिब पर तक़रीब हो गई कि साहब को बहुत ख़्याल हो गया। अव्वल तो जवान नौ उम्र, दूसरे शरीफ़, तीसरे रईस का सिफ़ारिशी, चौथे ख़ुद साहब का आवुर्दा, पाँचवें लायक़। इतने हुक़ूक़ मुहम्मद कामिल को हासिल हो गये। साहब ने पहले दिन कचहरी करते ही मुहम्मद कामिल को पचास रुपये का नायब सरिश्तेदार किया और मौलवी मुहम्मद फ़ाज़िल साहब को ख़त लिखा कि बिलफ़ैल हमने आपके बेटे को पचास की नौकरी दी है और हम जल्द उसकी तरक़्क़ी करेंगे। आप रईस की ख़िदमत में इत्तला कर दीजिये। मौलवी साहब ने बतर्ज़ मुनासिब साहब का शुक्रिया अदा किया। और वो मुहम्मद कामिल जो कभी उम्मीदवारी का मोहताज था फिर छोटे-छोटे ओहदेदारों की ऐवज़ियाँ करता था, फिर सिर्फ़ दस रुपये का रोज़नामचा नवीस था, फिर पन्द्रह के वादे पर वो भी असग़री के जोतने

तक़रीब में—साथ-साथ; **रियासत**—सरकार, कारोबार; **क़दीम-उल-ख़िदमत**—पुराने नौकर; **परदाख़्त**—परवरिश; **मरकूज़े-ख़ातिर**—दिल से मंजूर; **ममनून**—अहसानमंद, कृतज्ञ; **मुल्तफ़ित**—प्रसन्न; **आवुर्दा**—लाया हुआ; **हक़ूक़**—अधिकार।

से जेम्स साहब के साथ स्यालकोट आया था अब एकदम पचास का ओहदेदार हो गया। मुहम्मद कामिल की माँ अगरचे जाते वक़्त नाखुश हुई थीं, पचास का नाम सुनकर उनकी भी बाछें खिल गईं। अब घर में चौगुनी बरकत हो गई। असग़री का इन्तज़ाम और बीस की जगह अब चालीस रुपये महीना घर में आने लगा, फिर क्या पूछना है।

बाब अट्ठाईसवाँ

मुहम्मद कामिल की आवारगी, असग़री ने जाकर उसकी इसलाह की, और जाते वक़्त बहन बहनोई को घर में बसा गई।

मुहम्मद कामिल आख़िर एक ही बरस में सरिश्तेदार हो गया। सरिश्तेदार होने तक संभला हुआ था। ख़र्च भी बराबर आता था, ख़त भी मुतवातिर चले आते थे। लेकिन आदमी था जवान, ख़ुद-मुख़्तार होकर रहा, सोहबत बुरी मिल गई, बहक चला। ख़तों में कमी होनी शुरू हुई। असग़री तो दानिशमन्द थी, समझ गई कि दाल में काला है। बहुत दिन तक फ़िक्र में रही कि अब क्या तदबीर करूँ। आख़िर सिवाय इसके कुछ समझ में नहीं आया कि ख़ुद जाना चाहिए। हरचन्द असग़री ने स्यालकोट जाने का अज़्म मुसम्मम कर लिया था लेकिन तमाशाख़ानम को सलाह के वास्ते बुला भेजा और सब हाल उससे कहा।

तमाशाख़ानम—"बुआ, कोई दीवानी हुई है! शहर

आवारगी—आवारापन; **इसलाह**—संशोधन, सुधार; **मुतवातिर**—लगातार; **ख़ुदमुख़्तार**—स्वच्छन्द; **सोहबत**—संगत; **दानिशमन्द**—अक़्लमन्द; **तदबीर**—उपाय; **हरचन्द**—यद्यपि; **अज़्म**—इरादा; **मुसम्मम**—पक्का।

छोड़कर अब कहाँ स्यालकोट जाती फिरेगी।"

असग़री—"मुझको शहर से क्या मतलब। मैं तो जिसके साथ वाबस्ता हूँ वहीं शहर है।"

तमाशाख़ानम—"अय हय, कुनबे वाले क्या कहेंगे। हमारे कुनबे में से आज तक कोई बाहर नहीं गया।"

असग़री—"इसमें ऐब की क्या बात है? आख़िर यही कहेंगे कि मियाँ के पास चली गई, तो बुरा क्या किया। और कुनबे की रस्म को जो पूछो तो पिछले दिनों न डाक थी, न रेल, न रास्ते आबाद थे। औरतों का सफ़र करना बहुत मुश्किल था। इस सबब से लोग नहीं जाते थे। अब अगर आज डाक में बैठूँ और ख़ुदा असल ख़ैर रखे तो परसों स्यालकोट दाख़िल, गोया मेरठ गई।"

तमाशाख़ानम—"क्या तलबी का ख़त आया है?"

असग़री—"ख़त तो नहीं आया।"

तमाशाख़ानम—"बिन बुलाये जाना तो मुनासिब नहीं।"

असग़री—"तुम मुनासिब नामुनासिब देखती हो और मैं कहती हूँ अगर न जाऊँगी तो उम्र-भर को घर ग़ारत हो जाएगा।"

तमाशाख़ानम—"अय आपा तुम ऐसी क्यों गिरी पड़ती हो? तुमको उनकी क्या परवा है, ख़ुदा तुम्हारे मकतब को सलामत रखे, तुम दस को रोटी खिलाया करो।"

वाबस्ता—सम्बद्ध; **गोया**—मानो; **तलबी**—बुलावा; **ग़ारत**—बरबाद; **गिरी पड़ना**—निराश होना।

असग़री—वाह, आपकी भी क्या समझ है। यह मकतब तो मैंने अपना जी बहलाने के वास्ते बिठा लिया है। कुछ मुझको इससे कमाई करनी मंज़ूर नहीं। ख़ुदा जाने तुमको यक़ीन आये न आये आज तक मैंने मकतब की रक़म से एक पैसा अपने ऊपर ख़र्च नहीं किया। सिर्फ़ पचास रुपये नक़द और बीस रुपये कपड़े के वास्ते तुम्हारे भाईजान को स्यालकोट जाते हुए ज़रूर दिये थे, सो भी क़र्ज़ दाख़िल। और बाक़ी कौड़ी-कौड़ी का हिसाब लिखा हुआ मौजूद है देख लो। औरतों की कमाई भी कोई कमाई है। अगर औरतों की कमाई से घर चला करें तो मर्द क्यों हों। मेरा अपना घर बना रहे तो मैं ऐसे-ऐसे दस मकतबों के उजड़ने की भी परवाह नहीं करती।"

तमाशाख़ानम—"ऐसी भरी बरसात में कहाँ जाओगी। जाड़ा आने दो, उस वक़्त खुले मौसम में देख लेना।"

असग़री—"अय हय, देर करना तो ग़ज़ब है। अब जो काम समझाने से निकलेगा फिर बड़े झगड़ों से भी तय नहीं होगा।

तमाशाख़ानम—"अय हय, घर छोड़ते हुए तुम्हारा जी नहीं कुढ़ता।"

असग़री—क्यों नहीं कुढ़ता, क्या मैं आदमी नहीं हूँ? लेकिन यह थोड़ी देर का कुढ़ना बेहतर या उम्र-भर का जलापा।"

तमाशाख़ानम—"तुमने अपनी सास से भी इजाज़त ली।"

क़र्ज़ दाख़िल—बतौर क़र्ज़; जलापा—जलना; इजाज़त—आज्ञा।

असग़री—"भला वो इजाज़त देंगी। लेकिन हमारी सास बेचारी सीधी आदमी हैं, मैं समझा दूँगी तो यक़ीन है कि न रोकेंगी।"

ग़र्ज़ एक दिन असग़री ने अपना इरादा और उसकी वजूहात अपनी सास से बयान कीं। बात थी माक़ूल, इसमें कौन गुफ़्तगू कर सकता था। असग़री का जाना ठहर गया। एक रोज़ जाकर असग़री सब कच्चा हाल अपनी माँ से भी कह आई। मकतब के वास्ते लड़कियों को समझा दिया कि महमूदा तुम सब के पढ़ाने को बहुत हैं। मैं सिर्फ़ दो महीने के वास्ते जाती हूँ। सब लड़कियाँ बदस्तूर आया करें। रुख़सत होने की तक़रीब से अपनी आपा के पास गई। मुहम्मद आक़िल ने पूछा—"क्यों भाई तमीज़दार बहू ! तुम जाती हो, मकतब को क्या कर चलीं ?"

असग़री—"मकतब और घर-बार सब आपके हवाले किये जाती हूँ।"

मुहम्मद आक़िल—"वाह क्या ख़ूब ! न मुझ को घर से ताल्लुक़ है न मकतब से वास्ता। मैं क्या कर सकता हूँ।"

असग़री—"ताल्लुक़ रखना न रखना सब आपके इख़्तियार में है।"

मुहम्मद आक़िल—"तमीज़दार बहू ! तुमको यह बात कहनी ज़ेबा नहीं। भला मेरा क्या इख़्तियार है। घर तुम्हारी

वजूहात—वजह का बहुवचन याने कारण; **माक़ूल**—उचित; **गुफ़्तगू**—बोलचाल; **बदस्तूर**—नियमानुसार; **तक़रीब**—निकटता; **ताल्लुक़**—सम्बन्ध; **वास्ता**—सरोकार; **इख़्तियार**—अधिकार; **ज़ेबा**—उचित।

आपा ने छुड़वाआ। रहा मकतब, सो लड़कियों का है। लड़कों का मकतब होता तो मैं ख़ुशी से उन सब को पढ़ा दिया करता।"

असग़री—"अब आपा और आप दोनों घर में चलकर रहिये, अम्माँजान अकेली हैं।"

मुहम्मद आक़िल—"अपनी बहन को समझाओ।"

असग़री—"समझाने की क्या ज़रूरत है, आपा तो ख़ुद जानती और समझती हैं। यहाँ अकेले आपको भी तकलीफ़ होती है। न बच्चों का कोई संभालने वाला है न घर का कोई देखने वाला। दुख-सुख आदमी के साथ हैं। बेज़रूरत जुदा रहना मुनासिब नहीं। और पिछली बातें गई-गुज़री हुईं। आपस की नाइत्तिफ़ाक़ी क्या और बाहम की रंजिश क्या।"

अकबरी जुदा घर करने का मज़ा ख़ूब चख चुकी थी और बहाना ढूँढती थी कि फिर साथ रहने को कोई कहे। फ़ौरन राज़ी हो गई और असग़री दोनों को अपने साथ लिवा लाई। मुहम्मद कामिल की माँ को असग़री के जाने का क़ल्क़ था अब उनकी भी तसल्ली हो गई कि ख़ैर एक बहू गई तो दूसरी मौजूद है। महमूदा को अलबत्ता बड़ा फ़िक्र था कि देखिये क्या हो। लेकिन असग़री ने उधर तो महमूदा की तसल्ली की और समझा दिया कि अब वो बातें नहीं हैं। इधर अपनी आपा को समझा दिया कि महमूदा अब

नाइत्तिफ़ाक़ी—अनबन, बिगाड़; **बाहम**—आपस; **रंजिश**—मन-मुटाव; **क़ल्क़**—रंज।

बड़ी हो गई है, कोई सख़्त बात उसको न कहियेगा। मकतब के वास्ते मुहम्मद आ़क़िल से इतना कह दिया कि पढ़ाना-लिखाना वग़ैरह सब महमूदा कर लिया करेंगी आप सिर्फ़ बालाई इन्तज़ाम की ख़बर ले लिया कीजिए और मकतब की रक़म का हिसाब-किताब महमूदा को लिखा दिया कीजिए।"

अलग़र्ज़ असग़री रुख़सत हुईं। डाक पर सवार हो सीधी स्यालकोट पहुँचीं। यहाँ मुहम्मद कामिल दफ़ातन असग़री के पहुँचने से सख़्त मुतअ़्ज्जिब हुआ और पूछा कि—"ख़ैरियत है? कहीं अम्माँ से लड़कर तो नहीं आईं?"

असग़री—"तोबा करो। क्या अम्माजान मेरे बराबर की हैं कि मैं उनसे लड़ने जाऊँगी। इस चार बरस में कभी तुमने मुझको उनसे या किसी और से लड़ते देखा?"

यहाँ मुहम्मद कामिल ने ख़ूब हाथ-पाँव निकाले थे और बुरी सोहबत में मुब्तिला था। ख़ुशामदी लोग जमा थे और वो उसको उल्लू बनाये हुए थे। बाज़ारे-रिश्वत गरम था। नाच-रंग तक का भी एहतराज़ बाक़ी न रहा था। अमीरो ठाठ थे। तनख़ा से चारचंद का मामूली ख़र्च। अगर यही हाल चन्दे और रहता ज़रूर जेम्स साहब को बदगुमानी पैदा होती और आख़िर को नौकरी जाती रहती। अच्छे वक़्त

बालाई—ऊपरी; **दफ़ातन**—अचानक; **मुतअ़्ज्जिब**—चकित; **हाथ-पाँव निकालना**—उद्दण्ड होना; **मुब्तिला**—फँसा; **उल्लू बनाना**—बेवकूफ बनाना; **बाज़ारे-रिश्वत**—रिश्वतख़ोरी; **एहतराज़**—परहेज़; **ठाठ**—साज सामान; **चारचंद**—चौगुना; **चन्दे**—कुछ दिन; **बदगुमानी**—शंका, संदेह।

असग़री जा पहुँची। फ़ौरन उसने हर तरफ़ से रख़ना-बंदियाँ कीं और समझाया कि तुमको ख़ुदा ने सौ का नौकर कर दिया इसका यही शुक्रिया है कि तुमको इस पर क़नाअ़त नहीं।"

मुहम्मद कामिल ने कहा—"जो ख़ुशी से दे उसमें क्या क़बाहत है ?"

असग़री ने कहा—"सुबहान अल्ला ! रुपया भी ऐसी चीज़ है कि कोई उसको बेवजह ख़ुशी से देता है। इन दिनों लोग रुपये के इस क़दर हाजतमन्द हैं कि इज़्ज़त तक की परवा नहीं करते मगर रुपया मुट्ठी से नहीं छोड़ते। आदमी अपने ऊपर क़यास कर ले कि हम किसी को क्या दिया करते हैं। एक ज़कात की भी कुछ असल है, सैंकड़े पीछे बरसवें दिन चालीसवां हिस्सा ढाई रुपये, वही देते हुए जान निकलती है। लोगों के पास ऐसा कहाँ का खज़ानये-कारूँ भरा

रख़ना बन्दी—सूराख़ बन्द करना; **क़नाअ़त**—सन्तोष; **क़बाहत**—बुराई; **हाजतमन्द**—ज़रूरतमन्द; **क़यास करना**—अनुमान करना; **ज़कात**—मुसलमानों में जहाँ नमाज़ और हज वग़ैरह धार्मिक कर्तव्य हैं एक कर्तव्य ज़कात भी है। इसके अर्थ हैं कि अपनी पूँजी में से बरसवें दिन एक हिस्सा ईश्वर के नाम दान दिया जाये जो नक़द रुपये का चालीसवाँ हिस्सा हो। **ख़ज़ानये-कारूँ**—शाब्दिक अर्थ तो कुबेर का ख़ज़ाना है। मुसलमानों की पौराणिक कथा है कि कारूँ हज़रत मूसा की क़ौम का आदमी था और लोगों का कहना है कि उनका रिश्तेदार भी था। उसके पास इतना धन था कि उसके खज़ानों की कुंजियाँ ऊँटों पर चलती थीं मगर था दिल का कंजूस। परोपकार, दान-पुण्य में कुछ भी ख़र्च नहीं करता था। ईश्वर कोप से उसका घरबार और वह खुद ज़मीन में धँस गया।

पड़ा है कि वो तुमको बेमतलब दे जाते हैं। जब देखते हैं कि काम बिगड़ता है, न देंगे तो मुक़दमा ख़राब होगा, आ़ज़िज आकर, क़र्ज़ दाम लेकर, घरवालियों के ज़ेवर बेचकर रिश्वत देते हैं।"

मुहम्मद कामिल—"मैं ख़ुद नहीं लेता, फिर इसमें क्या डर है ?"

असग़री—"अव्वल तो रिश्वत छिप नहीं सकती। अलावा इसके फ़र्ज़ किया, आदमी पर ज़ाहिर न हुई, ख़ुदा जो पर्दों में देखता है वो तो जानता है। बंदों का गुनाह जमा करना और आ़क़बत की जवाबदेही समेटना बड़ी बेबाकी की बात है।"

ग़र्ज़ समझा-बुझाकर असग़री ने मुहम्मद कामिल से तोबा कराई। चन्द रोज़ रहकर असग़री ने पूछा—"यह चार आदमी जिनको बाहर खाना जाता है कौन लोग हैं ?"

मुहम्मद कामिल—"नौकरी के उम्मीदवार हैं, बेचारे ग़रीब-उल-वतन हैं। मैंने कहा ख़ैर जब तक तुम्हारी नौकरी लगे तब तक मेरे पास रहो।"

असग़री—"फिर अब तक उनको नौकरी नहीं मिली ?"

मुहम्मद कामिल—"नौकरी तो मिलती है लेकिन उनकी हैसियत से कम है।"

असग़री—"जब उनकी हालत यहाँ तक पहुँची है कि

आ़ज़िज आकर—तंग आकर; **आ़क़बत**—परलोक; **बेबाकी**—निर्भयता, निडरता; **तोबा करना**—किसी काम को आगे न करने की शपथ लेने को तोबा कहते हैं। **ग़रीब-उल-वतन**—परदेसी।

दूसरे के सर पर पड़े हुए रोटियाँ खाते हैं तो हैसियत से क्या बहस बाक़ी रही। थोड़ी बहुत जो मिले कर लें।"

मुहम्मद कामिल—खुदा जाने तुम क्या कहती हो, इज़्ज़त से घट कर क्यों कर लें?"

असग़री—"कम दरजे की नौकरी में तो बेइज़्ज़ती होती है और दूसरे के ढई देने में बेइज़्ज़ती नहीं। जब इन लोगों में इतनी इज़्ज़त नहीं तो और आदतें भी उनमें ज़रूर बुरी होंगी। इनका साथ अच्छा नहीं। ज़रूर तुम्हारे नाम से कुछ लेते भी होंगे। इनसे कहो कि या नौकरी करें या रुख़सत हों?"

मुहम्मद कामिल—"मेरी मुरव्वत मुक़्तज़ी नहीं होती कि जवाब दूँ।"

असग़री—"जब इनमें मुरव्वत नहीं तो तुमको मुरव्वत का लिहाज़ क्या ज़रूर है। अगर हमसे बचे तो कुनबे में बहुत से ग़रीब हैं उनका हक़ मुक़द्दम है। ग़ैरों को और ग़ैरों में से भी ऐसों को देने से क्या फ़ायदा। और यह ज़रूरी नहीं कि तुम सख़्ती से जवाब दो। किसी तौर पर उनको समझा दो?"

ख़ुलासा यह कि यही लोग मुहम्मद कामिल के शैतान थे। असग़री ने हिकमते-अमली से उनको टाला। नौकरों में जो-जो बदवज़ा थे छाँट-छाँटकर निकाले गए और डेढ़ बरस रहकर अन्दर-बाहर सब इन्तज़ाम दुरुस्त कर दिया।

ढई देना—धरना देना; **मुरव्वत**—भलमन्सी; **मुक़्तज़ी**—तैयार, तत्पर; **मुक़द्दम**—सबसे पहला; **हिकमते-अमली**—व्यवहार कुशलता; **बदवज़ा**—अशिष्ट।

अब मियाँ मुसल्लम की शादी होनेवाली थी। असग़री की तलब में ख़त गया और तमाशाख़ानम ने बहुत इसरार के साथ लिखा। अज़ बस कि बहुत दिन हो चुके थे असग़री ने देह्ली आने का इरादा किया। लेकिन अपने दिल में सोची कि मुहम्मद कामिल को अकेला छोड़ना मसलहत नहीं। मुहम्मद कामिल से कहा कि मुसाफ़रत में तनहा रहना मुनासिब नहीं, कोई अपना रिश्तेदार साथ रहना ज़रूर है। सो मेरे नज़दीक तुम अपने ख़ालाज़ाद भाई मुहम्मद सालह को बुला लो। वो यहाँ तुम्हारे पास कचहरी का काम सीखेंगे। और शायद कहीं उनको नौकरी भी लग जाये। अमीर बेगम को ख़त गया और असग़री के रहते मुहम्मद सालह पहुँच गया।

यह लड़का परले दरजे का नेकबख़्त था। इस्म बामुसम्मा और मुहम्मद कामिल से उम्र में बड़ा। अब असग़री को इत्मीनान हुआ तो स्यालकोट से रुख़सत हो लाहौर पहुँची। यहाँ मौलवी मुहम्मद फ़ाज़िल के पास एक हफ़्ता मुक़ीम रही।

इसरार—आग्रह; **अज़बस**—चूंकि; **मसलहत**—शुभ, मुनासिब; **मुसाफ़रत**—यात्रा, सफ़र; **तनहा**—अकेला; **ख़ालाज़ाद**—मौसेरा; **नेकबख़्त**—सुशील; **इस्म बामुसम्मा**—यथा नाम तथा गुण; **मुक़ीम रहना**—ठहरा रहना।

बाब उन्तीसवाँ

असग़री की सलाह से मौलवी मुहम्मद फ़ाज़िल ने पेंशन ली और बड़े बेटे मुहम्मद आक़िल को अपनी जगह रखवा दिया।

मौलवी मुहम्मद फ़ाज़िल साहब की उम्र साठ बरस के क़रीब थी। मुख़्तारी की नौकरी में मेहनत थी बहुत। रोज़ बिलानाग़ा सब हाकिमों की कचहरी में रईस के मुक़दमात की ख़बर लेना और सुबह-ओ-शाम अमलों में जाना। बेचारे मौलवी साहब रात को आते तो बहुत थक जाते थे। असग़री ने कहा—"अब्बाजान अब आपकी उम्र इस मशक़्क़त के क़ाबिल नहीं। मुनासिब है कि आप घर बैठने का फ़िक्र कीजिये। एक किताब में मैंने पढ़ा है कि इन्सान उम्र के तीन हिस्से करे। पहला हिस्सा बचपन का, दूसरा दुनिया के कामों के बन्दोबस्त का, तीसरा आराम और यादे-इलाही का। पस अब आप घर चलकर आराम से बैठिये।"

मौलवी साहब—"अव्वल तो रईस नहीं छोड़ता, दूसरे आख़िर मेरी जगह कोई काम करने वाला भी तो चाहिए।"

असग़री—"रईस से जब आप अपनी ज़ईफ़ी का उज़्र

अमला—कर्मचारी; **मशक़्क़त**—परिश्रम; **यादे इलाही**—ईश्वरस्मरण; **ज़ईफ़ी**—बुढ़ापा; **उज़्र**—बहाना।

कीजियेगा तो गुमान ग़ालिब है कि मान जाये और काम करने को तो भाईजान क्या कम हैं ?"

मौलवी साहब—"वो कचहरी दरबार का दस्तूर क़ायदा क्या जानें ?"

असग़री—"चन्द रोज़ उनको बुलाकर साथ रखिये, देखने-भालने से सब मालूम हो जायगा। वो तो मौलवी आदमी हैं। हिन्दू लोग तो ऊटपटाँग फ़ारसी की दो-चार किताबें पढ़कर कचहरी की नौकरी करने लगते हैं।"

मौलवी साहब को असग़री की बात पसन्द आई। असग़री देहली पहुँची और मौलवी साहब ने मुहम्मद आक़िल को बुला भेजा। चन्द रोज़ में मुहम्मद आक़िल ने बाप का सब काम उठा लिया और रईस को अपनी ख़िदमत से बहुत ख़ुश किया। तब मौलवी साहब ने रईस से कहा कि अब यह लड़का हुज़ूर की ख़िदमत में हाज़िर है मुझको आज़ाद फ़रमाइये।

रस्म अस्त कि मालिकाने-तहरीर, आज़ाद कुनंद बंदये-पीर।*

रईस दिल का सख़ी था। बीस रुपये ता-हयात मौलवी साहब की पेंशन कर दी और मौलवी साहब की जगह मुहम्मद आक़िल को पूरी तनख़ा पर रख लिया।

गुमान ग़ालिब—पक्का अनुमान; *यह दुनिया का दस्तूर है कि ग़ुलामों की ज़िन्दगी का पट्टा जिन मालिकों के हाथ में होता है वे अपने बूढ़े ग़ुलामों को आज़ाद कर दिया करते हैं; **सख़ी**—दयालू; **ता-हयात**—जीवन भर।

बाब तीसवाँ

महमूदा की मँगनी

असग़री देहली आई तो उसने महमूदा का फ़िक्र किया। हुस्नआरा झज्जर से मैके आई हुई थी और उन ही दिनों जमालआरा भी सुसराल से छोटी बहन से मिलने के लिए आ पहुँची। हकीमजी का तो तमाम घर असग़री का मुरीद था, दोनों बहनें असग़री के आने की ख़बर सुनकर दौड़ी हुई आईं। हर तरह की बातें होती रहीं। जमालआरा ने कहा—उस्तानी जी, कैसा जी तुममें पड़ा था कि बयान नहीं हो सकता। भला हुस्नआरा तो तुम्हारी शागिर्द है लेकिन मैं शागिर्दों से भी ज़्यादा हूँ। मेरा उजड़ा हुआ घर तुमने ही बसवाया।

असग़री—"मैं किस लायक़ हूँ।"

जमालआरा—"वाह उस्तानीजी, मैं तो जीते जी तुम्हारा सलूक नहीं भूलूँगी और क्या करूँ तुम हम लोगों की ख़िदमत किसी तरह क़बूल नहीं करतीं नहीं तो अपनी खाल की जूतियाँ तुमको बनवा देती तब भी शायद तुम्हारा हक़

मुरीद—याने ये लोग असग़री का ऐसा अदब करते थे जैसे पीर का उसके मुरीद या चेले करते हैं।

अदा न होता।"

असग़री—"अव्वल तो कुछ ख़िदमत मुझसे बन नहीं पड़ी और बइक़्तज़ाये-सरदारी कोई काम आप को पसन्द हुआ तो बेगम साहब आप को ख़ुदा ने सब क़ाबिल बनाया है हम ग़रीबों का ख़ुश कर देना क्या बड़ी बात है।"

हुस्नआरा—"अय हय, उस्तानीजी, तुम अपने मुँह से कैसी बात कहती हो!"

असग़री—"सुनो बुआ हुस्नआरा, उस्तानीगीरी और शागिर्दी तो अब बाक़ी नहीं वो मकतब तक थी, अब अल्लाह रखे तुम ब्याही गईं। इधर तुम पोतड़ों की अमीर और अमीरों की सरताज उधर ये सरदार और सरदारों की बेटी बहू। अब इस शहर में तुमसे बढ़कर तो दूसरा अमीर नहीं। तुम तक पहुँचकर जो आदमी महरूम रहे तो उसकी किस्मत का क़सूर है।"

हुस्नआरा—"अच्छी उस्तानीजी क्या बात है।"

असग़री—"बुआ, बड़ा मुश्किल काम है। तुम वादा करो कि मुझको नाउम्मीद न करोगी तो कहूँ।"

हुस्नआरा और जमालआरा ने जाना किसी की नौकरी-चाकरी के वास्ते कहेंगी। दोनों ने कहा—"उस्तानीजी ख़ुदा की क़सम तुम्हारे वास्ते हम दिल-ओ-जान से हाज़िर हैं। हमको तो बड़ी तमन्ना है कि तुम हमसे कुछ फ़रमाइश

सलूक—व्यवहार; **बइक्तज़ाये-सरदारी**—सरदार होने की वजह से आपने मेरा कोई काम पसन्द कर लिया हो; **पोतड़ों की अमीर**—जन्म की अमीर; **महरूम**—वंचित; **नाउम्मीद**—निराश; **तमन्ना**—आरज़ू, आशा।

करो।"

असग़री—"वो काम मेरे नज़दीक तो बड़ा है, लेकिन अगर आप दोनों साहब दिल से आमादा हों तो कुछ हक़ीक़त नहीं।"

दोनों बहनों ने कहा—"उस्तानीजी ख़ुदा जानता है हमारे करने का काम हो तो हमको हरगिज़ दरेग़ नहीं।"

जब ख़ूब पक्का वादा करा लिया तो असग़री ने कहा—"मेरी यह आरज़ू है कि महमूदा को अपनी फ़रज़न्दी में क़बूल करो।"

यह सुनकर दोनों बहनों ने सुकूत किया। फिर इधर-उधर की बातें होने लगीं। जब दोनों उठने को हुईं तो असग़री ने एक हाथ से हुस्नआरा का दुपट्टा पकड़ा और दूसरे हाथ से जमालआरा का और कहा—"मैं अपना हक़ अब लड़-झगड़कर लूँगी और जब तक मेरा सवाल पूरा न होगा, ख़ुदा की क़सम जाने न दूँगी।"

हुस्नआरा—"उस्तानीजी भला इसमें हमारा क्या इख़्तियार है। अभी तो अर्जुमन्दख़ाँ लड़का है। दूसरे ऐसी बातों में माँ-बाप के होते बहनों की कौन सुनता है।"

असग़री—"बड़ी और ब्याही हुई बहनें भी उनके बराबर होती हैं और रिश्ते-नाते बे सबकी सलाह के नहीं हुआ करते। ऐसा मुमकिन नहीं है कि तुमसे मशविरा न हो।"

हुस्नआरा—"अभी हमारे यहाँ तो कुछ तज़किरा कहीं

आमादा—तत्पर; **दरेग़**—इन्कार; **फ़रज़न्दी**—अपने बेटे के लिए; **सुकूत**—ख़ामोशी; **मशविरा**—सलाह; **तज़किरा**—ज़िक्र।

का नहीं है।"

असग़री—"तुमको मालूम न होगा, अलवीख़ाँ के यहाँ रुक़्क़ा गया था वापस आया।"

जमालआरा—"उस्तानीजी तुमने सुना है तो गया होगा। मगर हमसे इस मामले में इस वक़्त तक कुछ बात नहीं हुई। अलवीख़ाँ में क्या बुराई थी, ख़ुदा जाने रुक़्क़ा फिरवा क्यों लिया होगा।"

इसी तरह बात में बात और होने लगी।

असग़री—"साहब मेरा मतलब रहा जाता है, हाँ ना का जवाब मुझको दीजिए।"

जमालआरा—"उस्तानीजी, भला हम क्योंकर हामी भर सकते हैं?"

असग़री—"दौलत, सीरत, सूरत तीन चीज़ें होती हैं। दौलत तो हम ग़रीबों के पास नाम को नहीं रही। सीरत, सो बुआ हुस्नआरा तुम महमूदा से बख़ूबी वाक़िफ़ हो। दो बरस तुम्हारा उसका साथ रहा। सच कहना शर्म, लिहाज़, अदब क़ायदा, नेकबख़्ती, हर काम का सलीक़ा और हर तरह का हुनर, लिखना, पढ़ना, सोना, पिरोना पकाना ये सब बातें महमूदा में हैं या नहीं? कुछ इस पर मौक़ूफ़ नहीं कि महमूदा मेरी ननद या शागिर्द है। नहीं वो लड़की कुछ ख़ुदा ने ब-हमा-सिफ़्त मौसूफ़ पैदा की है। क्यों बुआ हुस्नआरा मैं कुछ बढ़ा-

---

रुक़्क़ा—सगाई का रुक़्क़ा या चिट्ठी; **सीरत**—गुण; **बख़ूबी**—अच्छी तरह; **वाक़िफ़**—परिचित; **सलीक़ा**—लियाक़त; **ब-हमा-सिफ़्त मौसूफ़**—सर्वगुण सम्पन्न।

चढ़ा कर कहती हूँ तो तुम बोलो।"

हुस्नआरा—"उस्तानी जी, भला चाँद पर कोई ख़ाक डाल सकता है। महमूदा बेगम माशाअल्ला बड़े घरों में अपना सानी नहीं रखतीं। भला कोई महमूदा बेगम का पासंग तो हो ले।"

असग़री—"और सूरत, सो नाक, कान, आँख जैसे आदमी में होते हैं महमूदा में भी हैं। वो भी आदमी का बच्चा है जवान हुए पर कुछ इससे ज़्यादा सूरत निकल आयेगी।"

जमालआरा—"अय उस्तानीजी, महमूदा बेगम को आदमी का बच्चा कहती हो, ख़ुदा की क़सम हूर का बच्चा। बड़े घरों में ऊँची दुकान फीका पकवान, हमने तो कोई सूरत-दार न देखा। हम ही दोनों बहनें मौजूद हैं। ख़ुदा की क़सम बाज़ लौंडियाँ हमसे अच्छी हैं। और महमूदा तो चन्दे आफ़ताब और चन्दे माहताब, उस सूरत के आदमी कहाँ नज़र आते हैं।"

असग़री—"फिर बुआ, सिवाय ग़रीबी के और हममें क्या बुराई है? अगरचे छोटा मुँह बड़ी बात है लेकिन अली नक़ीख़ाँ मरहूम को दो-चार पुश्तें नहीं गुज़रीं। आख़िर हम

सानी—दूसरा, जोड़ी का; **हूर**—परी; **चंदे आफ़ताब चंदे माहताब**—यानी ख़ूबसूरती में चाँद सूरज से बढ़कर; **मरहूम**—जिस पर ईश्वर की रहम या कृपा हो चुकी है याने जो स्वर्गीय हो चुका है। यह शब्द मृत व्यक्तियों के नाम के साथ लगाते हैं। अली नक़ी ख़ाँ और मौलवी मुहम्मद फ़ाज़िल मामूं फूफी के बेटे भाई थे। इसी तरह अली नक़ी ख़ाँ सुल्ताना बेगम के भी किसी क़रीब के रिश्ते के भाई होते थे।

भी उन ही के नाम लेवा हैं ।"

दोनों बहनों ने कहा—"उस्तानीजी, तुम हमारी सरताज हो और हम और तुम क्या दो-दो हैं, एक जात एक खून ।"

असग़री—"फिर क्या ताम्मुल है, मेरी दरख़ास्त को क़बूल फ़रमाइये ।"

हुस्नआरा—"अच्छा उस्तानीजी, आज हम इस बात का मज़कूर अम्माँ से करेंगे ।"

असग़री—"मज़कूर नहीं ! मज़कूर तो मैं भी कर सकती हूँ । बल्कि दिल से इसमें मदद करो और अब यह बात छिड़ी है तो ऐसा हो कि पूरी हो जाय ।"

दोनों बहनों ने वादा किया कि उस्तानीजी जैसा आपका इरादा है इंशा अल्लाह वैसा ही होगा । ग़र्ज़ कि उस वक़्त दोनों बहनें रुख़सत हो गईं । अगले दिन असग़री ख़ुद सुल्ताना बेग़म से मिलने गई । दो सौ रुपये का बहुत उम्दा शाली रूमाल जो स्यालकोट से लाई थी सुल्ताना बेगम को नज़र कर दिया । सुल्ताना बेगम ने कहा—"उस्तानीजी, तुम तो हमको बहुत शर्मिन्दा करती हो । हमको तुम्हारी ख़िदमत करनी चाहिए न कि उल्टा तुमसे लें ।"

असग़री—यह रूमाल मैंने सिर्फ़ आपके वास्ते फ़रमाइश करके बनवाया और यह तो आपको क़बूल करना ही होगा । डेढ़ बरस से इसी उम्मीद में मेरी गठरी में बँधा था कि देहली चलकर मैं ख़ुद पेश करूँगी ।"

सुल्तानाबेगम—"मैं इसको बतौर तबर्रुक लिये लेती हूँ,

मज़कूर—ज़िक्र; **तबर्रुक**—ईश्वरीय प्रसाद को मुसलमानों में तबर्रुक कहते हैं ।

लेकिन मुझको ख़ुदा की क़सम शर्म आती है। कभी आपने भी तो कुछ फ़रमाइश की होती कि मेरा दिल ख़ुश होता।"

इतना सहारा पाकर असग़री दस्तबस्ता खड़ी हो गई और अपना मतलब बयान किया।"

सुल्ताना बेगम—"अच्छा उस्तानीजी, आप बैठिये तो सही।"

असग़री—"अब मैं अपनी मुराद लेकर बैठूँगी।"

सुल्ताना बेगम ने हाथ पकड़ कर बिठा लिया और कहा कि बेटा-बेटियों के काम मुश्किल काम हैं। कुम्हार के हाथ से दमड़ी का प्याला लेते हैं तो अच्छी तरह से ठोक बजाकर लेते हैं और यह तो उम्र-भर की कमाइयों के ब्यौहार हैं। बड़े सोच-विचार और सलाह-मशिवरे से होने के हैं। आपने ज़िक्र किया अब मैं इनके बाप से और अपनी बड़ी बहन से और कुनबे के और दो-चार आदमियों से पूछूँ-गच्छूँ, फिर जैसा होगा देखा जायगा। और अभी तो अर्जमन्द लड़का है, उसके ब्याह को क्या जल्दी है।"

असग़री—"हौसले से बढ़कर मैंने सवाल किया है। जिस तरह मिसर में कोई बुढ़िया औरत सूत की अंटी ले जाकर हज़रत यूसुफ़ की ख़रीदार बनी थी उसी तरह मेरे पास

दस्त बस्ता—हाथ बाँधकर; **हज़रत यूसुफ़**—हज़रत यूसुफ़ का क़िस्सा जिस तरह प्रसिद्ध है उसी तरह विचित्र भी है। सौतेले भाई बाप का रुख़ उनकी तरफ़ देखकर जलने लगे। आख़िर उन लोगों ने यह सलाह की कि बाहर ले जाकर जंगल के किसी अंधे कूएँ में डाल दें। बाप यानी हज़रत याक़ूब से कहा कि घर में रहते-रहते यूसुफ़ का

ग़रीबी और आजिज़ी के सिवा देने-दिलाने को नहीं। सिर्फ़ आपकी मेहरबानी दरकार है।"

हरचन्द सुल्ताना बेगम ने ज़बान से कुछ न कहा। लेकिन अन्दाज़ से मालूम हुआ कि बात नागवार नहीं हुई। चलते हुए असग़री जमालआरा और हुस्नआरा से कहती आई कि अब इसका निबाह आप लोगों के इख़्तियार में है। असग़री के जाने के बाद दोनों बहनों ने महमूदा की हद से ज़्यादा तारीफ़ की। सुल्ताना तो नीम राज़ी हो गई। लेकिन शाहज़ादी बेगम की भी एक बेटी थी मान दिलदारजहाँ। और मुद्दत से शाहज़मानी अपनी बेटी के लिए अर्जमन्द को तके

जी उकता गया होगा उसे हमारे साथ कर दीजिए तो बाहर की हवा खिला लायें। हज़रत याक़ूब ने पहले तो इंकार किया। लेकिन आग्रह करके वे लोग आख़िर ले ही गये और कूएँ में डाल दिया। संयोग से वहाँ किसी क़ाफ़िले ने पड़ाव किया। कूआँ देखकर आदमी पानी भरने गये। हज़रत यूसुफ़ डोल में बैठकर ऊपर आये। भाई आसपास ताक में लगे हुए थे क़ाफ़िले वालों से तकरार हुई। खुलासा यह कि अपना, ग़ुलाम कहकर क़ाफ़िले वालों के हाथ यूसुफ़ को बेच दिया। वो क़ाफ़िला पहुँचा मिस्र और हज़रत यूसुफ़ वहाँ जाकर बिके। मिस्र के बादशाह ने उन्हें ख़रीद लिया। किताब में इसी ख़रीदने और बेचने की तरफ़ संकेत है। और हज़रत यूसुफ़ तो आख़िरकार खुद ही मिस्र के बादशाह हुए और जिन भाइयों ने ज़ुल्म करके उन्हें कूएं में डाल दिया था वे ही अकाल के दिनों में उनसे अनाज माँगने गये। हज़रत यूसुफ़ ने भाइयों को कुछ भी नहीं कहा। बल्कि सारे ख़ानदान को बुलाकर मिस्र में बसा लिया; **आजिज़ी**—दीनता; **हरचन्द**—यद्यपि; **नागवार**—अप्रिय; **नीम राज़ी**—आधी राज़ी।

बैठी थी। अभी तक अपनी बहन से कुछ इसका तज़किरा नहीं करने पाई थी। जब असग़री ने महमूदा की निस्बत गुफ़्तगू की तो सुल्ताना बेगम ने शाहज़मानी बेगम से पुछवा भेजा कि आपके नज़दीक यह बात कैसी है। शाहज़मानी यह हाल सुनकर बहुत सिटपिटाई और इस फ़िक्र में हुई कि किसी तरह महमूदा की बात दब दबा जाये तो दिलदारजहाँ की टिप्पस जमा दूँ। उस वक़्त तो इतना ही कहला भेजा कि मैं सोचकर जवाब दूँगी। अगले दिन ख़ुद बदौलत आ मौजूद हुईं और जब ज़िक्र चला तो सुल्ताना से कहा कि—"कहाँ तुम, कहाँ मौलवी साहब। ज़मीन आसमान का क्या जोड़। यह बात यहाँ लाया तो कौन लाया।"

सुल्ताना ने कहा—"उस्तानीजी।"

शाहज़मानी—"देखो मैं ख़ुद उस्तानीजी के पास जाती हूँ।"

हुस्नआरा को साथ ले झट असग़री के पास जा धमकीं और कहने लगी कि उस्तानीजी तुम ऐसी तो अक़्लमन्द और तुमने इतना न समझा कि ऐसे रिश्ते बराबर की टक्कर देख कर किये जाते हैं। अलवीख़ाँ के घर से सिर्फ़ इतनी बात पर रुक़्क़ा फिरा कि उन्होंने सोने का छपरखट नहीं माना। भला तुम महमूदा को क्या दोगी।"

असग़री—"बेगम साहब मैंने तो लड़की के ब्याह का

सिटपिटाना—घबराना; **टिप्पस**—यानी दिलदारजहाँ की मँगनी अर्जमंद के साथ पक्की कर दूँ; **ख़ुद बदौलत**—स्वयं; **बराबर की टक्कर**—यानी दोनों सम्बन्धियों के घर लेनदेन में बराबरी का पाया रखते हों।

ज़िक्र छेड़ दिया था, कुछ लड़की के मोल-तोल का पयाम नहीं दिया। शहर में अगरचे अब कुल रस्में बिगड़ गई हैं लेकिन वज़ादार लोगों में लेने-देने का चुकौता कहीं नहीं सुना। जो बेटी देगा वो क्या उठा रखेगा। बाक़ी रही बराबरी सो ज़ाहिर है कि दौलत के ऐतबार से हमको कुछ निस्बत नहीं। यहाँ तो अलवीख़ाँ का चौथाई भी नहीं। लेकिन आप तो लड़का ब्याहती हैं। आपको अमीरी ग़रीबी से क्या बहस। लड़की देनी हो तो इन्सान यह भी सोच कर ले कि भाई लड़की का गुज़र देख लो या कोई ग़रीब हो और बहू के जहेज़ पर उधार खाये बैठा हो वो अमीर घर ढूँढ़ने जाये सर है। आप तो बेटी लेती हैं और सब कुछ ख़ुदा का दिया हुआ आपके यहाँ मौजूद है। आपको तो सिर्फ़ लड़की का देखना है सो महमूदा का कोई हाल आपसे मुख़फ़्फ़ी नहीं। सूरत, शकल, ज़ात जो कुछ बुरी भली है आपको मालूम ही है।"

शाहज़मानी—"क्या हुआ, फिर भी जोड़ देख कर बात की जाती है।"

असग़री बेगम—"बेगम साहब, ख़ता माफ़ हो। अब जोड़ कहाँ है। जोड़ तो उन दिनों था जब अली नक़ीख़ाँ ने इसी घर में बहन को ब्याह दिया था। यह वही घर है कि बेटे लेने के वास्ते भी जोड़ नहीं। अब क्या इस घर में कीड़े

मोल-तोल—याने यह सन्देश नहीं भेजा कि मैं लड़की को बेचती हूँ। **वज़ादार**—शिष्ट; **चुकौता**—ठहराव; **निस्बत**—ताल्लुक़; **सर है**—यानी ठीक बात है; **मुख़फ़्फ़ी**—छिपा हुआ; **जोड़**—बराबरी।

पड़ गये हैं। दौलत नहीं, सो यह बड़ा बोल, ख़ुदा को नहीं भाता।"

असग़री ने शाहज़मानी को ऐसे आड़े हाथों लिया कि बात न बन पड़ी और शाहज़मानी ने कहा—"उस्तानीजी तुम तो खफ़ा होती हो।"

असग़री—बेगम साहब मेरी क्या मजाल है। मुझको तो उम्मीद थी कि आप इस बात में इमदाद कीजिएगा न कि ख़ुद आप ही को नागवार है।"

शाहज़मानी—"उस्तानीजी बुरा मानो या भला जोड़ नहीं।"

असग़री—"दौलत में बेशक हम जोड़ नहीं, ज़ात में बराबरी का दावा है। हुनर में इंशा अल्लाह वो हमारी जोड़ नहीं बैठेंगी। क्या मुज़ायक़ा एक बात में वो कम एक बात में हम कम। हमारी जैसी बहू दुनिया में चिराग़ लेकर ढूँढ़ती फिरेंगी तो नहीं पायेंगी।"

शाहज़मानी बेगम—"उस्तानीजी इक़बालमन्दख़ाँ के लड़के का रुक़्क़ा क्यों नहीं मँगवातीं?"

असग़री—"कुछ ख़ुदा न ख़ास्ता लड़की हम पर दूबर नहीं। अभी उसकी उम्र ही क्या है। दिलदार जहाँ बेगम से तो मैं जानती हूँ दो-ढाई बरस छोटी ही होगी। जब आदमी ढूँढ़ने पर आता है तो रुक़्क़ों की क्या कमी है। लड़कियों को लड़के

बड़ा बोल—शेख़ी और ग़रूर की बात; **आड़े हाथों**—ऐसा डाटा और बातों में ऐसा बन्द किया; **मजाल**—ताक़त; **इमदाद**—मदद का बहुवचन; **मुज़ायक़ा**—हर्ज; **ख़ुदानख़ास्ता**—ईश्वर न करे; **दूबर**—बोझ।

बहुत और लड़कों को लड़कियाँ बहुत। मैंने तो यह सोचा था कि हुनर और दौलत का साथ है, यह चीज़ अमीरों के लायक़ है, और अमीर उसको ज़ेबा है। बात ठहर जाय तो दोनों के लिए अच्छा है। लेकिन अगर मंजूर नहीं है तो आप दिलदार जहाँ से निस्बत कर दीजिए।"

शाहज़मानी—"मेरा इरादा है कि दिलदार को ग़ैर जगह दूँ। रिश्ते में रिश्ता बे लुत्फ़ी से ख़ाली नहीं होता।"

शाहज़मानी तो यह कहकर रुख़सत हुईं। हुस्नआरा बैठी रह गई। ख़ाला ने कहा भी कि बेटा चलो। हुस्नआरा बोली, आप चलिये, मैं उस्तानीजी से कई बरस में मिली हूँ, बातें करूँगी। जब शाहज़मानी चली गईं तो हुस्नआरा ने कहा—"उस्तानीजी, अम्माँ तो राज़ी हैं। यही हज़रत बात को बिगाड़ रही हैं मुँह से इन्कार करती हैं तो करने दो। इनका असल मतलब यही है कि दिलदार की बात ठहर जाय।"

असग़री—"अब तक़दीर की बात है, भला इनके होते हमारी क्या असल है। लेकिन बुआ हुस्नआरा, मैंने तो कुछ बेजा बात नहीं सोची थी। पैवन्द में पैवन्द मिलता देख लिया था। तुम्हारा इतना बड़ा घर और अल्ला आमीन का एक लड़का। जो कुछ माल-ओ-मता है सब उसी का है। बस इतने बड़े कारख़ाने के सँभालने को भी बड़ी अक़्ल और बड़ा सलीक़ा चाहिये। महमूदा ग़रीब घर की है तो क्या, अल्ला रखे हौसला और सलीक़ा अमीरों जैसा है। तुम्हारे घर में अगर कोई बेसलीक़ा आई और जहेज़ के छकड़े लाई तो किस

बेलुत्फ़ी—कटुता, बदमज़गी; **पैबन्द**—जोड़; **माल-ओ-मता**—माल असबाब।

काम की। उसको अपने जहेज़ का रखना उठाना मुश्किल पड़ जायगा। तुम्हारे घर का इन्तज़ाम क्या कर सकेगी? महमूदा तो माशा अल्लाह मुल्क का इन्तज़ाम करने वाली है। फिर बुआ हुस्नआरा यह बात भी सोचनी चाहिए कि रिश्ता-नाता किस ग़र्ज़ से होता है। दुनिया में जहाँ तक हो सके मेल-मिलाप को बढ़ाना चाहिए, घर के घर में निस्बत नाता कर लिया तो क्या। शादी-ब्याह जब करे ग़ैर जगह। और यही बात तुम्हारे रूबरू तुम्हारी ख़ाला ने भी कही और यह राय उनकी बहुत दुरुस्त है।"

हुस्नआरा—"उस्तानीजी, मैंने और आपने ख़ूब-ख़ूब तरह पर अम्माँ से कहा है और अब ये सब बातें मैं अम्माँ से कहूँगी। उम्मीद तो है कि यही बात वर रहे।"

ग़र्ज़ असग़री ने यह सब पट्टी पढ़ाकर हुस्नआरा को रुख़सत किया। वहाँ शाहज़मानी ने सुल्ताना से जाकर कहा—"बुआ, मैंने तो उस्तानी के मुँह पर साफ़ कह दिया कि तुम्हारा उनका जोड़ नहीं, आदमी को समझकर बात मुँह से निकालनी चाहिए।" लेकिन पेच यह आ पड़ा था कि शाह-ज़मानी अपने मुँह से अपनी लड़की के वास्ते कह नहीं सकती थी। यह बात तो मुद्दतों से शाहज़मानी के दिल को लगी हुई

वर रहना—ऊपर रहना; **पट्टी पढ़ाना**—यानी ये सारी बातें जिस प्रकार बच्चों को पाठ पढ़ाया जाता है उसी तरह पढ़ा दीं। पट्टी माने तख़्ती; **पेच**—बल; **अपने मुँह से**—लड़की वालों की तरफ़ से मँगनी की बात उठाना बुरा समझा जाता है और असग़री जो महमूदा के लिए कोशिश कर रही थी फिर भी ग़ैर थी।

थी मगर क़राबतमन्दी के घमण्ड पर उसने पहले से तगो-दौ न की, वो समझी कि जल्दी क्या है। लड़का घर में है जब मौक़ा होगा मर्दों-मर्दों में बात हो जायगी। अब महमूदा की बात में ग़रीबी पर बड़ा ऐतराज़ था। आख़िर शाहज़मानी से अलग होकर सुल्ताना बेगम ने अपनी दोनों बेटियों से जो सलाह की तो हुस्नआरा ने कहा—"अम्माँ, बात साफ़ तो यह है कि ख़ाला अम्माँ दिलदार के वास्ते तजवीज़ करती हैं।"

सुल्ताना—"भला अर्जमन्द से भी तो हँसी-हँसी में पूछो।"

जमालआरा ने भाई को बुलाया और कहा—"क्यों भाई, तुम्हारी शादी-ब्याह की तजवीज़ हो रही है, तुम भी तो कुछ बोलो। दिलदारजहाँ से राज़ी हो।"

माँ के मुँह पर तो लिहाज़ के सबब अर्जमन्द कुछ न बोला लेकिन इशारे से अपनी बहनों से इन्कार किया। उसका इन्कार जमालआरा और हुस्नआरा को हुज्जत हो गया। हुस्नआरा ने कहा—"सूरत शकल, हुनर सलीक़ा ये बातें तो महमूदा के पासंग भी किसी लड़की में न मिलेंगे, इसका ज़िम्मा तो मै करती हूँ। हाँ चाहो कि सोने का छपरखट मिले सो यह उन बेचारे ग़रीबों के पास कहाँ।"

सुल्ताना—"बुआ, असल तो लड़की का देखना है। ख़ुदा के फ़ज़्ल से हमारे घर में ख़ुद किसी चीज़ की कमी नहीं, हमको भारी जहेज़ लेकर क्या करना है।"

क़राबतमन्दी—रिश्तेदारी; **तगो-दौ**—दौड़धूप, कोशिश; **हुज्जत**—दलील, प्रमाण।

जमालआरा—"फिर क्या ताम्मुल है ? बिस्मिल्ला कीजिए।"

हुस्नआरा—"गो ग़रीबी है लेकिन उस्तानीजी बड़ी तदबीर की आदमी हैं। मुझसे नहीं कहें तो क्या है, वक़्त पर हैसियत से बढ़कर करेंगी।"

सुलताना—"अच्छा तुम्हारे अब्बा आ लें तो उनसे भी सलाह पूछी जाय।"

छोटे हकीम साहब आये तो जमालआरा और हुस्नआरा ने महमूदा के मुक़दमे को इस तरह पेश किया जैसे कचहरी में वकील अपने मुवक्क़िल के मुक़दमे को पेश करते हैं। ग़र्ज़ छोटे हकीम साहब ने भी महमूदा की बात को पसन्द किया। अब तो दोनों बहनें बेतहाशा असग़री के पास दौड़ी आ गईं। मुहम्मद कामिल की माँ को असला इन बातों की ख़बर भी न थी। उन्होंने पूछा भी—"क्या है बेगम साहब इस तरह क्यों दौड़ती हो पायचे तो उठाकर चलो।"

हुस्नआरा ने कहा—"कुछ नहीं, उस्तानीजी के पास जाते हैं।" असग़री के पास जाते ही हुस्नआरा ने कहा—"लीजिए, उस्तानीजी मुबारक, हमारा ईनाम दिलवाइये।"

असग़री ने कहा—"ख़ुदा तुम सब साहबों को भी मुबारक करे, और ईनाम देने का मेरा क्या मुँह है। मेरा ईनाम है दुआ, सो शबाना-रोज़ मैं तुम्हारी दुआ-गो हूँ और

बेतहाशा—बड़े ज़ोर से, बगटुट; **असला**—हरगिज़; **मेरा क्या मुँह है**—याने मेरी क्या मजाल है; **शबाना-रोज़**—रात-दिन; **दुआ-गो**—तुम्हारे लिए भगवान से शुभकामना करने वाली।

जब तक जीऊँगी दुआ-गो रहूँगी।" और आबदीदा होकर यह भी कहा--"इलाही अंजाम बख़ैर, इलाही साज़गारी, इलाही मुझ नाचीज को सुर्ख़रूई, इलाही महमूदा को दुनिया और दीन की बरकत, इलाही महमूदा दूधों नहाये और पूतों फले, इलाही महमूदा बूढ़सुहागन हो।"

हुस्नआरा—"नहीं उस्तानीजी, हम तो आज अपना मुँह ज़रूर मीठा करायेंगे।"

असग़री—"बैठिये-बैठिये मिठाई खाइयेगा।" दयानत को बुला पाँच रुपये निकाल उसके हाथ दिये और कहा घण्टे वाले की दूकान पर से बहुत उम्दा क़लाक़न्द, और दरीबे के नुक्कड़ से पेठे की मिठाई, और शाहतारा की गली से मोती पाक, और चाँदनी चौक से लौज़ात, और नील के कटरे से घी की तली दाल, और ख़ानम के बाज़ार से नमश जाकर लाओ। इतने में दोनों को दो गिलौरियाँ बनाकर दीं और मिठाई की टोकरी आ मौजूद हुई असग़री, अकबरी, हुस्नआरा जमालआरा सबने मिलकर ख़ूब खाई और जो बची मकतब में भेज दी। अब चलते हुए असग़री ने कहा—इस वक़्त तक मैंने अम्माँजान को ख़बर नहीं की थी अब उन से तज़किरा करके इंशा अल्लाह परसों अच्छी तारीख़ और अच्छा दिन है

आबदीदा—सजल नेत्र; **इलाही अंजाम बख़ैर**—भगवान् इस काम का अन्त भला हो; **इलाही साज़गारी**—भगवान् मियाँ बीबी में मेल हो; **सुर्ख़रूई**—नेकनामी; **दुनिया-ओ-दीन**—इहलोक परलोक; **लौज़ात**—बादाम की बरफ़ी को कहते हैं; **नमश**—एक विशेष प्रकार से तैयार किया हुआ दूध का फेन।

मामूली रस्म अदा हो जाय। ये दोनों तो रुख़सत हुईं। असग़री ने सास से कहा—"अम्माँजान कुछ महमूदा का भी फ़िक्र है।"

सास—"क्या फ़िक्र करूँ? कहीं से बात भी आये। मैं एक जगह सोचे बैठी हूँ। मुहम्मद सालह के साथ महमूदा का ब्याह कर दूँगी।"

असग़री—"कुजा मुहम्मद सालह और कुजा महमूदा। भाई मुहम्मद सालह की उम्र भाईजान से कुछ कम न होगी।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"हाँ आक़िल छः महीने मुहम्मद सालह से बड़ा है, दोनों एक ही बरस पैदा हुए थे।"

असग़री—"भला फिर थोड़ा फ़र्क़ है।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"और तो कहीं से सलाम-पयाम नहीं।"

असग़री—"मैंने एक बात सोची है, अगर आपको पसन्द हो तो ज़िक्र चलाऊँ।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"वो क्या।"

असग़री—"हकीम फ़तहउल्लाख़ाँ के लड़के से।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"भला बेटी झोंपड़ों का रहना और महलों के ख़्वाब देखना। कुजा हकीमजी का घर। आज उनके यहाँ माशा अल्लाह वो दौलत है कि शहर में उनका सानी नहीं और कुजा हम ग़रीब कि रहने तक का झोंपड़ा भी दुरुस्त नहीं। यहाँ की बात क्या उनकी ख़ातिर तले उतरेगी,

कुजा—कहाँ; ख़ातिर तले—दिल में।

नाहक़ कहकर भी पशेमान होना है ।"

असग़री—"वो दौलतमन्द हैं तो अपने वास्ते हैं, हम क्या ख़ुदा न करे उनके दस्तनिगर हैं । वो अपने पुलाव ज़र्दे में मस्त हैं तो हम अपने दाल दलिये में मगन हैं । ज़ात में हम उनसे हेटे नहीं । हुनर जो माशा अल्लाह हमारी महमूदा में है वो उनके बड़ों में भी नसीब न हुआ होगा ।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"बुआ, दौलत के आगे हुनर हाथ बाँधे खड़ा रहता है । सोने का छपरखट पहले बनवा लो तब उनसे बात करने जाओ । हरगिज़ तुम इसका ख़याल मत करो । अय लो अलवी ख़ाँ में क्या बुराई थी रुक़्क़ा भेजकर उन्होंने उल्टा मँगवा लिया । बुआ, ग़रीबों की खपत ग़रीबों ही में हो सकती है ।"

असग़री—"हज़ार दौलत की एक दौलत तो ख़ूबसूरतीहै । चश्मे-बद दूर हमारी महमूदा से बेहतर कुनबे में तो ढूँढ़ लें ।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"बुआ तुम कैसी लड़कियों की सी बातें करती हो । हुस्न भी हमसरी की हालत में पूछा जाता है । और फिर यह बात मुँह से कहने की है कि हमारी लड़की ख़ूबसूरत है । और मैं तो नहीं समझती कि ख़ूबसूरती क्या बला है । बड़ी-बड़ी ख़ूबसूरतों को देखा जूतियों की बराबर क़दर नहीं और बदशकलें हैं कि लालों की लाल बनी

पशेमान—शरमिन्दा; **दस्तनिगर**—हाथ देखने वाले, मोहताज; **हेटे**—कम, घटे हुए; **खपत**—समाई; **चश्मे-बद दूर**—बुरी नजर न लगे; **हमसरी**—बराबरी; **लालों की लाल**—बनी सँवरी जिससे मालूम होता है कि उनकी बड़ी क़दर की जाती है ।

बैठी हैं।"

असग़री—ख़ूबसूरती भी ऐसी चीज़ है कि आदमी उस-पर फ़रेफ़्ता न हो। मगर अकसर आदमी जिनकी सूरत अच्छी है सीरत के ख़राब और मिज़ाज के गन्दे होते हैं। उनको अपनी सूरत पर नाज़ होता है इस वजह से उनकी दाल कहीं नहीं गलने पाती और उनका मिज़ाज़ उनके हुस्न की क़ीमत घटा देता है। लेकिन अगर सूरत के साथ ख़ुदा सीरत भी अच्छी दे तो सुबहान अल्लाह नूरन अलानूर। जैसो हमारी महमूदा—सूरत सीरत दोनों माशा अल्लाह एक का जवाब एक।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"आख़िर कुछ देने को भी चाहिए। अभी थोड़ी देर हुई तुम्हारे मकतब को कोई लड़की ख़ुदा जाने क्या पढ़ रही थी और महमूदा उसको माने समझा रही थी कि या तो फ़ीलबानों से मेल-जोल मत कर और करना है तो हाथी की आमद-ओ-रफ़्त के लायक़ घर का दरवाज़ा भी ऊँचा करना पड़ेगा। हम ग़रीबों के पास उनकी शान के लायक़ देने को कहाँ। नाहक बैठे बिठाये अपनी हँसी करानी क्या ज़रूरी है। और फ़र्ज़ किया बात हो भी गई और लड़की वहाँ नज़रों में हक़ीर रही तो नुक़साने-माया और शमातते-हमसाया।"

फ़रेफ्ता—मुग्ध; **सीरत**—आदत; **नाज़**—घमण्ड; **नूरन-अला-नूर**—नूर के ऊपर नूर; **फ़ीलबान**—महावत; **आमद-ओ-रफ्त**—आने-जाने; **हक़ीर**—गिरी हुई, ज़लील; **हमसाया**—फ़ारसी की कहावत है। अपनी पूंजी का नुकसान तिस पर पड़ौसी का ठट्ठे मारना।

असग़री—"इज़्ज़त और ज़िल्लत कुछ जहेज़ पर मुनहसर नहीं, मियाँ बीबी की मुवाफ़िक़त तो और ही चीज़ है। जमालआरा क्या कम जहेज़ लेकर आई थीं। लेकिन एक दिन भी सुसराल में रहना नसीब न हुआ। दूर क्यों जाओ हमारी आपा को भी हमारे बराबर मिला था फिर क्यों रोज़ लड़ाई रहती है। यह तो अपना-अपना मिज़ाज और अपना-अपना सलीक़ा है।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"यह तो मैंने माना कि मियाँ-बीबी का प्यार-इख़लास जहेज़ पर मौक़ूफ़ नहीं, लेकिन कुनबे क़बीले के लोग बेकहे कब बाज़ आते हैं और लड़के ने ख़याल न किया तो क्या है। सास ननदें ही मौक़ा पाकर कभी बात-में बात कह गुज़रें। आख़िर दिल को बुरा लगता ही है। एक तो बेटी वाले का यूँ ही सर नीचा होता है, इस पर दान-जहेज़ वाजबी और ग़ज़ब है। न बुआ यह बेल मँढे चढ़ती नजर नहीं आती।"

असग़री—"कुनबे वालों से क्या मतलब? कुनबे वाले हर रोज़ थोड़े ही पास बैठे रहते हैं। हाँ सास ननदों के रात-दिन के ताने बेशक ग़ज़ब का सामना है सो हुस्नआरा और जमालआरा तान-ओ-तश्निआ का तो क्या ज़िक्र महमूदा के पाँव धो-धोकर पीया करेंगी। ऐसा भी क्या अंधेर है, क्या ब्याह होते के साथ आँखों पर ठीकरियाँ रख लेंगी। हुस्न-

---

इख़लास—प्रेम; **बेल मँढे चढ़ना**—काम पूरा होना; **तान-ओ-तश्निआ**—ताने मेने; **अंधेर**—ग़जब; **आँखों पर ठीकरियां रख लेना**—अहसान भूल जाना।

आरा को जैसी मुहब्बत महमूदा के साथ है आप तो देखती हैं। रहीं जमालआरा, सो दिल की ख़ुदी जाने, ज़ाहिर में तो जब मिलती है बिछी जाती हैं। मैं भी तो आख़िर जीती बैठी हूँ। महमूदा को बुरी तरह रखेंगी तो मुझको क्या मुँह दिखायेंगी। और सौ बात की एक बात तो मैं यह जानती हूँ कि सास ननदें भी हवा देखा करती हैं, लड़के को रीझा हुआ देखेंगी तो किसी की मजाल नहीं कि महमूदा को आँख भर कर देख ले।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"आख़िर तुम्हारी मर्ज़ी क्या है। शरबत के प्याले पर निकाह पढ़ा दूँ।"

असग़री—"यह तो मेरा मतलब नहीं और नहोत में शरबत भी नहीं जुड़ता तो क्या बेटा-बेटी के काम-काज नहीं करते। देना-दिलाना भी दुनिया जहान की रस्म है। जितनी चादर देखिये उतने पाँव फ़ैलाइये, मक़दूर के मुवाफ़िक़ जो बन पड़ा दिया, न बन पड़ा न दिया। नाम-नमूद के पीछे घर का दीवाला निकाल बैठना भी अक्ल की बात नहीं। मेरे मकतब में सलमा लड़की पढ़ती है। उसके अब्बा को ग़दर के पीछे सरकार से दस हज़ार रुपया ईनाम मिला था। किसी मेम की जान बचाई थी। दस हज़ार रुपया उनको इतना था कि उम्र-भर आबरू से रहते। एक बेटा और एक बेटी ब्याहने उठे। शेख़ी में आकर दस हज़ार सरकार का दिया हुआ उठा बैठे और हज़ार पाँच सौ ऊपर से क़र्ज़ लेकर लगा

हवा देखा करना—रुख देखना; **निकाह**—ब्याह; **नहोत**—तंगी में; **नाम-नमूद**—मान प्रतिष्ठा।

दिया। उस वक़्त तो ख़ूब हर तरफ़ से वाह-वाह हुई। अब घर में इस क़दर तंगी है कि खाने तक को हैरान हैं। ब्याह में मुझको भी बुलावा आया था। सामान देख मैं तो दंग हो गई। बल्कि शायद सलमा की अम्माँ ने जी में बुरा भी माना हो। मैंने तो कह दिया था कि बुआ बेटा-बेटी का देना आँखों सुख कलेजे ठण्डक, घी कहाँ गया खिचड़ी में, मगर अपनी हँडिया की ख़ैर मनानी भी ज़रूर है। कहने को तो मैं इतना कह गुज़री मगर पीछे मुझको पछतावा भी आया। सलमा की बहन दिल में कहती होगी कि उस्तानीजी लेना एक न देने दो नाहक भाँजी मारती हैं।"

मुहम्मद कामिल की माँ ने कहा—"सच है मगर कमबख़्त दुनिया में रहना है क्या करें, कहाँ जायें, हो या न हो करना ही पड़ता है। दुनिया की सी न करें तो नक्कू कौन बने, अंगुश्तनुमा कौन हो। मैंने मौलवी इशहाक़ साहब के दर्स में सुना था कि अगले वक़्तों में अरब के लोग बेटियों को पैदा होते ही मार डालते थे।"

असग़री—"अम्माँजान, दूर क्यों जाओ, हमारे मुल्क में राजपूत भी तो यही ग़ज़ब करते थे। अब अंग्रेज़ों की रोक टोक से बंदी हुई है। इस पर भी कई दफ़ा भनक सुन पड़ी

खिचड़ी—यह कहावत है यानी घी अगर खिचड़ी में है तो वो ग़ैर जगह नहीं, आख़िर को खिचड़ी के साथ अपने ही पेट में आयेगा; **हँडिया की ख़ैर**—यानी अपनी गुजर का बन्दोबस्त भी करना चाहिए; **भाँजी मारना**—अड़ंगे लगाना; **नक्कू बनना**—बदनाम होना; **अंगुश्तनुमा**—जिस पर लोगों की ऊँगली उठे; **दर्स**—उपदेश; **भनक**—हलकी आवाज़।

है कि चोरी छिपे ख़ून हुए ।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"अक़ल क्या करे, गैरत नहीं क़बूल करती ।"

असग़री—"ग़रीबी मे ग़ैरत की क्या बात है । दुनिया में ग़रीब लोग ज़्यादा हैं, अगर ग़रीब होना गैरत की बात है तो दुनिया मे बेगैरत बहुत हैं । अमीरी ग़रीबी सब अपनी अपनी क़िस्मत है । सब यकसा क्योंकर हो जायें ।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"अय हय, बला से शादी ब्याह में बहुत ख़र्च करने की तो सरकार से मनाही हो जाती तो झगड़ा मिटता ।"

असग़री—"अख़बार से तो मालूम होता है कि अंग्रेज़ लोग कुछ बंदोबस्त करने वाले हैं । हमारे शहर के रईस भी तो सब बुलाये गये थे । सुना है ख़र्च की एक हद बाँधी गई है, महर का अन्दाज़ा मुकर्रर हुआ है । मगर ये काम हम लोगों के करने के है । सब एका करके जितने ख़र्च फ़िज़ूल हैं मौक़ूफ़ करें ।"

मुहम्मद कामिल की मां—"ख़र्च के फ़िज़ूल होने की जो तुमने कही तो जिसको ख़ुदा ने दिया है उसके नज़दीक तो कुछ भी फ़िज़ूल नहीं । हाँ जिसके पल्ले कौड़ी नहीं उसको तो सभी फ़िज़ूल है ।"

असग़री—"यह न फ़रमाइये । शादी-ब्याह में तो वाजबी

ग़ैरत—स्वाभिमान; **यकसां**—एक सरीखा; **महर**—वह रुपया जो औरत को ब्याह के वक्त पति देता है; **मौक़ूफ़ करना**—बंद करना; **वाजबी**—जरूरी ।

ख़र्च कम है फ़िज़ूल बातों में बहुत रुपया उठ जाता है। हमारे खानदान में तो नाच, तमाशा, बाजा, गाना, आतिश-बाज़ी, नौबत-नक्क़ारा कुछ होता हवाता नहीं, मगर जिनके 'हाँ होता है इसी में सैकड़ों हज़ारों पर पानी फिर जाता है।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"नाच-तमाशा जिनके 'हाँ होता हो वो जानें भला हमारे यहाँ कौन ख़र्च फ़िज़ूल है।"

असग़री—"क्यों नहीं, मँगनी, तीर-त्यौहार, साचक, मेंहदी, बरात, बहूड़ा, चौथी, चाले, बहुत भारी-भारी जोड़े, जड़ाऊ गहना सभी फ़िज़ूल है।"

मुहम्मद कामिल को माँ—"तो सीधी यही एक बात क्यों नहीं कहतीं कि सिरे से ब्याह ही फ़िज़ूल है।"

असग़री हँसने लगी और कहा कि—"ब्याह तो फ़िज़ूल नहीं, इसके लाज़िमे अलबत्ता नाहक़ के ढकोसले हैं।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"भला रस्में तो रस्में तुम तो कपड़े और ज़ेवर को भी फ़िज़ूल बताती हो।"

असग़री—"निरे कपड़े और निरा ज़ेवर तो काम की चीज़ है, मगर भारी-भारी जोड़े आप ही इन्साफ़ फ़रमायें किस काम आते हैं। ख़ुद मेरे जोड़े सड़े गलते हैं। घर में पहनने से कमबख्त दिल कुढ़ता है। कभी-कभार शादी-ब्याह पहने गये या ईद बक़रीद को ज़रा की ज़रा निकले। बाक़ी

साचक—ब्याह की एक रस्म जिसमें दूल्हे के यहाँ से मेंहदी मेवा वग़ैरह बड़ी धूमधाम के साथ लड़की के यहाँ भेजा जाता है; **लाज़िमे**—रस्में, ऊपरी बातें; **अलबत्ता**—निस्संदेह; **भारी**—क़ीमती, क्योंकि जोड़ों में अकसर चाँदी सोने का बोझ ज्यादा होता है; **जोड़ा**—पूरा लिबास।

बारह महीने गठरी में बँधे रखे हैं। आये दिन धूप देना मुफ़्त का दर्द सर। और जो बेचने उठो तो माल का मोल नहीं मिलता, मसाले के दाम तक भी खड़े नहीं होते। और यही हाल जड़ाऊ ज़ेवर का है। मौलवी किफ़ायतउल्ला की बेटी का ब्याह आपने सुना है, बस ऐसे ब्याह मुझ को पसन्द हैं।

मुहम्मद कामिल की माँ—"कौन मौलवी किफ़ायत उल्ला ?"

असग़री—"लड़कियों के मदरसों के अफ़सर।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"वो तो शायद शहर के रहने वाले नहीं हैं।"

असग़री—"नहीं, आगरा की तरफ़ के रहने वाले हैं। बीवी-बच्चों को अपने पास बुला लिया है। बेटी की मँगनी इसी शहर में की थी। बीवी की मरज़ी यह थी कि अपने शहर में जाकर बेटी का ब्याह करें, यहाँ से बरात जाय। मौलवी साहब ने बीवी को समझा-बुझाकर राज़ी कर लिया। एक दिन दो-चार मेल-मिलाप वालों को बुला भेजा। मेहमान जो घर में पहुँचे तो सुना बेटी का निकाह है। थोड़ी देर बाद समधी लड़के को साथ ले आ मौजूद हुए। शरअ् मुहम्मदी निकाह पढ़ा दिया। अल्ला-अल्ला ख़ैर सल्लाह। दान-जहेज़ जम-ही-जम दिया। निकाह के बाद पानसौ रुपये नक़द मौलवी साहब ने बेटी-दामाद के आगे लाकर रख दिये और कहा कि

मसाला—गोटा किनारी; **खड़े होना**—याने वसूल होना; **जड़ाऊ**—जिसमें जवाहरात जड़े हों; **शरअ् मुहम्मदी**—शरीअ्त यानी मुसलमानों के धार्मिक क़ानून के मुताबिक़ जिसमें नाच-गाना वग़ैरह न हो।

बस भाई मेरी कमाई में तुम्हारी तक़दीर का इसी क़दर था। अगर मैं चाहता तो इसमें मेहमानदारी भी कर देता और दुनिया के दस्तूर के मुवाफ़िक एक-दो भारी जोड़े भी बना लेता। मगर मैंने सोचा तो यही मुनासिब मालूम हुआ कि नक़द रुपया तुमको देना बेहतर है। अब तुम जिस तरह चाहो इसको काम में लाओ।"

मुहम्मद कामिल की माँ सुनकर बोलीं कि—"हाँ परदेस में मौलवी साहब जो चाहते सो करते, कहने-सुनने वाला कौन था।"

असग़री—"क्यों कहने-सुनने वाली घर वाली बीवी। और परदेस पर क्या मौक़ूफ़ है, हिम्मत चाहिए। करने वाला हो तो शहर में भी कर गुज़रे। कहने वालों को बकने दिया, अपने काम-से-काम।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"क्या तुमने महमूदा का इसी तरह का ऊँघता-उदास विवाह तजवीज़ किया है।

असग़री—"बेशक। मैं तो लोगों के कहने-सुनने की कुछ परवा नहीं करती। मेरा बस चले तो महमूदा का निकाह किफ़ायतउल्ला की बेटी का जवाब हो। उन्होंने तो दो-चार मेहमान भी बुलाये और मेरे नज़दीक इसकी भी ज़रूरत नहीं।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"न बुआ, ख़ुदा के लिए ऐसा ग़ज़ब तो मत करो। इस बुढ़ापे में मेरी तो यही एक बच्ची ब्याहने को है। अब क्या मैं क़ब्र से किसी का ब्याह-बरात करने के लिए आऊँगी?"

असग़री—"नहीं ऐसा तो मेरा भी इरादा नहीं है। मगर अलबत्ता यह बात ज़रूर मैंने अपने दिल में ठान रखी है कि न तो एक पैसा क़र्ज़ लिया जाय और न कोई जायदाद गिरवी रखी जाय। जो-कुछ उसके नाम का रखा-रखाया है और जो-कुछ उसकी तक़दीर से ऐन वक़्त पर हो जाय बस काफ़ी है।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"सुबहान अल्लाह ऐसा हो तो क्या बात है। मगर जब दूसरी तरफ़ वाले भी हामी भरें।"

असग़री—"और अगर वो राज़ी हो जायँ।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"उनका राज़ी होना क्या हँसी ठट्ठा है। अल्ला अमीन का एक तो बेटा, नहीं मालूम क्या-क्या उनके दिलों में हैं। वो तो बराबर की टक्कर का घर देखकर बात करेंगे और सब अरमान निकालेंगे।"

असग़री—"जब से मैं स्यालकोट से आई हूँ, इस बात की तदबीर कर रही हूँ। इधर सब ठीक-ठाक हो गया है। अभी जमालआरा और हुस्नआरा भागी हुई आई थीं। छोटे हकीम साहब को भी मंज़ूर है। शाहज़मानी बेग़म ने अपनी बेटी के वास्ते बहुत-बहुत तदबीरें कीं। ख़ुदा के फ़ज़्ल से कोई कारगर न हुई। अब देर नहीं करनी चाहिए। परसों दिन भी अच्छा है। उधर से मिठाई आ जाय, बात पक्की हो जाये। फिर ब्याह को देखा जायगा।"

मुहम्मद आक़िल की माँ यह सुनकर हैरान रह गईं और कहा कि बात तो बहुत अच्छी है, हमारी लियाक़त से कहीं

ठान—ठहरा; हामी—हाँ; फ़ज़्ल—कृपा।

ज़्यादा है। लेकिन उनके लायक़ सामान हमसे होना मुश्किल है।"

असग़री—"ख़ुदा सबब-उल-असबाब है। जब महमूदा की तक़दीर ऐसे ऊँचे घर में लड़ी है तो ख़ुदा अपनी क़ुदरत से वक़्त पर कुछ सामान भी कर देगा।"

मुहम्मद कामिल की माँ—"अपने सुसरे को आने दो तो मिठाई के वास्ते उनसे पूछ दूँ।"

थोड़ी देर में मौलवी साहब आये और मँगनी का हाल सुनकर बहुत ही ख़ुश हुए। और कहा बेताम्मुल परसों मिठाई आये। असग़री ने हुस्नआरा को कहला भेजा। रोज़े-मुक़र्रर पर पाँच मिठाई और सौ रुपये आ गये, इधर से सवा मन मिठाई और सवा सौ रुपया गया। हर तरफ़ से मुबारक सलामत हो गई।

सबब-उल-असबाब—कारसाज़, सबब पैदा करना; **ऊँचा घर**—ऊँचा ख़ानदान; **बेताम्मुल**—निस्संकोच।

बाब इकतीसवाँ

महमूदा का ब्याह

मँगनी का होना था कि छोटे हकीम साहब ने ब्याह का तक़ाज़ा शुरू किया और मौलवी साहब से कहला भेजा कि मुद्दत से मेरा इरादा हज जाने का है और सिर्फ़ इसी बात का इन्तज़ार है। ज़िंदगी का ऐतबार नहीं। मैं चाहता हूँ कि रजब के महीने में अक़्द हो जाये। मौलवी साहब ने असग़री से पूछा। असग़री ने कहा बिलफ़ैल यह कहला भेजना चाहिये कि हम फ़िक्र में हैं। जहाँ तक हो सकता है तदबीर करते हैं। सामान मुख़्तसर जो देना मंज़ूर है अगर इस अरसे में जमा हो जाता है तो हम को भी यह फ़र्ज़े-आख़िर अदा करना है, जिस क़दर जल्द हो बेहतर। हकीम साहब ने फिर कहला भेजा कि मैंने जहेज़ और सामान की उम्मीद से आपके 'हाँ रिश्ता नहीं किया। मुझको लड़की चाहिये। आप सामान का फ़िक्र न कीजिये। इधर से जवाब गया, बहुत ख़ूब हमको भी रजब में अक़्द कर देना मंज़ूर है।

सत्ताईस तारीख़ रजब की मुक़र्रर हुई और दोनों तरफ़

ऐतबार—भरोसा; अक़्द—ब्याह; मुख़्तसर—थोड़ा-सा; फ़र्ज़े-आख़िर—अन्तिम कर्तव्य।

सामान होने लगे। सामान का शुरू होना था कि मौलवी साहब को फ़िक्र पैदा हुई—"कभी कहते थे हज़ारीमल से कर्ज़ लूँ, कभी सोचते थे कि घी का कटड़ा बेच डालूँ या गिरवी रख दूँ। असग़री ने मौलवी साहब को परेशान देख कर पूछा कि आपने क्या तदबीर की है। मौलवी साहब ने कहा क्या बताऊँ, शादी की तारीख़ सर पर चली आती है और रुपये की सूरत कहीं से बन नहीं पड़ती। हज़ारीमल से मैंने रुपया माँगा था वो भी टाल गया, घी के कटड़े को जुदा कर देने का इरादा किया था, कोई ख़रीदार नहीं खड़ा होता।"

असग़री ने कहा—"हरगिज़ हरगिज़ आप क़र्ज़ न लीजिये और न जायदाद फ़रोख़्त कीजिये। कर्ज़ से बदतर कोई चीज़ नहीं। और जायदाद का जुदा होना क्या मुश्किल है लेकिन उसका बहम पहुँचना बहुत दुश्वार होता है।"

मौलवी साहब—"कर्ज़ तो लूँ नहीं और जायदाद को जुदा न करूँ तो क्या मैं कीमियागर हूँ या दस्ते-ग़ैब जानता हूँ ? रुपया कहाँ से आये ?"

असग़री—"पहले घर का हिसाब देख लीजिये। कपड़े तो कुछ पहले से तैयार हैं, सिर्फ़ थोड़ा-सा मसाला दरकार होगा। सो मेरे जोड़ों में बाज़े बहुत भारी है, उनमें से कम

फ़रोख़्त करना—बेचना; **बहम पहुँचना**—हासिल होना; **दुश्वार**—मुश्किल; **कीमियागर**—कीमियागर उसे कहते हैं जो हलकी धातुओं से सोना बना लेता है, इन्द्रजालिया; **दस्ते-ग़ैब**—अदृश्य शक्ति जिससे कि मंतर-तंतर जानने वाले को मदद मिला करती है।

करके इतना मसाला निकल आयेगा कि महमूदा के जोड़ों को काफ़ी हो जायेगा। बरतन मौजूद हैं, कोई मोल लेना नहीं। काठ-कबाड़ सामाने बालाई यह सब मैं अपना दे दूँगी। बेफ़ायदा पड़ा-पड़ा ख़राब होता है और मेरे किसी मसरफ़ का नहीं। और आख़िर आपके पास भी कुछ रुपया नक़्द होगा।''

मौलवी साहब—''सिर्फ़ पान सौ रुपया है।''

असग़री—''बस बहुत है। जब मैं स्यालकोट जाने लगी मकतब की रक़म के चार सौ रुपये थे। वो अमानत रखे हैं, मेरे पीछे दो सौ रुपया अदा हुआ सो आधा आपा का हक़ है और सौ रुपया महमूदा का। ये मिलाकर मकतब की रक़म के पान सौ हो जायेंगे। महमूदा के छोटे भाई को मैंने ख़त लिखा है और तीन सौ रुपया मँगवाया है। दो सौ रुपया भाई जान ने भेजने को लिखा है। इस तौर पर डेढ़ हज़ार रुपया नक़द इस वक़्त मौजूद है। हज़ार के कड़े जो हुस्न-आरा के ब्याह में मुझको मिले थे, मेरे किस काम के हैं। मेरा इरादा था कि महमूदा को चढ़ा दूँ। लेकिन फिर ग़ौर किया तो उसी घर के कड़े उसी घर में जाने मुनासिब नहीं मालूम होते। मैं इनको बेच डालूँगी। तमाशाख़ानम की मारफ़त बाज़ार में भेजे थे। पन्नामल तेरह सौ रुपये देता था। महमूदा की तक़दीर से अगर कोई हाजतमन्द मिल गया तो इन्शाअल्लाह पन्द्रह सौ वसूल हो जायेंगे और एक तदबीर यह

काठ-कबाड़—लकड़ी का सामान जैसे चौकी संदूक वग़ैरह; **सामाने-बालाई**—ऊपरी सामान; **मसरफ़**—काम; **हाजतमन्द**—ज़रूरतमन्द।

ज़हन में ग्राती है कि ग्राप भाईजान के लाने को लाहौर जाइये ग्रौर रईस पर रुख़सत की तक़रीब में यह बात ज़ाहिर कर दीजिये। रईस बड़ा सैरचश्म है, उम्मीद है कि ज़रूर कुछ मदद करेगा। हमेशा से हिन्दुस्तानी सरकारों का दस्तूर रहा है ऐसी तक़रीबात में ग्रपने मौतमिद नौकरों की ग्रयानत की है।"

ग़र्ज़ ग्रसग़री ने सुसरे को लाहौर भेजा। मौलवी साहब रईस के सलाम को जो गये तो रईस ने पूछा मौलवी साहब क्योंकर तशरीफ़ लाये? मौलवी साहब ने ग्रर्ज़ किया कि—"बन्दाज़ादी का अक़्द है, इस ग़र्ज़ से हाज़िर हुग्रा हूँ कि मुहम्मद आ़क़िल को एक महीने की रुख़सत मरहमत हो ग्रौर यह तो ग्रर्ज़ नहीं कर सकता कि हज़ूर के ख़ानदान से कोई शरीक़ हो लेकिन ग्रगर दीवान साहब जो देहली में हैं सरकार की तरफ़ से ज़ेबदिहे-महफ़िल हों तो हमचश्मों में मेरे लिए ग्रफ़ज़ाइशे-ग्राबरू का बाअ़स होगा।"

रईस ने मुहम्मद आ़क़िल की रुख़सत भी मंज़ूर की ग्रौर मौलवी साहब को ग्राने-जाने का ख़र्च दिया ग्रौर दीवान साहब को हुक्म भेज दिया कि हमारी तरफ़ से मौलवी साहब

ज़हन—दिमाग़; **तक़रीब**—निकट; **सैरचश्म**—शाह ख़र्च, उदार; **तक़रीबात**—ग्रवसरों पर; **मौतमिद**—विश्वासपात्र; **ग्रयानत**—मदद; **बन्दाज़ादी**—मेरी लड़की; **मरहमत हो**—इनायत हो यानी दी जाय; **शरीक़**—शामिल; **ज़ेबदिहे-महफ़िल**—शादी की महफ़िल की शोभा बढ़ायें याने शामिल हों; **हमचश्म**—रिश्तेदार मेल-मिलाप वाले; **ग्रफ़ज़ाइशे-ग्राबरू**—ग्राबरू बढ़ाना, प्रतिष्ठा; **बाग्रस**—कारण।

की महफ़िल में शरीक़ होना और पान सौ रुपया न्यौते का देना। असग़री की सलाह से बैठे-बिठाये यह पान सौ रुपये मुफ़्त के आ गये। इधर जड़ाऊ कड़े तमाशाख़ानम की मारफ़त नवाब ख़ानम ज़मानी बेगम तक पहुँचे। देखकर लोट हो गईं और आँख बन्द करके दो तोड़े हवाले कर दिये। अब तो रुपये की हर तरफ़ से रेल-पेल हो गई। असग़री का एहतिमाम उम्दा-से-उम्दा जोड़े तैयार हुए और चौहरा ज़ेवर बना। वो शादी हुई कि मौलवी साहब की तो कई पुश्तों में न हुई थी। और समधियाने वाले भी सामान देखकर दंग हो गये। जो सामान था मुतअ़दद और बेशक़ीमत और जो चीज़ थी नये तौर की। दो जोड़े तो बेटे वालों की तरफ़ से आये। एक रीत के वास्ते करकरी ताश का, दूसरा चौथी के वास्ते कारचोबी और गहने, जहेज़ और चढ़ावे के मिलाकर तो बेइन्तहा थे। नाक में नथ और कील, माथे को टीका, झूमर, बेना, कानों में बाली, पत्ते जड़ाऊ सादे, झपके के बाले, कान झाले, मगर, मुरकियाँ, बिजलियाँ, करनफूल, झुमके, गले में गुलूबन्द, तौक़, चम्पाकली, कण्ठी, तोड़ा, धगदगी,

---

तोड़ा—हज़ार रुपयों की या अशर्फ़ियों की थैली को तोड़ा कहते हैं; **रेल-पेल**—अधिकता; **एहतिमाम**—इन्तज़ाम, बन्दोबस्त; **पुश्त**—पीढ़ी; **मुतअ़दद**—कई; **रीत**—वो कपड़े जिन्हें पहनकर दुलहन पहले पहल दूल्हे के यहाँ जाय; **करकरी ताश का**—सुनहरी तारों का बना एक तरह का कपड़ा; **कारचोब**—एक चौकठा जिसमें कपड़ों को तानकर फिर उसमें सलमा-सितारा लगाया जाता है; **चढ़ावा**—दूल्हे की तरफ़ से जो जोड़ा ज़ेवर वग़ैरह दिया जाता है चढ़ावा कहलाता है; **बेइन्तहा**—अपार।

चन्दनहार, ज़ंजीर, माला, बाज़ूबन्द, जोशन, नौरतन, भुजबन्द, नौनगे, हाथों में कड़े, नौगीरियाँ, चोहे, दतियाँ, लच्छे, दस्तबन्द, उँगलियों में अंगूठी, छल्ले, जोड़, पाँव में पाज़ेव, चूड़ियाँ, छल्ले, कारचोबी, जालदार, मसालेदार। सब मिलाकर पचास जोड़े दो सौ बरतन और इसी हैसियत का बालाई सामान। ग़र्ज़ बड़े धूमधाम से अक़्द हो गया।

महमूदा रुख़सत हुई। क़मर-आस्तानी बेगम सुसराल से ख़िताब मिला। हकीम फ़तह उल्ला ख़ाँ बड़े मुतक्क़ी परहेज़गार बा-ख़ुदा आदमी थे। मुद्दतों से हज का इरादा कर रहे थे, लेकिन सिर्फ़ अर्जमन्द ख़ाँ के ब्याह के मुन्तज़िर थे। अब ब्याह होने के बाद चन्द रोज़ तक बहू का रंग-ढंग देखते रहे। यहाँ देखने की क्या हाजत थी। महमूदा ने तो बी असग़री की निगरानी में तरबियत पाई थी, किसी तरह की कोर कसर उसमें बाक़ी न थी। हकीम साहब ने जिस क़दर आज़माया बहू को हुनरमन्द, आक़िल, शलीक़ाशुआर पाया। कुछ तो ख़रबूज़ा मीठा और कुछ ऊपर से मिला क़न्द। अव्वल तो महमूदा अपनी ज़ात से अच्छी और इस पर असग़री की तालीम, असग़री की सलाह। भला फिर क्या पूछना था। ग़र्ज़ हकीम साहब को ख़ूब यक़ीन हो गया कि क़मर आस्तानी अच्छी-ख़ासी तरह घर को सम्भाल

मुतक्क़ी परहेज़गार—संयमी, धर्मपरायण; **मुन्तज़िर**—प्रतीक्षक; **रंग-ढंग**—चाल-ढाल; **हाजत**—ज़रूरत; **तरबियत**—शिक्षा; **कोर कसर**—कमी; **हुनरमन्द**—हुनर जानने वाली; **आक़िला**—अक़्लमन्द; **शलीक़ाशुआर**—सुशिष्ट; **क़न्द**—मिसरी।

लेंगी। अब हकीम साहब ने यकायक ज़ोर-शोर के साथ अरब की तैयारियाँ करनी शुरू कीं। या तो हज की नीयत थी या हिजरत का इरादा कर लिया। नक़द की क़िस्म से जो-कुछ था अपने साथ लिया। मकानात, दुकाकीन, कटड़े, गंज, देहात, सरायें सब-कुछ बेटे के नाम लिख दिया। रिश्ते-नाते के लोगों ने जैसा दस्तूर है समझाया भी, लेकिन हकीम साहब को तो ख़ुदा की धुन थी, एक न सुनी। ख़ुदा का नाम ले चल खड़े हुए और दुनिया-भर की जायदाद बेटे-बहू को दे गये।

महमूदा अगरचे ब्याही जा चुकी थी, लेकिन फिर भी असग़री का अदब लिहाज़ पहले से ज़्यादा करती थी। ज़रा-ज़रा बात में असग़री से सलाह लेती। अब अलबत्ता असग़री को अपनी अक़्ल आज़माने का मौक़ा मिला। बड़ा कारख़ाना, बड़े काम। वो वो इन्तज़ाम किये कि अर्जमन्द ख़ाँ को ख़ुदा झूठ न बुलवाये वक़्त का बादशाह-वज़ीर बना दिया। कोई सरकार उसके मुक़ाबिले की देहली क्या दूर-दूर न थी। अभी तक तो असग़री मुफ़लिसी में थी 'अज़ दस्ते-बस्त च ख़ैर, औ अज़ पाये-शिकस्ता च सैर। लेकिन अब ख़ुदा रखे दौलत सरवत नसीब हुई। इन्तज़ाम का क़ाबू, बन्दोबस्त का मौक़ा

हिजरत—देश त्याग, याने जिस तरह बुढ़ापे में हिन्दू काशीवास करते हैं उसी तरह मुसलमान अरब जाकर रहते हैं इसे हिजरत कहते हैं; **दुकाकीन**—दुकान का बहुवचन, दुकानें; **मुफ़लिसी**—ग़रीबी; **अज़दस्त…च सैर**—जिसका हाथ तंग हो वो ख़ैरात क्या करे और जिसके पाँव टूट रहे हों वो सैर क्या करे; **सरवत**—अमीरी।

मनमानता मिला। इस हालत में जो-जो काम इस औरत ने किये वो अलबत्ता क़यामत तक ज़माने में याद रहेंगे। मगर अफ़सोस है उनके लिखने की फ़ुरसत नहीं। फिर भी अगर नसीब मानने वाला और बात का सुनने और समझने वाला हो तो जिस क़दर लिखा जा चुका कम नहीं। हर तरह की सलाह, हर क़िस्म की तालीम इसमें मौजूद है। कहने को क़िस्सा और हिकायत है लेकिन हक़ीक़त में नसीहत और हिदायत है।

मनमानता—मनचाहा; **हिकायत**—कहानी; **नसीहत**—शिक्षा; **हिदायत**—सही रास्ते का निर्देश।

बाब बत्तीसवाँ

औलाद के ताल्लुक़ पर एक उम्दा नसीहत

अब इस किताब को ख़त्म करने से पहले एक बात और कहनी ज़रूर है। वो यह है कि असग़री बहुत छोटी-सी उम्र में माँ बन गई थी। अभी तक कुछ उसकी औलाद का तज़किरा नहीं हुआ। असग़री के बच्चे तो बहुत हुए लेकिन ख़ुदा की क़ुदरत ज़िन्दा कम रहे। सिर्फ़ एक लड़का मुहम्मद-अकमल जो अख़ीर में महमूदा की बेटी मसऊदा से ब्याहा गया ज़िन्दा रहा। यह लड़का कई बच्चों के ऊपर पैदा हुआ। इससे पहले मुहम्मद आदिल एक बेटा और बतोल एक लड़की मर चुके थे। बच्चों की परवरिश में एहतियात तो बहुतेरी हुई थी, सरदी गरमी का बचाव खाने तक के वक़्त मुक़र्रर और बँधा। अन्दाज़ा और ख़बरदारी यह कि सक़ील और रद्दी चीज़ कहीं मुँह में न डाल लें। दाँत निकलने शुरू हुए और मसूड़ों में नश्तर दिया गया कि ऐसा न हो दाँतों की तक़लीफ़ को बच्चा सहार न सके। चार बरस के हुए और चेचक के बचाव की नज़र से टीका लगवा दिया गया। ग़र्ज़

सक़ील—देर में हज़म होने वाली; नश्तर—चीरा; सहारना—बर्दाश्त करना।

जहाँ तक आदमी की अक़्ल काम करती है सब तौर का बन्दोबस्त किया जाता था लेकिन तक़दीर के आगे किसी की हिक़मत नहीं चलती। मुहम्मद आदिल चार बरस का होकर मरा। पेचिश हुई, दस्त बन्द करने की दवा दी, बुख़ार आने लगा, सरसाम हो गया। पला-पलाया लड़का हाथ से जाता रहा। अभी उसका दाग़ ताज़ा था कि बतोल सात बरस की होकर बीमार पड़ी। कुछ ऐसे बला के दस्त छूटे कि जान लेकर बन्द हुए। दुनिया जहाँ की दवायें हुईं। मौत कब दवा को मानती है। एक ही हफ़्ते में लड़की तहलील होकर चली गई। बतोल के मरने का असग़री पर बहुत बड़ा सदमा हुआ। अव्वल तो लड़की दूसरे कुछ मरने वाली थी या क्या, ऐसी माँ पर फ़रेफ़्ता थी कि एक दम को अलग न होती थी। माँ नमाज़ पढ़ती है तो जाये-नमाज़ पर बैठी है। साथ सोना साथ उठना। माँ की दवा तक को चख लेना ज़रूर। और इस छोटी-सी उम्र में बस पढ़ने में ध्यान, क़ुरान का तरजुमा शुरू था। जब मुहम्मद आदिल मरा तो औरतों ने असग़री के ईमान में ख़लल डालना शुरू किया था कोई कहती कोख का खलल है, महरअली शाह का इलाज करो,

---

हिकमत—अक़्ल; **सरसाम**—सन्निपात नामक रोग; **बला के**—जान लेवा; **तहलील** - घुलघुलकर; **सदमा**—दुख, चोट; **फ़रेफ़्ता**—मुग्ध; **जाये-नमाज़**—नमाज़ पढ़ने का आसन; **ख़लल**—बाधा; **कोख**—पेट के दोनों तरफ पसलियों के नीचे ख़ाली जगह को कोख यहाँ कोख के ख़लल से मतलब है कोख को नज़र लग गई है।

कोई कहती दूध पर नज़र है, चौराहे में उतारा रखवाओ, कोई कहती मसान का दुख है रमज़ानशाह से गड़ंत कराओ, कोई कहती मकान अच्छा नहीं मीर अलीम से किलवाओ, कोई कहती सफ़र में आई-गई हो कोई चुड़ैल लिपट गई है कछूछे चलो। गण्डे और तावीज़ और अमल और टोटके तो दुनिया जहाँ के लोग बताते थे। लेकिन वाह री असग़री ! यों ऊपर तले दो बच्चे मरे लेकिन सदा ख़ुदा पर शाकिर रही। किसी ने कुछ कहा भी तो यही जवाब दिया ख़ुदा को जब मंज़ूर होगा तो यूँ भी वो फ़ज़्ल कर सकता है। बच्चों के मरने की ख़बर जब दूरअन्देशख़ाँ साहब को हुई तो बहुत मुज़्तरिब हुए और इस इज़्तराब में बेटी के नाम यह ख़त लिखा।

उतारा—बीमार के सिर कोई चीज़ वारकर चौराहे पर रखते हैं और यह मान्यता है कि इससे बीमार अच्छा हो जाता है या किसी की नज़र लगी हो तो वह उतर जाती है; **मसान**—श्मशान याने भूतों का असर जिस औरत पर हो उसकी औलाद जीती नहीं; **गड़न्त**—मन्तर फूँक कर कोई चीज़ गाड़ दी जाती है उसे गड़ंत कहते हैं; **किलवाना**—मकान के चारों कोनों में मन्तर पढ़कर कीलें गाड़ दी जाती हैं इसको किलवाना कहते हैं; **चुड़ैल**—भूतनी; **कछूछा**—अवध में एक गाँव का नाम है वहाँ ऐसे बीमार बहुत होते हैं; **शाकिर**—शुक्रगुजार; **फ़ज़्ल**—कृपा; **मुज़्तरिब**—बेक़रार; **इज़्तराब**—बेक़रारी।

बाब तैंतीसवाँ

ख़त

बरख़ुरदार असग़रीख़ानम को दुआ के बाद मालूम हो, इस वक़्त देहली के ख़त से मुझको बतोल के इन्तक़ाल का हाल मालूम हुआ। मैं इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि मुझको रंज नहीं हुआ। लेकिन मेरी अक़्ल इस क़दर बेजा नहीं कि नादान आदमियों की तरह बेसब्री करूँ। मुझको बड़ा तरद्दुद तुम्हारा है। अजब नहीं तुम पर यह सदमा बहुत शाक़ हुआ हो। लेकिन हर एक हालत में इन्सान को अक़्ल से मशविरा लेना चाहिए। अक़्ल हमको इसी वास्ते बख़्शी गई है कि रंज हो या ख़ुशी हम अपनी अक़्ल से उसमें मदद लें। दुनिया के हाल को ग़ौर करना निहायत ज़रूर है और यह ग़ौर फ़ायदे से ख़ाली नहीं। ज़मीन आसमान, पहाड़, जंगल दरिया, इन्सान, हैवान, दरख़्त लाखों तरह की चीज़ें दुनिया में हैं और दुनिया का एक बहुत बड़ा भारी कारख़ाना है।

बरख़ुरदार—जिस तरह हिन्दी में भाग्यवान या सौभाग्यवती आता है उसी प्रकार उर्दू में बरख़ुरदार कहते हैं; **दुआ**—आशीर्वाद; **इन्तक़ाल**—मृत्यु; **बेजा**—बेठिकाने; **तरद्दुद**—दुःख; **शाक़**—बड़ा सख़्त, बड़ा कठिन।

दिन में एक मामूल के साथ आफ़ताब का निकलना फिर रात का होना और चाँद और सितारों का चमकना, कभी गरमी कभी सरदी, कभी बरसात, और पानी के असर से अनवाअ्-ओ-अक़साम के रंग-बिरंगे फलों और फूलों का पैदा होना और एक वक़्ते-ख़ास तक ताज़ा-ओ-शादाब रह कर मुरझाना और नापैद हो जाना। हर एक बात ग़ौर करने वाले को बरसों सोचने को काफ़ी हैं। ख़ुद आदमी को अपना हाल ग़ौर करने को क्या कम है। क्योंकर आदमी पैदा होता है और क्योंकर परवरिश पाता है, और बड़ा होता और क्योंकर आख़िर इस दुनिया से सफ़र कर जाता है। यह बड़ा उम्दा और दिलचस्प और मुश्किल मज़मून है। यह सब कारख़ाना किसी मस्लहत से ख़ुदा ने जारी कर रखा है और जब तक वो चाहेगा इसी तरह यह कारख़ाना जारी रहेगा। दुनिया की मर्दुमशुमारी से साबित हुआ है कि एक घण्टे में साढ़े तीन हज़ार आदमी के क़रीब दुनिया में मरते हैं। यानी हर एक पल में एक आदमी, और इसी क़दर पैदा भी होते होंगे। अब हिसाब कर लो कि सिर्फ़ एक महीने में लाख आदमी दुनिया में मरते और पैदा होते हैं। और फिर ग़ौर करो कि सात हज़ार बरस से यही तार चला आता है यानी बेशुमार आदमी दुनिया में अब तक मर चुके हैं। पस मौत एक मामूली और ज़रूरी बात है। बड़े-बड़े ज़बरदस्त बादशाह,

मामूल—दस्तूर, रीति; **आफ़ताब**—सूरज; **अनवाअ्-ओ-अक़साम** भिन्न-भिन्न; **शादाब**—हरे-भरे; **नापैद**—नष्ट; **परवरिश**—पोषण; **मज़मून**—विषय; **मस्लहत**—नेक इरादे से।

बड़े-बड़े आलिम, बड़े-बड़े हकीम, यहाँ तक कि बड़े-बड़े पैग़म्बर जिन्होंने मुर्दों को ज़िन्दा किया ख़ुद मौत से न बच सके। दुनिया में जो पैदा हुआ है यह ख़ुदा का ज़रूरी हुक्म है कि वो एक दिन मरे। पस अगर यह हुक्म किसी दिन हमपर या हमारे किसी अज़ीज़ क़रीब पर जारी किया जाय तो हमको शिकायत और फ़रियाद की कोई वजह नहीं यह मज़मून सरसरी नहीं है। इसको ख़ूब ग़ौर करो और जब तुमको मौत की हक़ीक़त मालूम हो जायगी तो समझोगी कि किसी के मरने पर रंज करना लाहासिल और बेसूद है। किसी की मौत पर रंज करना ताल्लुक़ पर मौक़ूफ़ है। अगर हम सुनें कि मसलन मुल्क चीन का बादशाह मर गया। हम पर इस ख़बर का मुतलक़ असर नहीं होता। इस वास्ते कि हमको उससे कुछ ताल्लुक़ न था। बल्कि मुहल्ले में अगर कोई ग़ैर-आदमी मर जाय जिससे किसी का वास्ता नहीं तो हमको बहुत कम रंज होगा, बल्कि शायद न भी हो। ग़र्ज़ हमको रंज उसी शख़्स के मरने का होता है जिससे हमको ताल्लुक़ है। और जितना ताल्लुक़ क़वी उसी क़दर रंज ज़्यादा। नानी की भतीजी की ख़ाला की बहू की फूफी की भानजी अगर मरे तो क्या? दूर का वास्ता दूर का रिश्ता। बल्कि रिश्ते-नाते पर क्या मौक़ूफ़ है मुहब्बत-मिलाप में भी रंज

आलिम—इल्म के जानने वाले यानी विद्वान्; **अज़ीज़**—प्यारा, प्रिय; **क़रीब**—निकट सम्बन्धी; **हक़ीक़त**—सचाई; **लाहासिल**—व्यर्थ; **बेसूद**—बेफ़ायदा; **ताल्लुक़**—सम्बन्ध; **मौक़ूफ़**—अवलम्बित; **मसलन्**—जैसे, उदाहरण के तौर पर; **मुतलक़**—बिलकुल; **क़वी**—मज़बूत।

होता है। अब सोचना चाहिए कि दुनिया में हमको किस से ज़्यादा ताल्लुक़ है। इसके वास्ते कोई क़ायदा मुक़र्रर नहीं। क़रीब का रिश्ता हुआ और सदा की लड़ाइयाँ, हमेशा के बिगाड़। तो ऐसे रिश्तेदार ग़ैर दाख़िल। लेकिन ग़ैर हो रिश्ता नहीं, क़राबत नहीं, मुहब्बत मिलाप बहुत कुछ, वो रिश्तेदारों से बढ़कर है। पस हर एक शख़्स मुवाफ़िक़ अपनी हालत के ख़ास ताल्लुक़ रखता है। ये दुनियावी ताल्लुक़ात सब क़ायदे और ग़रज़ से पैदा होते हैं। अगर अपना सगा हमारे फ़ायदे में ख़लल अन्दाज़ हो ज़रूर है कि हमसे छूट जाय। इसी तरह अगर ग़ैर आदमी हमारे काम आये ज़रूर है कि हमको मिसल अपनों के अज़ीज़ हो। लेकिन वो फ़ायदा जिससे ताल्लुक़ पैदा होता है ज़रूर नहीं कि सिर्फ़ रुपये-पैसे का हो। अगरचे अकसर इसी क़िस्म का होता है। कभी उम्मीद और तवक़्क़ो से भी ताल्लुक़ पैदा होता है। बहुत लोग हमारे दोस्त हैं जो हमको कुछ दे नहीं देते, लेकिन यह तवक़्क़ो कि अगर कभी हमको किसी तरह की ज़रूरत हो तो ये काम आने वाले हैं, ताल्लुक़ के पैदा होने की वजह होती है। मैं इस बहस को बहुत तूल दे सकता हूँ और जिस क़दर इस बहस को तूल दिया जाय, मुनासिब है। लेकिन असल मतलब मेरा इस ख़त में सिर्फ़ औलाद के ताल्लुक़ से बहस करना है। और अगर फ़ुरसत मिलेगी तो इंशा अल्लाह

मुक़र्रर—तय; **ग़ैर दाख़िल**—यानी ग़ैरों में या परायों में दाख़िल हैं जिन से कोई ताल्लुक़ नहीं; **मिसल**—समान; **तवक़्क़ो**—उम्मीद और तवक़्क़ो समान अर्थी हैं; **तूल देना**—लंबा करना, बढ़ाना।

इस ताल्लुक पर एक किताब लिखकर तुमको भेज दूँगा।

यह ताल्लुक़ जो औलाद से है आ़म है। कोई माँ-बाप बल्कि कोई जानवर तक इससे ख़ाली नहीं। इससे मालूम होता है कि सिर्फ़ फ़ायदे और ग़रज पर इसकी बिना नहीं बल्कि ख़ुदावन्दे आ़लम जो बड़ा दानिशमंद है उसका इन्तज़ाम चाहता है कि ज़रूर माँ-बाप को अपनी औलाद की मुहब्बत हो, औलाद चंद साल तक मोहताजे-परवरिश होती है। ताकि औलाद की परवरिश अच्छी तरह हो। माँ-बाप को औलाद की मुहब्बत लगा दी कि इस मुहब्बत के तक़ाज़े से बच्चों को पालें और बड़ा करें। यहाँ तक कि बड़े होकर ख़ुद दुनिया में रहने-सहने लगें। यानी माँ-बाप परवरिशे-औलाद के वास्ते उनके ख़िदमतगुज़ार हैं। बस औलाद का पाल देना सिर्फ़ इतना ताल्लुक़ तो ख़ुदा की तरफ़ से माँ-बाप को दिया गया। बाक़ी ये बखेड़े कि अब औलाद की तमन्ना है, नहीं है तो दवा है और इलाज है, और तावीज़ गंडा है, अमल हैं, और दुआ है, या औलाद हुई तो यह फ़िक्र है कि बेटे हों बेटियाँ न हों या जो हों ज़िन्दा रहें। ये ख़ुद इन्सान की अपनी हवस के ततिम्मे हैं। रही यह बात कि औलाद की तमन्ना जो ख़ुदा की मर्ज़ी से ज़्यादा अपने दिल में पैदा किस वजह से होती है ? बेशक फ़ायदे और ग़रज़ के वास्ते

बिना—बुनियाद; **ख़ुदावंदे-आ़लम**—जगत का स्वामी; **दानिशमंद**—अक़्लमंद; **मोहताजे-परवरिश**—पालन पोषण की मोहताज; **ख़िदमत गुज़ार**—टहल करने वाले; **तमन्ना**—इच्छा, कामना; **हवस**—तृष्णा; **ततिम्मा**—बाक़ी भाग।

होती है। लेकिन फ़ायदे कई क़िस्म के हैं। बाज़ यह समझते हैं कि औलाद से नाम चलता है। बाज़ को यह ख़याल होता है कि बुढ़ापे में हमारे मददगार होंगे। बाज़ को यह तसव्वुर होता है कि हमारा माल-ओ-दौलत हमारे बाद लेंगे। अब इन ख़यालात पर ग़ौर करो किस क़दर बेहूदा और ग़लत हैं। नाम चलना क्या मानी कि लोग यह जानें कि फ़लाने के पोते हैं। अव्वल तो जब हम ख़ुद दुनिया में न रहे तो अगर किसी ने हमको जाना तो क्या और न जाना तो क्या। अलावा इसके ग़ौर करो कि कहाँ तक नाम चलता है। किसी आदमी से उसके बाप-दादों के नाम पूछो। शायद दादा तक तो सब कोई बता सकेगा। इससे ऊपर ख़ुद औलाद को नहीं मालूम कि हमारे परदादा और सगड़दादा कौन बुज़ुर्ग थे। दूसरे लोगों को उनके मुर्दों की हड्डियाँ उखाड़ने की क्या ज़रूरत है। पस बिलफ़र्ज़ नाम चला भी तो एक या दो पुश्त आगे ख़ैर सलाह। और एक या दो पुश्त नाम चलना भी सिर्फ़ ख़याली बात है। दस बरस से मैं पहाड़ पर हूँ। हज़ारों आदमी मुझको जानते हैं और हज़ारों को मैं जानता हूँ लेकिन न वो मेरे बाप को जानते न मैं उनके बापों से वाक़िफ़ न कुछ बाप का नाम बताने या पूछने की कभी ज़रूरत वाक़े होती है।

दूसरी वजह तमन्नाये-औलाद की यह फ़ायदा है कि बुढ़ापे में मददगार हों। सो यह ख़याल भी महज़ वाहियात

तसव्वुर—खयाल; **सगड़दादा**—दादा का दादा; **बिलफ़र्ज़**—मान लो; **पुश्त**—पीढ़ी; **वाक़े होना**—उपस्थित होना; **महज़**—केवल, निरी; **वाहियात**—फ़िज़ूल।

है। यह क्योंकर यक़ीन है कि उनके बड़े होने तक हम जीते रहेंगे या हमारे बुढ़ापे तक ये ज़िन्दा रहेंगे ? और बिलफ़र्ज़ ज़िन्दगी का इत्तिफ़ाक़ हुआ भी तो औलाद का मददगार होना महज़ ख़याली बात है। इन वक़्तों में हम ऐसी औलाद बहुत कम पाते हैं जिनको माँ-बाप का अदब मलहूज़ या जिनको वालदैन की ख़िदमतगुज़ारी का ख़याल होता है। अदब और ख़िदमतगुज़ारी तो दरकिनार अब तो अकसर औलाद से माँ-बाप को ईज़ा और तकलीफ़ पहुँचती है। जिस औलाद की लोग तमन्ना करते हैं शुरू से आख़िर तक उनके हाथों से रंज पाते हैं। जब तक छोटे हैं पालना एक मुसीबत। आज आँखें दुखती हैं, कभी पसली का दुख है, कभी दाँत निकलते हैं, कभी चेचक निकलती है। ख़ुदा-ख़ुदा करके बड़े हुए तो उनके खाने कपड़ों का फ़िक्र। आदमी नहीं मालूम किस हालत में है नौकर है या नहीं, पैसा पास है या नहीं, इनको जहाँ से हो सके देना ज़रूर। माँ-बाप को फ़ाक़ा हो तो हो, उनको कुछ न हो तो भी सौदे सुलफ़ के लिए कहीं-न-कहीं से रोज़ के रोज़ पैसा-धेला देना ही पड़ता है। ईद हो, बक़रीद हो, मेला हो, त्यौहार हो, लाओ भाई नया जोड़ा, सौदा खाने को चार टके पैसे। यहाँ तक भी ग़नीमत है। अब माँ-बाप चाहते हैं कि लड़का काम सीखे, पढ़े, और लड़का पाजी है कि पढ़ने के नाम से कोसों भागता है। जब तक मकतब के चार लड़के

इत्तिफ़ाक़—संयोग; **अदब मलहूज़**—अदब, लिहाज़; **वालदैन**—माँ बाप; **दरकिनार**—एक तरफ़; **ईज़ा**—तकलीफ़, कष्ट; **ग़नीमत**—संतोष की बात।

टाँग कर न ले जायँ जाना क़सम है। और अगर किसी तरह गया भी तो 'तिफ़्ल बमकतब नमीरवद वले बुरदन्दश।'* ज़रा उस्ताद की आँख बची कहीं चौराहे पर जा निकले। कहीं नहर पर खड़े गेड़ियाँ खेलते हैं। कहीं बाज़ारों में ख़ाक छानते फिरते है। और ज़रा बड़े हुए माँ बाप को जवाब देने लगे। लुच्चों की सोहबत, बदमाशों का साथ। न नाच का परहेज़ है न बुरी सोहबत से गुरेज़। बाप-दादों को बदनाम करते फिरते हैं। इसी तरह बाजे शातिर बदमाश, चोर, जुआरी, शराबख़ोर हो जाते हैं। अब औलाद ब्याहने क़ाबिल हुई तमाम शहर छान मारा कहीं ढब की बात नहीं मिलती। मश्शाता पाँव तोड़-तोड़कर थकी, मेल-मिलाप वाले हार कर बैठ रहे, कुनबे के लोग एक-एक से कह चुके। कोई हामी नहीं भरता, एक ख़राबी में जान है। माँ बेचारी कहीं मन्नतें मानती फिरती है, कहीं खड़ी फ़ालगोश ले रही है, कहीं

टाँगकर—लटकाकर; **क़सम**—याने न जाने की क़सक खा रखी है; *लड़का आप से मकतब में नहीं जाता मगर उसे ले ही जाते हैं; **गेड़ियाँ**—गेड़ियों का खेल एक खेल है जो लकड़ियों से खेला जाता है यह गुल्ली डण्डे की तरह का एक खेल है; **गुरेज़**—परहेज़; **शातिर**—चालाक; **मश्शाता**—कुटनी जिसके ज़रिये से मंगनी-ब्याह का ठहराव होता है; **तोड़-तोड़कर**—याने इधर से उधर उधर से इधर फेरे कर करके; **मन्नत**—मानता; **फ़ालगोश**—फ़ालगोश लेने का मतलब है शकुन लेना। औरतें कुछ रात गये जब लोगों का चलना-फिरना बन्द हो जाता है दरवाज़े पर आ खड़ी होती हैं और जो आवाज़ सुन पड़ी उसके मतलब के मुताबिक शुभ या अशुभ शकुन लेती हैं।

गुड़िया का ब्याह हो रहा है, पाँचों वक़्त दुआ है इलाही ग़ैब से किसी को भेज। ख़ुदा-ख़ुदा करके निस्बत-नाता ठहरा तो ऐसी जगह कि माँ बेचारी के पास चाँदी का तार तक नहीं, समधियाने वाले झपके के बाले माँगते हैं। किसी तरह अपने तईं बेच कर ब्याह किया, चिड़िया की जान गई खाने वाले को मज़ा न मिला। जहेज़ है कि फिका-फिका फिरता है। समधन कहती हैं—"ओह ! क्या दिया, ऐसी नहोत में बेटी जननी क्या ज़रूर थी।" कोई चीज़ ख़ातिर तले नहीं आती। बात-बात में ताना है। दामाद साहब जो तशरीफ़ लाये तो उनके दिमाग़ नहीं मिलते। जब तक सुसरे से जूतियाँ सीधी न करा लें हाथ तक नहीं धोते, खाने की कौन कहे। चौथी नहीं हुई कि मियाँ बीबी में जूती पैज़ार होने लगी। बेटी की बेटी दी लड़ाई की लड़ाई मोल ली। फिर यह नहीं कि कुछ एक दिन की बात है, नहीं, उम्र-भर को मुसीबत का चरख़ा चला। बेटी की औलाद होनी शुरू हुई, माँ बेदामों की लौंडी, बेतनख़ा की दाया। उम्र-भर अपने बच्चे पालने की मुसीबत झेलती रही, अब ख़ुदा-ख़ुदा करके दो साल से आराम नसीब हुआ था बेटी के चेंगी-पोटे सँभालने पड़े। और अगर बहू

गुड़िया—लड़कियों के ब्याह में जब देर होने लगती है और कहीं से बात नहीं आती तो शगून के तौर पर उससे गुड़िया का ब्याह कराते हैं। इसका यह मतलब कि जिस तरह इसकी गुड़िया का ब्याह हुआ इसका भी ब्याह हो; **गैब**—अदृश्य लोक; **झपके के बाले**—एक तरह के जड़ाऊ बाले जो बहुत कीमती होते हैं; **नहोत**—ग़रीबी; **दिमाग़ नहीं मिलना**—याने मारे ग़रूर के किसी से सीधी बात न करना; **चेंगीपोटे**—ज़राज़रा से बच्चे।

आई तो फ़साद की गाँठ, लड़ाई की पोट, सास को तो जूती के बराबर नहीं समझती। ननदों का दम नाक में कर रखा है। न जेठ का हिजाब न सुसरे का अदब। औरत है कि मर्दों की पगड़ी उतार लेती है, खुदा पनाह में रखे। बेटे नालायक़ को देखिये कि बीबी ने तो यह आफ़त बरपा कर रखी है, यह मरदूद बीबी की हिमायत करता है और उलटा माँ-बाप से लड़ता है। यहाँ तक कि माँ-बाप घर छोड़कर अलग किराये के मकान में जा रहे। यह नतीजा इस वक्त की औलाद से माँ-बाप को मिलता है। बहुत कम हैं वो लोग जो औलाद से राहत पाते हैं। पस हम लोग अपनी बेवक़ूफ़ी से औलाद की क्या तमन्ना करते हैं गोया आफ़त और मुसीबत को आरज़ू करके बुलाते हैं।

अब रहा यह ख़याल कि माल-ओ-दौलत का कोई वारिस हो, इस वजह से औलाद की तमन्ना की जाय। यह ख़याल जैसा मुहमिल और पोच और लचर और ख़ुराफ़ात है ज़ाहिर है। जब आदमी खुद दुनिया से उठ गया तो उसकी दौलत अगर उसके बेटों ने ली तो क्या और अगर माल लावारिस क़रार पाकर सरकार में गया तो क्या। यह दौलत आकबत में कुछ बकारआमद नहीं, मगर उसी क़दर जो हम ख़ुदा ताला

फ़साद—लड़ाई; **गाँठ**—गठरी; **पोट**—पोटली; **हिजाब**—पर्दा; **मरदूद**—निगोड़ा; **हिमायत**—तरफ़दारी; **राहत**—आराम; **गोया**—मानो; **आरज़ू**—इच्छा; **वारिस**—उत्तराधिकारी; **मुहमिल**—बेहूदा और ग़लत; **लावारिस**—स्वामित्वहीन; **आक़बत**—परलोक, अन्त समय; **बकार आमद**—काम आने वाली; **ख़ुदा ताला**—परमेश्वर।

की राह में हम ख़ुद सर्फ़ कर जायँ या हमारे बाद हमारे नाम से ख़ुदा ताला की राह में सर्फ़ हो। जब हमने दौलत को ख़ुद सर्फ़ न किया और ऐसा ज़रूरी काम औलाद के ज़िम्मे छोड़ गये तो हमसे ज़्यादा कोई अहमक़ नहीं। जो औलाद माँ-बाप का अन्दोख़्ता मुफ़्त में पा जाते हैं हरगिज़ उनको उसके ख़र्च करने में दरेग़ नहीं होता। आदमी उसी रुपये की क़दर करता है जिसको वो ख़ुद अपने क़ुव्वते बाज़ू और अ़र्क़रेज़ी से पैदा करता है। और बेमेहनत जो रुपया मिलता है उसका हाल यही होता है कि माले-मुफ़्त दिले-बेरहम। अलबत्ता औलाद नाच-रंग, सैर-तमाशे में ख़ूब दौलत को उड़ायेगी। लेकिन चाहिए कि बाप के नाम वाजरे के दलिये पर फ़ातिहा तक भी दिलाये क्या मज़कूर। क्या ऐसी मिसालें दुनिया में सैकड़ों हज़ारों नहीं हैं कि लोग बुख़्ल और ख़िस्सत से उम्र भर जमा करते रहे औलाद ने दौलत पाते ही वो गुलछर्रे उड़ाये कि चन्द रोज़ बाप का अन्दोख़्तये-उम्री फ़ना कर दिया—

अल्ला-अल्ला के तल्फ़ कर्दा के अन्दोख़्ता बूद।

सर्फ़ करना—खर्च करना; **अहमक़**—मूर्ख; **अन्दोख़्ता**—जमा किया हुआ, जोड़ा हुआ; **दरेग़**—संकोच; **क़ुव्वते-बाज़ू**—भुजाओं की ताक़त; **अ़र्क़रेज़ी**—अ़र्क़रेज़ी का अर्थ है पसीना बहाना यानी मेहनत करना। **माले-मुफ़्त दिले-बेरहम**—फ़ारसी की कहावत है कि मुफ़्त का माल दिल में रहम नहीं; **बुख़्ल**—कंजूसी; **ख़िस्सत**—कृपणता; **अन्दोख़्तये-उम्री**—उम्र भर की पूँजी; **फ़ना**—बरबाद; अल्ला-अल्ला किसने जमा किया और किसने लुटाया।

इस बयान से ज़ाहिर होगा कि जिस क़दर ताल्लुक़ औलाद के साथ हमने अपने दिल से बढ़ा लिया है वो हमारे हक़ में निहायत ज़रर करता है। हमको औलाद के साथ उसी क़दर ताल्लुक़ रखने का हुक्म है कि जब तक वो हमारी मदद के मोहताज रहें। उनकी परवरिश करें। और उस परवरिश करने में भी इस उम्मीद को दिल में जगह न दें कि औलाद बड़ी होकर इस परवरिश के एवज़ कभी हमारी ख़िदमत करेगी। यह उम्मीद पैदा करनी सख़्त दरजे की नादानी है बल्कि यह समझना चाहिये कि ख़ुदा ने जो हमारा मालिक है उनकी परवरिश की ख़िदमत हम से मुतल्लिक़ की है। हम औलाद को पालने में उसके हुक्म की तामील करते हैं। यह बाग़ ख़ुदा का है और उसकी तरफ से इस बाग़ के हम माली हैं। अगर बाग़ का मालिक किसी दरख़्त को क़लम करने या काट डालने का हुक्म दे तो माली को यह कहने का कब मनसब है कि मैंने इस दरख़्त को बड़ी मेहनत से पाला, यह क्यों काटा और क़लम किया जाता है? दुनिया के तमाम तअल्लुक़ात सिर्फ़ इस वास्ते हैं कि आदमी एक-दूसरे को फ़ायदा पहुँचायें। हम चंद रोज़ के वास्ते किसी मसलहत से इस दुनिया में भेजे गये हैं और यहाँ हमको किसी का बाप, किसी का बेटा, किसी का भाई बना दिया है। इस वास्ते कि लोग हमारी और हम लोगों की मदद करें और सुलह-कारी और साज़गारी में अपनी ज़िन्दगी जो मुक़र्रर कर दी

ज़रर—क्षति; **तामील**—पालन करना; **मनसब**—अधिकार; **साज़गारी**—मिलनसारी।

गई है पूरी कर जायें। दुनिया हमारा घर नहीं है। हमको दूसरी जगह जाकर रहना होगा, न कोई हमारा है न हम किसी के। हम अगर किसी के बाप हैं तो सिर्फ़ चंद रोज़ के वास्ते और अगर किसी के बेटे हैं तो भी चंद रोज़ के वास्ते अगर हम किसी को मरता देखें तो अफ़सोस की क्या बात है। अफ़सोस तो तब करें जब हम यहाँ बैठे रहें। हमको ख़ुद ही सफ़र दरपेश है, नहीं मालूम किस घड़ी बुलावा हो और चलना ठहर जाय। फिर सबसे मुश्किल यह है कि मरना सिर्फ़ यही नहीं है कि बदन से जान निकल गई, गोया रूह एक मकान से दूसरे मकान में चली गई। नहीं, वहाँ जाकर बात बात का हिसाब देना होगा। ज़बान झूठ, और ग़ैबत और क़सम, और फोश और बेहूदा बकवास के वास्ते जवाब-देही करेगी। आँख नज़रे-बद की सजा पायेगी। कान को किसी की बदी और राग सुनने के एवज़ में गोशमाली दी जायगी। हाथ ने किसी पर ज़्यादती की है या पराया माल चुराया है, काटा जायगा। पाँव अगर बेराह चला है शिकंजे में कसा जायगा। बड़ा टेढ़ा वक़्त होगा। ख़ुदा ही अपने फ़ज़्ल से बेड़ा पार करे तो हो सकता है। जिसको इन बातों से फ़राग़त हो वो किसी के मरने पर ग़म करे या किसी के पैदा होने पर ख़ुश हो तो बजा है। लेकिन दुनिया में कोई ऐसा है जो अपनी आक़बत से बेफ़िक्र हो चुका हो। असग़री

दरपेश—आगे मौजूद है; **ग़ैबत**—किसी को पीठ पीछे बुरा कहना; **फोश**—बुरी, गंदी, अश्लील; **नज़रे-बद**—बुरी दृष्टि; **गोशमाली**—कान उमैठी; **फ़राग़त**—निश्चिन्तता; **आक़बत**—परलोक।

अपनी ख़बर लो और उस दिन के वास्ते सामान करो जहाँ सिवाय अ़मल के कुछ काम न आयेगा और दुआ़ करो कि ख़ुदावन्दे-आ़लम अपने दोस्त मुहम्मद सल्ले-अलाह अलैह व सल्लम के तुफ़ैल से हम सब का इन्तज़ाम बख़ैर करे। व अद्दुआ।

गुनहगार—
दूरअंदेश खाँ

सल्ले अलाह अलैह व सल्लम—मुहम्मद साहब के नाम के साथ ये शब्द कहे जाते हैं कि उन पर अल्लाह की रहमतें और सलामती हो; **तुफ़ैल**—सबब; **बख़ैर**—अच्छी तरह; **व अद्दुआ**—और दुआ।